“GOPAL RAY KA AALOCHNA KARM”

A Thesis submitted during (year) 2018 to the University of Hyderabad in partial fulfillment of the Requirement for the Degree of

DOCTOR OF PHILOSOPHY

in Hindi, School of Humanities.

Submitted By

PAWAR JAISINGH

(Registration No.13HHPH15)

(YEAR-2018)

Under the Guidance of

Prof. ALOK PANDEY

Department of Hindi

School of Humanities, University of Hyderabad

P.O Central University, Gachibowli, Hyderabad- 500046

Telangana state, India

“GOPAL RAY KA AALOCHNA KARM”

A Thesis submitted during (year) 2018 to the University of Hyderabad in partial fulfillment of the Requirement for the Degree of

DOCTOR OF PHILOSOPHY

in Hindi, School of Humanities.

Submitted By

PAWAR JAISINGH

(Registration No.13HHPH15)

(YEAR-2018)

Under the Guidance of

Prof. ALOK PANDEY

Department of Hindi

School of Humanities, University of Hyderabad

P.O Central University, Gachibowli, Hyderabad- 500046

Telangana state, India

“गोपाल राय का आलोचना कर्म”

(हैदराबाद विश्वविद्यालय की पी.एच डी (हिंदी) उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध प्रबंध)

वर्ष - 2018

शोध निर्देशक	विभागाध्यक्ष	शोधार्थी
प्रो. आलोक पाण्डेय	प्रो. सच्चिदानंद चतुर्वेदी	पावर जयसिंह

हिंदी विभाग,

मानविकी संकाय, हैदराबाद विश्वविद्यालय, हैदराबाद-500046

तेलंगाना-भारत

DECLARATION

I, PAWAR JAISINGH with full responsibility, hereby declare that this Dissertation entitled **"GOPAL RAY KA AALOCHNA KARM" (गोपाल राय का आलोचना कर्म)** submitted by me under the guidance and supervisor of **Prof. ALOK PANDEY**, is a bona fide research work. I also declare with full responsibility, that it has not been submitted previously in part or in full to this University or any other University or Institution for the award of any degree or diploma. I hereby agree that my dissertation can be deposited in **shodhganga/INFLIBENT**. I also declare with full responsibility, that my dissertation is plagiarism free.

Date : 28 Dec. 2018

Name: PAWAR JAISINGH

Registration No. 13HHPH15

Place : Hyderabad

Signature of Research Scholar

CERTIFICATE

This is to certify that the dissertation entitled **"Gopal Ray Ka Aalochna Karm" (गोपाल राय का आलोचना कर्म)** submitted by **PAWAR.JAISINGH** bearing Registration. No. - **13HHPH15** in partial fulfillment of the requirements for award of **Doctor of Philosophy** in **HINDI** is done by him under my supervisor and guidance.

As for as I know, the dissertation has not been submitted previously in part or in full to this or any other University or Institution for the award of any degree or diploma.

Signature of Supervisor

Prof. ALOK PANDEY

Head of the Department

Dean of the School

CERTIFICATE

This is to certify that the thesis entitled **"GOPAL RAY KA ALOCHNA KARM" (गोपाल राय का- आलोचना कर्म)** submitted by **PAWAR JAISINGH** bearing Registration. No. **13HHPH15** in partial fulfillment of the requirement for award of **DOCTOR OF PHILOSOPHY** in Hindi as a bona fide work carried out by him under my supervisor and guidance.

As for as I know This thesis is free from plagiarism and has not been submitted previously in part or in full to this or any other University or Institution for the award of any degree or diploma.

Parts of this thesis have been:

A. Published Research Paper in the following publications:

1. Samiksha patrika ka mahtva (ISSN No. 2349-9354, CHAPTER-1)
2. Hindi aalochna ke vikas may gopal ray ka yogadan (ISSN No.- 2394-5303, CHAPTER-4)

B. Research Paper Presented in the following conference:

1.Bharatiya Sahitya Main Telugu Bhasha Ka Yogadan, (16-17-09-2016 International seminar Department of Hindi, Osmania University, Telangana)

2. Hindi Upanyas Ka Itihas Aur Gopal Ray (14-15-12-2018 International seminar Department of Hindi, Badruka College of Commerce & Arts Hyderabad telangana)

Further the student has passed the following courses towards fulfillment of coursework requirement for Ph.D.

Course code	**Name**	**Credits**	**Pass/Fail**
1. 701	Research Methodology	04	Pass
2. 801	Critical Aapproaches to Research	04	Pass
3. 802	Research Paper	04	Pass
4. 826	The Ideological Background of Hindi Literature	04	Pass
5. 827	Practical Review of the Texts	04	Pass

Signature of Supervisor	Head of the Department	Dean of the School
Dept. of Hindi	Dept. of Hindi	School of Humanities

-: अनुक्रमणिका :-

अनुक्रमणिका

पृ. सं.

भूमिका : I-V

1. प्रथम अध्याय : 1-23

गोपाल राय का व्यक्तित्व और कृतित्व

1.1 व्यक्तित्व

1.2 कृतित्व

2. द्वितीय अध्याय : 24-59

हिंदी आलोचना की विकास यात्रा:एक परिचय

3. तृतीय अध्याय : 60-204

गोपाल राय का आलोचना कर्म

3.1 सम्पादक के रूप में आलोचना

3.2 कहानियों से संबंधित आलोचना

3.3 उपन्यासों से संबंधित आलोचना

3.4 इतिहास लेखक के रूप में आलोचना

3.5 अन्य विषयों से संबंधित आलोचना

3.6 गोपाल राय की आलोचनात्मक दृष्टि : सामान्य परिचय

4. चतुर्थ अध्याय : 205-221

हिंदी आलोचना के विकास में गोपाल राय का योगदान

5. पंचम अध्याय : 222-234

गोपाल राय की आलोचनात्मक भाषा

उपसंहार : 235-247

परिशिष्ट : गोपाल राय जी का साक्षात्कार 248-256

संदर्भ ग्रंथ सूची : 257-261

परिशिष्ट : 262-281

- **प्रकाशित आलेख – 1**
- **प्रकाशित आलेख – 2**
- **राष्ट्रीय संगोष्ठी में प्रस्तुत शोध – पत्र का प्रमाण पत्र – 1**
- **राष्ट्रीय संगोष्ठी में प्रस्तुत शोध – पत्र का प्रमाण पत्र – 2**

आलोचक गोपाल राय

जन्म : 13 जुलाई 1932

निधन : 26 सितंबर 2015

- आलोचक गोपाल राय पूर्व राष्ट्रपति प्रतिभा पाटील के द्वारा (केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा ; शोध और आलोचना) 'राहुल सांकृत्यायन' पुरस्कार (2012) प्राप्त करते हुए।

-: भूमिका :-

भूमिका

साहित्य में आलोचना को एक गंभीर विषय माना गया है। खासकर तब जब आलोचना का विषय जटिल एवं कठिन हो। आलोचना हमारे समय की सबसे महत्वपूर्ण विधा के रूप में मानी जा रही है। आलोचना में केवल गुण-दोषों का विवेचन ही नहीं किया जाता बल्कि तत्कालीन परिस्थिति के साथ कृति में अभिव्यक्त जीवन दर्शन का भी उद्घाटन किया जाता है। 'आलोचना' और 'आलोचक' शब्द अपने आप में आधुनिकता की ओर इशारा करते हैं। आलोचक के संदर्भ में कहें तो आलोचक ही प्रथम भावक होता है जो रचना का मूल्यांकन कर रचना के गुण-दोषों को उद्घाटित कर पाठकों के सामने प्रस्तुत करता है। एक आलोचक का कार्य तिहरा होता है जिसमें वह रचना, लेखक और तत्कालीन समाज को एक साथ पिरोने का प्रयास करता है।

आलोचना मूलतः भावयित्री प्रतिभा के अंतर्गत समाविष्ट होती है इसलिए प्रत्येक आलोचक इसी प्रतिभा के आधार पर साहित्य और समाज का मूल्यांकन करता है। रचना-प्रक्रिया का संबंध भावना और संवेदना से होता है। और आलोचना प्रक्रिया बुद्धि और विश्लेषणात्मक प्रतिभा द्वारा ही सम्पन्न होती है। विवेचन के लिए किस न किसी विशेष प्रकार के मूल्य या मानदंडों की आवश्यकता होती है और इसी की स्थापना आलोचक अपनी आलोचनात्मक रचना में करने का प्रयास करता है।

आलोचना का अर्थ केवल यह नहीं कि आलोचक किसी रचना के बुरे या अच्छे पक्ष को उजागर करे और उसे अच्छी या बुरी रचना का तमगा प्रदान कर दे। एक आलोचक अपनी तरफ से साहित्य को कुछ न कुछ नया देने की भी कोशिश करता है। जैसे आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने जब 'हिंदी साहित्य का इतिहास' लिखा तब उन्होंने प्रमाणों के साथ उस इतिहास को प्रस्तुत किया। यह काम केवल एक इतिहासकार का ही नहीं बल्कि आलोचक का भी है, यह काम आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, नामवर

सिंह, रामविलाश शर्मा और अन्य आलोचकों ने भी किया है। गोपाल राय भी इसी श्रेणी के अंतर्गत आते हैं क्योंकि ‘हिंदी उपन्यास कोश’, हिंदी साहित्याब्द कोश’, ‘हिंदी कहानी का इतिहास’, ‘हिंदी उपन्यास का इतिहास’ आदि रचनाएँ केवल कृतियों की सूची ही नहीं बतलाती बल्कि इस बात का पुख्ता प्रमाण भी है। गोपाल राय ने केवल एक रचना को एक जगह से उठाकर दूसरी जगह पर नहीं रखा बल्कि उसके सम्बन्ध में उनके विचार और प्रमाण भी प्रस्तुत किया है। उदहारण के तौर पर देखा जाये तो ‘देवरानी जेठानी की कहानी’ को हिंदी का पहला उपन्यास गोपाल राय ने ही माना क्योंकि उनका कहना है कि उपन्यासों की शर्तों पर सबसे पहले यही रचना खरी उतरती है। इस रचना में गोपाल राय ने मौलिकता, कथानक, चरित्र-चित्रण, संवाद आदि के सन्दर्भ में कई प्रमाण प्रस्तुत किए है।

आलोचना जहाँ एक रचना का विश्लेषण करती है वहाँ वह स्वयं भी विश्लेषित होते दिखाई देती है। हिंदी साहित्य में आलोचना कर्म का आरंभ भारतेंदु युग से माना गया जिसमें भारतेंदु, बालकृष्ण भट्ट, महावीर प्रसाद द्विवेदी, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हजारी प्रसाद द्विवेदी, दिनकर, मुक्तिबोध, नगेंद्र, आचार्य नंददुलारे वाजपेयी, रामविलास शर्मा, नलिन विलोचन शर्मा, केदारनाथ सिंह, नामवर सिंह, गोपाल राय आदि के साथ अन्य कई महत्वपूर्ण आलोचकों ने अपने आलोचना कर्म के द्वारा साहित्य को विश्लेषित कर समाज व पाठक वर्ग के सामने पूर्ण प्रमाणिकता के साथ रखने का प्रयास किया। इन आलोचकों के चिंतन और साधना द्वारा हिंदी आलोचना का भंडार सदा परिपूर्ण रहेगा। इन सभी आलोचकों ने अपनी लेखनी और चिंतनशीलता के बल पर आलोचना में नये आदर्श और मानदंडों की स्थापना की है। जिनमें कथा-साहित्य और भाषा जैसे महत्वपूर्ण विषयों में आलोचना के लिए गोपाल राय का स्थान महत्वपूर्ण माना गया है।

गोपाल राय ने अनेक आलोचनात्मक ग्रंथों की रचनाएँ की हैं, और 'समीक्षा पत्रिका' का सम्पादन कर अनेक कृतियों की आलोचनाएँ की है। वे कथा-साहित्य के आलोचक के रूप में अधिक जाने जाते हैं। उनके द्वारा किया गया आलोचना कार्य एक तटस्थ आलोचक के रूप में किया गया है, न किसी वाद पर। वे अपनी आलोचना में राजनैतिक, सामाजिक और साहित्यिक घटनाओं का और परिवेश का ब्यौरा बेहद सूक्ष्मता के साथ देते हैं।

उनको केवल कहानी और उपन्यास का आलोचक ही माना जाये यह बात बेहतर नहीं है। जबकि उन्होंने हिंदी भाषा और विमर्शों पर भी लगातार अपनी कलम चलाई है। उन्होंने साहित्य और संस्कृति को करीब से समझा, जाना और देखा है इसलिए उनकी आलोचना में प्रमाणिकता साफ नज़र आती है।

गोपाल राय आलोचना के द्वारा केवल पुस्तक समीक्षा तक ही सीमित नहीं थे उन्होंने 'समीक्षा' पत्रिका के माध्यम से हिंदी आलोचना में नित नये पृष्ठ जोड़े हैं। उन्होंने बहुत निष्पक्ष, परिश्रम और कर्तव्यनिष्ठता के साथ पिछले चार से पाँच दशकों तक इस पत्रिका संपादन किया। उनके कर्तव्यनिष्ठता को प्रवाह देते हुए तत्कालीन समय में उनके पुत्र प्रो. सत्यकाम इस पत्रिका का संपादन कर रहे है।

वैसे देखा जाए तो शोध कार्य भी एक आलोचनात्मक कार्य है। अतः इस कार्य को साहित्य, साहित्यिक समीक्षा, सिद्धांतों एवं पद्धतियों तथा विविध साहित्यिक, सामाजिक, संस्कृतिक विचार प्रणालियों की विशाल परिधि में पूर्ण किया जाये। प्रस्तुत शोध कार्य आलोचक गोपाल राय को केंद्र में रखकर किया गया है। अतः इस कार्य का मुख्य बल उनके आलोचनात्मक ग्रंथों के मूल्यांकन पर है। गोपाल राय ने साहित्य, कला,

संस्कृति, काव्य, भाषा आदि विषयों से संबंधित जो विचार प्रस्तुत किए हैं उनका व्यापक अवलोकन, विवेचन एवं मूल्यांकन करना तथा हिंदी आलोचना में उनकी देन पर व्यापक दृष्टिपात करना इस कार्य का मुख्य उद्देश्य है।

अध्ययन की सुविधा के लिए इस शोध कार्य को भूमिका के आलावा कुल पाँच अध्यायों में विभाजित करते हुए अंत में सार रूप में उपसंहार को प्रस्तुत किया गया है।

प्रथम अध्याय है **गोपाल राय का व्यक्तित्व और कृतित्व।**

इस अध्याय के अंतर्गत गोपाल राय के जीवन-परिचय के साथ उनके कृतित्व को उजागर करनेवाले पहलुओं को प्रकाशित किया गया है। गोपाल राय ने अपने जीवन में अनेक कृतियों का निर्माण किया है जिसका परिचय इस अध्याय के द्वारा प्रस्तुत किया गया है।

द्वितीत अध्याय है **हिंदी आलोचना की विकास यात्रा : एक परिचय।**

इस अध्याय में आलोचना की विकास यात्रा का परिचय देते हुए भारतेंदु युग से तत्कालीन समय तक के प्रमुख आलोचक तथा आलोचना के विभिन्न युगों को परिभाषित एवं विश्लेषित करते हुए उनमें गोपाल राय का स्थान निश्चित करने का प्रयास किया गया है। इस अध्याय में भारतेंदु युग से स्थापित होते मानदंडों तथा तत्कालीन समय तक उनमें होते बदलाओं को भी स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है।

तृतीय अध्याय है **गोपाल राय का आलोचना कर्म।**

यह अध्याय शोध के मूल विषय को स्पर्श करता है। इस अध्याय के अंतर्गत गोपाल राय के संपादन कर्म के साथ उनके द्वारा किए गये कहानियों, उपन्यासों, इतिहास लेखन से संबंधित आलोचनाओं को प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

साथ ही उनकी आलोचनात्मक दृष्टि का परिचय देते हुए अन्य विषयों से संबंधित आलोचनाओं को भी इसमें विश्लेषित किया गया है।

चतुर्थ अध्याय है **हिंदी आलोचना के विकास में गोपाल राय का योगदान।**

इस अध्याय के अंतर्गत गोपाल राय के आलोचनात्मक कार्य को प्रस्तुत करते हुए आलोचना साहित्य में उनके योगदान को प्रस्तुत किया गया है। साथ ही आलोचना के क्षेत्र में गोपाल राय के महत्व को भी प्रतिपादित करने का प्रयास किया गया है।

पंचम अध्याय है **गोपाल राय की आलोचनात्मक भाषा।**

इस अध्याय में गोपाल राय के साहित्य का शिल्पगत अध्ययन करते हुए उनके द्वारा प्रस्तुत भाषा का अध्ययन करने का प्रयास किया गया है। भाषा के अंतर्गत उनके द्वारा प्रस्तुत शब्द, शैली और आलोचना में प्रस्तुत भाषा के संदर्भ में उनके विचारों को दिखाया गया है।

उपसंहार में संपूर्ण विषय को समेटकर निष्कर्ष निकालने का प्रयत्न है।

अंत में ग्रंथानुक्रमणिका के अंतर्गत सन्दर्भ ग्रंथों की सूची दी गयी है। विषय से सम्बंधित पत्र-पत्रिकाओं के नाम भी दिए गए है।

इसके अतिरिक्त परिशिष्ट में आलोचक गोपाल राय से लिया गया साक्षात्कार संलग्न किया गया है।

पवार जयसिंह

दिनांक: 28/12/2018 हैदराबाद विश्वविद्यालय, हैदराबाद

आभार ज्ञापन

प्रस्तुत शोध-कार्य हैदराबाद विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग के प्रो. आलोक पाण्डेय के कुशल निर्देशन में सम्पन्न हुआ। आलोचना जैसे गंभीर विषय पर काम करने और विषय चयन से लेकर शोध प्रबंध की प्रस्तुति होने तक गुरूवर प्रो. आलोक पाण्डेय जी के मार्गदर्शन, उचित सलाह के साथ-साथ प्रोत्साहन एवं प्रेरणा भी मिली। जिससे शोध कार्य करते समय किसी भी प्रकार कठिनाई नहीं आयी। गुरूवर व्यक्तिगत जीवन में भी प्रेरणादायी रहे हैं। शोध कार्य के दौरान मुझे उनका स्नेह, मार्गदर्शन लगातार मिलता रहा, इतना ही नहीं उनकी आलोचनात्मक दृष्टि, बौध्दिक-प्रखरता का अनल लाभ भी मुझे मिला है। मैं स्वयं को सौभाग्यशाली समझता हूँ कि मुझे गुरूवर प्रो. आलोक पाण्डेय जी के सुयोग्य मार्गदर्शन में शोध करने का सुअवसर प्राप्त हुआ है। आपके प्रति मैं आजीवन आभारी रहूंगा। गोपाल राय जी का साक्षात्कार लेने के लिए दिल्ली जाना पड़ा तब उनके पुत्र प्रो. सत्यकाम ने हमें शोध विषय से संबंधित कुछ सलाह और सुझाव भी दिये। उनका भी मैं हृदय से आभारी रहूँगा।

सलाहकार समिति के सदस्य प्रो. एस. चतुर्वेदी एवं डॉ. जे. आत्माराम जी की उचित सलाह प्राप्त हुई। शोध-कार्य में उचित परामर्श कर निरीक्षण किया। आपका भी मैं हृदय से आभारी रहूँगा। साथ ही मैं हैदराबाद विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग के अन्य अध्यापकों के प्रति भी आभार प्रकट करता हूँ, जिन्होंने मेरे शोध-कार्य को आगे बढ़ाने के लिए सदैव प्रोत्साहन दिया।

मेरे इस शोध-कार्य में विभिन्न पुस्तकालयों का भी महत्वपूर्ण योगदान है, जिनमें हैदराबाद विश्वविद्यालय के पुस्तकालय, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के पुस्तकालय, दिल्ली विश्वविद्यालय के पुस्तकालय, उस्मानिया विश्वविद्यालय, तेलंगाना

के पुस्तकालय, दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, हैदराबाद के पुस्तकालय आदि शामिल हैं। इन पुस्तकालयों के प्रति भी मैं आभार प्रकट करता हूँ।

मेरे कृषि-मजदूर माता-पिताजी (माता जमानी बाई, पिता सोमुसिंह) का मैं आजीवन आभारी रहूंगा जिन्होंने सामाजिक विषमता एवं आर्थिक संकटों के बावजूद मुझे शिक्षा दी, पढाया-लिखाया। उनके इस अथक श्रम के कारण ही मैं उच्च शिक्षा प्राप्त कर सका। मेरी जीवनसंगिनी सरिता पवार जो अपने अध्यापिका जीवन में व्यस्त होते हुए भी सदैव मुझे शोध-कार्य के लिए धैर्य एवं प्रेरणा देती रही। सरिता ने पुत्र पवार साईंनिलेश और पुत्री पवार श्रीनिधि तथा परिवार के अन्य सदस्यों को संभालते हुए समय-समय पर मुझे बल और प्रोत्साहन दिया। बड़े भाई पवार गणपती और छोटे भाई पवार विनोद कुमार का सहयोग प्राप्त हुआ, उनका भी मैं आभारी हूँ।

मैं अपना शोध-प्रबंध मेरे पिता जी और मेरी माता जी को समर्पित करता हूँ। जिन्होंने हर विकट परिस्थितियों में मुझे लड़ने की प्रेरणा देते हुए मेरे जीवन को आधार प्रदान किया है। साथ ही मैं मेरी बहन और भाई का विषेशरूप से आभार व्यक्त करता हूँ। अंत में मैं अपने जीवन से जुड़े सभी करीबी मित्र, मेरे अग्रज और मेरे अनुज आदि द्वारा दिये गए प्रेरणा और प्रोत्साहन के लिए आभार व्यक्त करता हूँ।

शोध-कार्य को पूर्ण करने में मित्रों की समय-समय सहायता मिलती रही। जिस कारण मैं सभी मित्रों का आभारी हूँ। अनेक व्यस्तताओं के बावजूद इस शोध-प्रबंध को टंकण और प्रूफ रिडिंग कार्य करने में मेरे मित्र नितिन पाटिल और श्यामराव जादव की सहायता अविस्मरणीय है जिनका मैं हृदय से आभारी हूँ।

पवार जयसिंह

दिनांक : 28/12/2018 हैदराबाद विश्वविद्यालय, हैदराबाद

-: प्रथम अध्याय :-

गोपाल राय का व्यक्तित्व और कृतित्व

प्रथम अध्याय

गोपाल राय का व्यक्तित्व और कृतित्व

परिचय :

गोपाल राय समकालीन समय के श्रेष्ठ हिंदी आलोचक, इतिहासकार और संपादक थे। उन्होंने अपने 'आलोचना कर्म' से हिंदी आलोचना को एक नया आयाम दिया। साथ ही 'समीक्षा पत्रिका' के माध्यम से साहित्यिक आलोचना कर कई श्रेष्ठ रचनाओं और रचनाकारों से पाठकों को परिचित करवाया है। यह कहना अनुचित नहीं होगा कि समकालीन साहित्य के साथ इन्होंनें न्यायपूर्ण संबंध स्थापित किया हैं। गोपाल राय ने कई सारे उपन्यास और कहानियों की आलोचना कर उपन्यास और कहानियों की सही पहचान पाठकों से करवाई। ऐसे श्रेष्ठ एवं महत्वपूर्ण आलोचक का जन्म 13 जुलाई 1932 को मैट्रिकुलेशन प्रमाण पत्र के अनुसार बिहार के बक्सर जिले के एक ग्राम चुन्नी में हुआ।

गोपाल राय की आरंभिक शिक्षा उनके गाँव और निकटस्थ कस्बे के स्कूल में हुई। माध्यमिक शिक्षा उन्होंने 'बक्सर हाईस्कूल', बक्सर से ही पूरी की। अपनी उच्च शिक्षा करने के लिए ये पटना आए और 'पटना कॉलेज' से ही अपनी शेष शिक्षा पूरी की। स्नातकोत्तर शिक्षा हिंदी विभाग, पटना विश्वविध्यालय से पूरी की। पटना विश्वविद्यालय से ही 1964 में 'हिंदी कथा साहित्य, उसके विकास पर पाठकों की रूचि का प्रभाव' विषय पर डी. लिट् की उपादी प्राप्त की। गोपाल राय का विद्यार्थी जीवन अत्यंत सफल रहा है जिसका प्रमाण यह है कि उन्होंने अपनी समस्त परीक्षाएँ प्रथम श्रेणी में ही उत्तीर्ण की।

परिवार :

गोपाल राय का पारिवारिक माहौल देखा जाये तो, न ही उनके परिवार में कोई साहित्य से परिचित था और न ही शिक्षित था। उनके पिता का नाम कैलाश राय और माता का नाम गिरिजादेवी था। उनके पिता जी उस समय कोलकत्ता में छोटा-मोटा व्यवसाय करते थे। वैसे तो वे बहुत कर्मठ थे और उनके व्यवसाय के प्रति बड़े सचेत रहने वाले इंसान थे। पर शिक्षा के मामले में उन्हें कोई रूचि नहीं थी। वे केवल अपना दस्तखत करना जानते थे, बाकी सब मामला शिक्षा से दूर ही था। लेकिन गोपाल राय की माँ कुछ शिक्षित थी जो उस समय निश्चित रूप से रामायण, रामचरितमानस या इस तरह की धार्मिक पुस्तकों का पाठ करती थी जिसका प्रभाव उनके आचरण और विचारों में था। शायद इसी कारण उन्होंने अपने बेटे को भी अच्छी शिक्षा प्रदान की। उस समय गाँव में शिक्षा का प्रसार प्रचार उतना नहीं था, फिर भी ऐसी परिस्थितियों में गोपाल राय को अपनी शिक्षा पूर्ण करने में अपनी माँ का बड़ा सहयोग मिला। यह सराहनीय है कि बिकट परिस्थितियों में उन्होंने अपने पोलियो ग्रस्त बेटे को पढ़ाने का निर्णय लिया था। जैसे रेणु के 'मैला अंचल' में ग्रामीण समाज के लोग दो बूंद ड्राप के आभाव में जीवन भर के लिए अपनी आँखों की रोशनी खो देते थे। ठीक उसी प्रकार उनके पुत्र (गोपाल राय) भी एक नवजात शिशु पोलियों ड्राप के आभाव में जीवन भर के लिए विकालांग हो गये। ऐसे एक विकलांग बच्चे को शिक्षा से सम्बंधित कई सारी समस्याओं का सामना करना पड़ा। इन सारी समस्याओं को उनकी माँ ने अपने ऊपर लिया और गोपाल राय को प्रेरित और प्रोत्साहित करते हुए उनकी पढ़ाई को पूर्ण किया। इसी कारण गोपाल राय अपना पहला गुरु अपनी माँ को ही मानते हैं। क्योंकि उनकी पढ़ाई-लिखाई से संबंधित या अन्य किसी भी समस्या को सुलझाने के लिए उनकी माँ का बढ़ा सहयोग उनके जीवन में रहा।

गोपाल राय का सारा जीवन अनेक संघर्षों से भरा पड़ा हैं। परन्तु एक अवधूत की तरह उन्होंने अपने जीवन संघर्षों को जिस तरह विकास के रूप में रूपायित किया

है, वह एक निश्चित ही काबिलेगौर है। गोपाल राय ने अपने जीवन और परिवार के प्रति अनेक संघर्षों का सामना कर अपने व्यक्तित्व विकास किया। अपनी धर्म पत्नी श्रीमती करुणा राय जो एक लम्बी बीमारी से संघर्ष करती हुई वर्ष 1985 में दिवंगत हो गई उनको बचाने के लिए (देश के सर्व श्रेष्ठ चिकित्सालय, अखिल भारतीय आयुर्वेदिक संस्थान, दिल्ली तक में इलाज करवाया) बहुत प्रयास किया। इस तरह गोपाल राय ने जीवन में अनेक परिस्थितिओं का सामना कर अपने व्यक्तित्व का विकास किया था।

प्रेरणा :

व्यक्ति की पहचान अथवा उनके कार्य के पीछे कोई न कोई प्रेरणा आवश्यक होती है। प्रेरणा देने के लिए जीवन में कोई न कोई व्यक्ति होता है। कभी वह प्रवृत्ति से तो, कभी परिवेश से जुड़ा होता है। किन्तु गोपाल राय के बाल्य जीवन और परिवार में ऐसा कोई नहीं था। उनका परिवार साधारण था, वह एक सामान्य किसान परिवार से थे। उनके परिवार में कोई भी शिक्षित या साहित्य से परिचित नहीं था। इन सारी परिस्थितियों का सामना करते हुए गोपाल राय ने अपने जीवन को आगे बढ़ाया और एक श्रेष्ठ आलोचक के रूप में हिंदी साहित्य के लिए महत्वपूर्ण योगदान दिया। उनका योगदान हिंदी आलोचना के लिए प्रेरणा के रूप में हमेशा सराहनीय रहेगा।

कुछ लोग अक्सर कठिनाइयों से भयभीत होकर, भ्रमित होकर न केवल अपने मार्ग से भटक जाते हैं बल्कि निराश होकर मार्ग बदल देते हैं। ऐसा व्यक्ति कर्म विहीन, असफल, अपनी महत्वाकांक्षा से दूर होकर सामान्य जीवन व्यतीत करने को बाह्य हो जाता है। परन्तु जो व्यक्ति उन्हीं कठिनाइयों का सामना कर, अपने मार्ग पर निर्भय होकर कर्मक्षेत्र में अग्रसर होता है, तो वह व्यक्ति दूसरों के लिए प्रेरणास्पद बन जाता है। गोपाल राय ऐसे ही व्यक्तित्व के धनी है।

गोपाल राय ने 'गोदान', 'रंगभूमि', 'शेखर एक जीवनी' जैसे अनेक कथा-कृतियों की व्यवस्थित समीक्षा कर पाठकों, आलोचकों को दिशा और दृष्टि दी है। 'समीक्षा' जैसी पत्रिका के सुव्यवस्थित संपादन एवं प्रकाशन के साथ गहन अध्ययन और विश्लेषण द्वारा साहित्य के मूल्यांकन का कार्य आसान नहीं होता। गोपाल राय ने इस कार्य को पूरी निष्ठा और गंभीरता से संपन्न किया है। गोपाल राय एक गंभीर परिश्रमी साहित्य-साधक थे और व्यवस्थित एवं सुचिंतित लेखन के पक्षधर थे। उन्होंने किसी भी काम को आसान न मानते हुए गंभीरता से सोच-समझकर और हर कार्य को मग्न होकर किया है। उन्होंने अपने ग्रंथों में या रचनाओं में जो तिथि, वार, सन्, अर्थ और सौंदर्य को समझाने की कोशिश की है वह बहुत विरल और स्पष्ट है। गोपाल राय का परिश्रम, लगन, तर्क, आलोचना और विश्लेषण आदि एक प्रतिभा संपन्न और समुच्य लेखन ऐतिहासिक महत्व रखनेवाला था। उन्होंने एक सार्थक जीवन जिया और सार्थक लेखन किया जो दूसरों के लिए सार्थकता का सन्देश देने वाला और प्रेरणादायक रहा है।

व्यक्तित्व :

किसी भी व्यक्ति की पहचान उनके व्यक्तित्व से होती है। महान लोगों का व्यक्तित्व अपने जीवन के साथ-साथ दूसरों के जीवन को भी प्रभावित करता है। व्यक्ति का जीवन अनेक कठिनाइयों से भरा होता है। समाज में हर व्यक्ति के जीवन में कठिनाइयाँ आती-जाती रहती है। बस अंतर इतना हैं, कोई इसे बड़ी मुसीबत मानता है तो कोई अपने-आप को इनके चंगुल में फंसा लेता है। परन्तु कोई व्यक्ति ऐसा होता है जो इनका सामना कर इनसे बाहर निकलकर एक प्रेरणादायी व्यक्तित्व बन जाता है। गोपाल राय भी इसी में से एक है। परिस्थितियाँ इन्सान के व्यक्तित्व पर हमेशा हावी रहती है। यह अपने आप पर निर्भर करता है कि हम इनका सामना कैसे करते हैं।

व्यक्तित्व के विकास पर परिस्थितियों के साथ परिवेश का भी बहुत बढ़ा योगदान रहता है। ठीक इस प्रकार ही गोपाल राय का व्यक्तित्व हमारे सामने उभरकर आता है।

अध्यापकीय जीवन :

अध्यापक का दर्जा समाज में हमेशा से ही पूजनीय रहा है। क्योंकि किसी के लिए वह गुरु है, किसी के लिए शिक्षक, तो कोई उसे आचार्य का सम्मान देता है। असल में वह एक अध्यापक होता है, जो व्यक्ति के जीवन को चित्रित करता है। उसमें आशा, अपेक्षा, नई उमंग के रंग भर सभी को ज्ञान देता है, सिखाता है और उसके योगदान से ही किसी भी देश या राष्ट्र के भविष्य का निर्माण होता है। सही मायने में कहा जाये तो एक शिक्षक ही अपने विद्यार्थीयों का भविष्य बनाता है। एक शिक्षक अपने जीवन के अन्त तक मार्गदर्शक की भूमिका अदा करता है और समाज को राह दिखाता रहता है, तभी शिक्षक को समाज में उच्च स्थान दिया जाता है। गोपाल राय ने अध्यापकीय जीवन द्वारा कथा-आलोचना को आगे ले जाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। उनका अध्यापकीय जीवन उनके व्यक्तित्व का सबसे बड़ा महत्वपूर्ण हिस्सा माना जाता है। क्योंकि एक अध्यापक अपने छात्रों को या समाज को बेहतर से बेहतर ज्ञान देने के लिए हमेशा तत्पर, उत्सुक और उत्साही रहता है। गोपाल राय के अध्यापकीय जीवन की शुरुआत सन् 1956 में महाराजा काँलेज, आरा से हुई। लेकिन कुछ ही महीनों में उनकी नियुक्ति पटना विश्वविद्यालय, पटना में हो गई, वे इसी विश्वविद्यालय में विभागाध्यक्ष के रूप में नियुक्त हुए और यही से सेवा निवृत्त भी हुए। गोपाल राय को अपने अध्ययन के समय अपने अध्यापकों की ओर से बहुत अच्छे संस्कार प्राप्त हुए। इन अध्यापकों में प्रमुखत: देवेन्द्रनाथ शर्मा, प्रो. नलिन विलोचन शर्मा, प्रो. जगन्नाथ राय शर्मा आदि हैं। गोपाल राय का मानना है कि इन्ही अध्यापकों से मुझे प्रेरणा मिली और इतना ही नहीं

अपने गुरु प्रो. नलिन विलोचन शर्मा से जो ज्ञान उन्होंने पाया था, उसका जमकर सार्थक उपयोग किया है। इस तरह अपने अध्यापन कार्य को आगे ले जाने में गोपाल राय सक्षम रहे हैं।

गोपाल राय अपने अध्यापन कार्य के सन्दर्भ में स्वयं कहते हैं कि "उन पहलुओं से परिचित कराया जिससे वह अनभिज्ञ थे। जैसे मैंने उपन्यास की संरचना पर पुस्तक इसलिए लिखी थी क्योंकि उस समय संरचना का सही अर्थ कोई नहीं जानता था। मैंने इस पुस्तक में उसके अर्थ को समझाने की ही कोशिश की है। ताकि विद्यार्थी सही रूप से उपन्यास और उससे जुड़े पहलुओं को समझ पाये। कहानी पर भी बहुत चर्चा होती थी लेकिन उसके इतिहास पर कोई बोलने को तैयार नहीं था इसलिए मैंने कहानी के इतिहास पर लिखा ताकि छात्रों को कहानी का एक आधार प्राप्त हो सके। मैं अपने आप को आज भी एक सफल अध्यापक के रूप में देखता हूँ। अध्यापक कहलाने में मुझे गर्व महसूस होता है क्योंकि एक अध्यापक अपने बारे में नहीं बल्कि अपने विद्यार्थीयों के बारे में ज्यादा सोचता है और उन्हें वो देता है जो कोई और लेखक नहीं दे सकता"[1] इस प्रकार गोपाल राय अपने अध्यापकीय जीवन से लेकर वरिष्ट आलोचक, संपादक और एक इतिहासकार के रूप में विख्यात हुए।

गोपाल राय के साहित्य संबंधित विचार :

साहित्य के द्वारा हम समाज को बेहतर ढंग से जान सकते हैं। समाज का असली रूप ही एक साहित्यकार अपने कृतियों के माध्यम से ही समाज के सामने लाता है। हर आलोचक या साहित्यकारों के अपने-अपने विचार होते हैं। आलोचक या साहित्यकार हो अपने-अपने दृष्टिकोण से समाज को देखता है और साहित्य का निर्माण करता है। अक्सर साहित्य को पाठक वर्ग लोकमंगल से जोड़कर देखते हैं तो कभी उसे समाज

जागृति का माध्यम मानते हैं। इतना ही नहीं उसे सामाजिक आन्दोलन की ओर प्रशस्त करने वाले मार्ग के रूप में देखते हैं।

'हिंदी साहित्य का इतिहास' को जब आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा था तब उन्होंने प्रमाणों के साथ उस इतिहास को प्रस्तुत किया। यह केवल एक इतिहासकार का ही नहीं बल्कि एक आलोचक का भी काम हैं। यही काम आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी और अन्य इतिहासकार या अलोचको नें किया। ठीक उसी ही प्रकार गोपाल राय भी इस श्रेणी के अंतर्गत आते हैं। क्योकि उन्होंने 'हिंदी उपन्यास कोश', 'हिंदी साहित्याब्द कोश', 'हिंदी कहानी का इतिहास', 'हिंदी उपन्यास का इतिहास', 'हिंदी उपन्यास की संरचना', 'हिंदी उपन्यास का शिल्प' आदि रचनाएँ केवल कृतियों की सूची ही नहीं दिखाती बल्कि इस बात का पुख्ता प्रमाण भी हैं कि गोपाल राय ने केवल एक रचना को एक जगह से लेकर दूसरी जगह नहीं रखा, बल्कि उसके संबंध में अपने विचार और प्रमाणों को भी प्रस्तुत किया है। जैसे उदाहरण के लिए 'देवरानी जेठानी की कहानी' को उन्होंने हिंदी का पहला उपन्यास माना क्योंकि उनके अनुसार उपन्यासों की शर्तों पर सबसे पहले यही रचना खरी उतरती हैं। मौलिकता, कथानक, चरित्र-चित्रण, संवाद आदि के सन्दर्भ में उन्होंने कई प्रमाण प्रस्तुत किए हैं। उसके बाद ही उन्होंने इसे प्रथम उपन्यास की कोटि में रखा और यही वजह है कि आज कुछ लोग रामचंद्र शुक्ल द्वारा घोषित किये हुए 'परीक्षा गुरु' को ही हिंदी का पहला उपन्यास मानते हैं, तो कुछ लोग 'देवरानी जेठानी की कहानी' को भी हिंदी का प्रथम उपन्यास मानते हैं। उनके साहित्य सम्बंधित विचार के बारे में हरिनारायण ठाकुर ने यह कहा कि "आचार्य रामचंद्र शुक्ल, डॉ. नागेन्द्र, डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी, बच्चन सिंह आदि के बाद इतिहास लेखन का जो सोता सूख चुका था, उसे प्रवाहित करने का श्रेय डाक्टर साहब को ही जाता है और यह साहस भरा काम उन्होंने अकेले अपने बल-बूते पर किया है।"[2] इस कार्य के लिए हिंदी साहित्य हमेशा उनका ऋणी रहेगा

गोपाल राय का साहित्य एवं उनकी आलोचनाएँ पढने पर ऐसा महसूस होता है कि उन्होंने किसी विचारधारा के प्रवाह में बहकर इतिहास और आलोचनाएँ नहीं लिखी अपितु इनका सोचने, समझने का ढंग साहित्य संबंधी विचार और रचनात्मक स्वभाव पहले से ही स्वतंत्र और प्रमाणिक रहा है।

इतिहासकार गोपाल राय :

इतिहास लेखन की परंपरा में जो योगदान गोपाल राय ने दिया है वह साहित्य को एक अलग दृष्टि प्रदान करता है। उनके द्वारा प्रस्तापित स्थापनाएँ प्रारंभिक स्थापनाओं को चुनौती देती है। गोपाल राय ने विधागत इतिहास लेखन का आरंभ कर इतिहास लेखन को एक नयी दृष्टि और समृद्दी की परंपरा का आरंभ किया। इतिहास लेखन की परंपरा में जो योगदान गोपाल राय ने दिया है वह हमें साहित्य को एक अलग दृष्टि से देखने का नज़रिया प्रदान करता है। उन्होंने हिंदी का पहला 'उपन्यास' और पहली 'कहानी' की जो स्थापनाएं की है वह हिंदी साहित्य में नई धाराओं को जन्म देती है।

इतिहासकार के रूप में कालानुक्रमिता और सन्दर्भों की प्रमाणिकता गोपाल राय के लिए सबसे महत्वपूर्ण तथ्यों में से एक हैं। वे सन्दर्भों की प्रमाणिकता को लेकर कितना सजग और संवेदनशील थें, ये उनकी रचनाओं को पढ़ने के बाद जाना जा सकता है। सन्दर्भों की प्रमाणिकता उनके लिए एक इतिहासकार के रूप अत्यावश्यक है। गोपाल राय ने अब तक जितनी भी इतिहास की पुस्तकें लिखी हैं, उन्हें वे प्रमाणिकता के साथ प्रस्तुत करते हैं। शायद इसी कारण एक इतिहासकार के रूप में गोपाल राय की सिध्दि और सार्थकता आज भी है।

गोपाल राय ने अपनी हिंदी कथा साहित्य के इतिहास संबंधित पुस्तकों में उपन्यास और हिंदी कहानी का विस्तृत इतिहास हिंदी के पाठकों के लिए निर्माण किया है। यहाँ पर यह कहे सकते हैं कि भले ही कोई इतिहासकार उनकी इतिहास दृष्टि या

अपनायी गई पद्धति से सहमत या संतुष्ट न हों, परन्तु वह हिंदी कथा साहित्य का इतिहास लिखते समय और हिंदी कथा साहित्य पर काम करते समय गोपाल राय के इतिहास की पुस्तकों को अनदेखा नहीं कर सकता। अगर ऐसा हुआ तो विकास की ऐतिहासिक पद्धति नजरअंदाज हो जाएगी।

गोपाल राय ने जो इतिहास ग्रन्थ लिखे हैं वह इस प्रकार है, 'हिंदी उपन्यास का इतिहास' और 'हिंदी कहानी का इतिहास'। उनकी यह वृहत परियोजनाएँ थी। जिसे उन्होंने दस वर्षों के आथक श्रम से पूरा किया था। 'हिंदी कहानी का इतिहास' अब तक तीन भागों में विस्तृत हैं। आज के समय में जो उनकी लोकप्रियता का प्रमुख आधार इन ग्रंथों को ही माना जाए तो अतिश्योक्ति नहीं होगी। वैसे इन ग्रंथों के आलावा भी उनका रचना संसार काफी विस्तृत हैं जो विद्यार्थी, पाठकों, शोधार्थियों और विद्वानों के बीच समृद्ध हैं। परन्तु यह कह सकते हैं कि उनकों इन इतिहासों की पुस्तकों के माध्यम से जो प्रसिद्धि मिली हैं वह अन्य पुस्तकों की तुलना में ज्यादा और संभवत: स्थायी भी है।

आलोचक गोपाल राय :

गोपाल राय समृद्ध और गंभीर आलोचक के रूप में जाने जाते हैं। अपने जीवन काल में उन्होंने अनेक आलोचनात्मक ग्रंथ लिखे साथ ही 'समीक्षा पत्रिका' का संपादन कर अनेक कृतियों की आलोचनाएँ की। गोपाल राय उपन्यास की आलोचना एवं इतिहास लेखक के कारण अधिक जाने जाते हैं। मुख्यत: वे आलोचना की ओर इसलिए प्रवृत्त हुए कि साहित्य में सत्य को जोर देकर कह सके। गोपाल राय ने जितना भी आलोचना का कार्य किया है वह एक तटस्थ आलोचक के रूप में किया हैं, न की किसी वाद पर। इसलिए उनका आलोचना कर्म वस्तुपरक और विश्वसनीय है। आलोचक गोपाल राय के संदर्भ में विश्वनाथ त्रिपाठी का कहना है कि, "वस्तुत: वे कथा साहित्य के इतिहासकार है। मूलतः उनका जो क्षेत्र है वह इतिहास का है। बिना इतिहास दृष्टि से आप आलोचक सिद्ध नहीं हो सकते और बिना आलोचक के साथ इतिहास भी नहीं

लिख सकते, तो इतिहास और आलोचना और विद्वत्ता तीनों एक दूसरे के हाथ में हाथ दिए आगे बढ़ते हैं। इसके बहुत बड़े उदाहरण 'आचार्य रामचंद्र शुक्ल' है जिन्होंने 'हिंदी साहित्य का इतिहास' भी लिखा और हिंदी के श्रेष्ठ आलोचक भी रहे यद्यपि डॉ. गोपाल राय मूलत: कथा साहित्य के इतिहासकार है लेकिन आलोचक के रूप में भी उनका महत्वपूर्ण स्थान है।"[3]

गोपाल राय की आलोचना दृष्टि का एक पक्ष यह भी कह सकते हैं कि वे राजनीतिक, सामाजिक और साहित्यिक घटनाओं और परिवेश का भी ब्यौरा बेहद सूक्ष्मता से देते हैं और प्रभावों की शिनाख्त रचना और रचनाकारों में करते हैं। इस कारण उनकी आलोचना दृष्टि को हम अलग नजर से देख सकते हैं।

यह कहना उचित नहीं होगा कि गोपाल राय केवल कहानी और उपन्यास के आलोचक हैं, जबकि हिंदी भाषा और विमर्शों पर भी गोपाल राय ने लगातार अपनी कलम चलाई है। 'अपभ्रंस और हिंदी समस्या', 'नवजागरण', 'हिंदी की बोलियों की समस्याएँ,' 'हिंदी उर्दू विवाद' आदि विषयों पर भी गोपाल राय ने लेखन कार्य किया हैं। गोपाल राय ने साहित्य और संस्कृति को करीब से समझा और जाना है, उनके इसी दृष्टिकोण के कारण आज वे एक प्रामाणिक आलोचक के रूप हमारे समक्ष हैं।

गोपाल राय और 'समीक्षा' पत्रिका :

गोपाल राय के साहित्यिक व्यक्तित्व का दूसरा पक्ष है कुशल संपादक। वे लग-भग चार दशकों तक 'समीक्षा पत्रिका' के संपादक पद पर विराजमान रहे हैं। हिंदी में इतने लम्बे समय तक व्यक्तिगत प्रयास से किसी अव्यावसायिक साहित्यिक पत्रिका का प्रकाशन होना अपने आप में एक साहसपूर्ण कदम हैं। 1967 जुलाई महीने की एक शाम को डॉ. रामचंद्र प्रसाद के राजेन्द्र नगर स्थित मकान की छत पर पांच व्याक्तियों की

बैठक में एक ऐसी पत्रिका निकालने का निर्णय लिया जो शुद्ध 'समीक्षा' की पत्रिका हों। इस बैठक में शामिल होने वाले पाँच व्यक्ति थे, डॉ. रामचंद्र प्रसाद, डॉ. वचनदेव कुमार, डॉ. सियाराम तिवारी, डॉ. सीताराम सिंह दीन और डॉ. गोपाल राय। कुछ लोगों ने मतभेदों के कारण इस बैठक से अपने आपको अलग कर दिया, पर शेष बचे विद्वानों ने इस योजना को पूरा करने के लिए दृढ़ संकल्प लिया। गोपाल राय को आचार्य देन्द्रनाथ शर्मा ने इस पत्रिका को किस तरह तैयार करना चाहिए और इसका स्वरूप किस प्रकार का होना चाहिए आदि बातों पर बहुत सहयोग दिया। इतना ही नहीं बल्कि उन्होंने प्रधान संपादक का दायित्व भी संभाला था। इस पत्रिका के मुद्रण के रूप में लक्ष्मी पुस्तकालय के स्वामी श्री. परमेश्वर प्रसाद का सहयोग मिला। जिन्होनें प्रथम अंक का मुद्रण-व्यय वहन करने का आश्वासन दिया था। इतना ही नहीं बल्कि प्रबन्धक के रूप में श्री. गिरीश प्रसाद सिंह ने सेवाएँ देने का निर्णय लिया और संयोजन का भार गोपाल राय ने स्वयं संभाला। इस प्रकार इस पत्रिका का प्रवेशांक जुलाई 1967 में प्रकाशित हुआ। 'समीक्षा' गोपाल राय के संपादकत्व में केवल हिंदी साहित्यिक रचनाओं को समीक्षा का आधार मानकर निकलने वाली यह पहली पत्रिका थी। इसका लक्ष्य हिंदी की अन्य पत्र-पत्रिकाओं से अलग था।

'समीक्षा' में गोपाल राय के प्रयास का अनुमान इन तथ्थों को देखकर खुद ही लगाया जा सकता है कि 'समीक्षा' के प्रथम वर्ष की समाप्ति पर ही 45 उपन्यासों, 18 कहानी संग्रहों, 37 कविता पुस्तकों, 5 नाटकों, 30 आलोचना ग्रंथों तथा 45 विविध विषयों की पुस्तकों की समीक्षाएँ प्रकाशित हो चुकी थी। इसके अतिरिक्त अनेक नवीन पुस्तकों की सूचनाएँ प्रकाशित की जा चुकी थी। वास्तव: में 'समीक्षा' पत्रिका हिंदी में अपने ढंग की एक ही पत्रिका थी, जिसमें केवल नवप्रकाशित पुस्तकों की समीक्षाएँ ही प्रकाशित होती रही। हिंदी के पहले केवल बंगला में 'ग्रन्थ परिक्रम' और गुजराती में

'ग्रन्थ' नामक पत्रिकाएँ यही कार्य कर रही थी। अपने प्रारंभिक अंकों में ही 'समीक्षा' पत्रिका के अन्तर्गत पुस्तक समीक्षाओं के साथ-साथ 'समीक्षा' की बारीकियों से भी पाठकवर्ग को परिचित कराया गया। 'समीक्षा' के प्रथम वर्ष के परिणाम पर अति उत्साह प्रकट करने की बजाय गोपाल राय ने संपादकीय में केवल इतना ही कहा कि..."समीक्षा का प्रथम वर्ष बहुत संतोष जनक रहा है।" संभवत: यही संयमित दृष्टि उनके धैर्य और उत्साह का आजीवन आधार रही है। इसी कारण यह पत्रिका आज भी प्रकाशित हो रही है।

गोपाल राय के शब्दों में "कोई भी पाठक जब किसी पुस्तक को पढ़ना आरंभ करता है तो वह बहुत सारी प्रतिक्रियाओं के बीच से गुजरता है और जब तक पुस्तक समाप्त होती है तब तक उसके संबंध में वह कोई न कोई धारणा बना लेता है प्राय: हम कोई पुस्तक पढ़ने के बाद मित्रों के बीच अपनी प्रतिक्रिया को व्यक्त भी करते हैं। हमारी समझ से यह प्रतिक्रिया अथवा पठित पुस्तक के संबंध में मुक्त चिंतन 'समीक्षा' का प्रमुख आधार है।"[4] इसके आगे प्रतिक्रिया अथवा मुक्तचिंतन को स्पष्ट करने के साथ ही समीक्षक के गुण और दोषों पर उन्होंने विस्तार से चिंतन किया था।

गोपाल राय समीक्षा के माध्यम से केवल पुस्तकों की समीक्षा तक ही सीमित नहीं थे बल्कि उनके ये अनवरत शोध हिंदी आलोचना में नित नये पृष्ठ जोड़े चले जा रहे थे। 'समीक्षा' के प्रवेश अंक (जुलाई-1967) संपादकीय में गोपाल राय ने भले ही यह स्पष्ट किया था कि ..."केवल पुस्तक 'समीक्षा' को अपना ध्येय बनाकर निकलने वाली यह हिंदी की पहली पत्रिका है"[5] लेकिन साथ ही स्वीकार किया कि "पुस्तकों की अनन्तता के साथ अपाठ्यता की जो अनिवार्य सीमा गली है, उसे देखते हुए यह आवश्यक है कि उनके विषय का ज्ञान सामान्य पाठक को भी संक्षेप में हो जाए। समीक्षा

के इस रूप को विकसित करना भी 'समीक्षा' का लक्ष्य है।"[6] यह कहना अनुचित नहीं होगा कि गोपाल राय ने इस लक्ष्य को बखूबी प्राप्त किया था। गोपाल राय ने 'समीक्षा' के इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए क्या कुछ संघर्ष नहीं किये होंगे। इस प्रकार गोपाल राय ने 'समीक्षा पत्रिका' के माध्यम से अनेक आलोचकों और अनेक रचनाओं से परिचित करवाया और इस पत्रिका के प्रकाशन का सारा दायित्व स्वयं संभाला।

यह कह सकते हैं कि गोपाल राय ने बहुत निष्पक्ष, परिश्रम और कर्तव्यनिष्ठ संपादक के रूप में बहुत लम्बे समयतक 'समीक्षा' पत्रिका निकाली और वह अब भी निकल रही है। इस पत्रिका ने अपना एक इतिहास बनाया है और इतना ही नहीं, हिंदी साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं के इतिहास में भी एक महत्वपूर्ण स्थान स्थापित किया है। इस पत्रिका को इस मुकाम तक पहुँचाने के लिए गोपाल राय तथा उनके बेटे प्रो. सत्यकाम का बहुत ही महत्वपूर्ण योगदान रहा है। पिछले कुछ वर्षों से 'समीक्षा पत्रिका' के संपादक के रूप में प्रो. सत्यकाम कार्य कर रहे हैं। जिस तरह गोपाल राय 'समीक्षा' पत्रिका को हिंदी पत्रिकाओं में सर्वश्रेष्ट बनाने की कोशिश करते रहे ठीक उसी प्रकार आज प्रो. सत्यकाम भी उसी परंपरा को आगे ले जाने में सफलता पूर्वक कार्यरत हैं।

गोपाल राय का रचना संसार :

गोपाल राय हिंदी साहित्य में कथा आलोचक के रूप में महत्वपूर्ण माने जाते हैं, साहित्य की अन्य विधाओं पर जैसे उपन्यास, कविता, कहानी, निबंध आदि विषयों पर भी इन्होंने लिखा है। उन्होंने उपन्यास, कहानी, कविताएँ आदि विधाओं को लेकर आलोचनाएँ की और आलोचना की स्वतंत्र पुस्तके लिखी। उनकी इन आलोचनाओं के माध्यम से पाठकों को कम समय में अधिक रचनाओं की जानकारी मिल सकती है ।

गोपाल राय ने अपने आलोचना कर्म से हिंदी आलोचना को नई दिशा और गति प्रधान की है। उनका अधिकतर कार्य कथा साहित्य पर हुआ है। इसलिए वे कथा साहित्य के आलोचक हैं। कथा साहित्य से संबंधित जो भी पुस्तके उन्होंने लिखी या संपादित की है, वैसा कार्य किसी अन्य विद्वान, लेखक और प्राध्यापक ने नहीं किया होगा। उनके द्वारा लिखित और संपादिक ग्रंथों का निम्न प्रकार से संक्षिप्त में वर्णन किया है।

प्रकाशित पुस्तके :

1. हिंदी कहानी का इतिहास:

गोपाल राय हिंदी कथा साहित्य के प्रतिष्ठित विश्लेषक और प्रामाणिक इतिहासकार माने जाते हैं। हिंदी कहानी के इतिहास पर प्रत्येक पक्ष पर उन्होंने विस्तार से लिखा है। 'हिंदी कहानी का इतिहास' नामक पुस्तक को उन्होंने कहानीयों के उद्भव से लेकर अब तक की कहानियों की रचना-यात्रा का विवरण दिया है।

गोपाल राय ने 'हिंदी कहानी का इतिहास' के प्रथम भाग के अंतर्गत सन् 1900 से 1950 तक की कहानियों का कालक्रम और कहानिकारों के अनुसार विवरण दिया है। इस पुस्तक का प्रकाशन सन 2008 में राजकमल प्रकाशक से हुआ। इस पुस्तक में लेखक ने हिंदी कहानी का उद्भव एवं विकास और इतिहास नाम से आजादी: संघर्ष, उपलब्धि और मोहभंग तक पाँच दशकों की कहानियों का विवरण दिया हैं। लेखक ने इस इतिहास में हिंदी और उर्दू कहानियों के अलावा और अन्य भाषाओं की कहानियों का भी परिचय देने का प्रयास किया है। जैसे भोजपूरी, अवधि, मैथिली, ब्रज, राजस्थानी आदि।

'हिंदी कहानी का इतिहास' दूसरे भाग में लेखक ने सन् 1951 से 1975 तक की कहानियों कों उनके कहानीकार और कालक्रम के साथ विश्लेषित किया है। इस पुस्तक का प्रकाशन 2011 में राजकमल प्रकाशक से हुआ है। इस पुस्तक में लेखक हिंदी, उर्दू,

मैथिली, भोजपूरी, राजस्थानी के लगभग 300 कहानिकरों का विवेचन तत्कालीन परिस्थितियों के बीच रखकर करते हैं। जिन कहानिकरों की रचनाएं उपलब्ध नहीं हो पाई हैं उनका भी उल्लेख अवश्य हुआ है।

'हिंदी कहानी का इतिहास' तीसरे भाग में सन् 1976 से 2000 तक की कहानियों का इतिहास प्रस्तुत किया हैं। यह पुस्तक सन् 2014 में राजकमल प्रकाशक से प्रकाशित हुई है।

2. हिंदी उपन्यास का इतिहास :

हिंदी उपन्यास का इतिहास सन् 2002 में राजकमल प्रकाशक से प्रकाशित हुई है। इस ग्रंथ में प्रत्येक दशक के उपन्यास लेखन का आरंभ करनेवाले रचनाकारों को उनके कालक्रम में रखकर प्रत्येक उपन्यासकारों की रचनाओं का इतिहास प्रस्तुत किया है। 'हिंदी उपन्यास का इतिहास' में लेखक ने सन् 1801-1869 के काल कों उपन्यास की दृष्टि से

1. दरवाजे पर दस्तक
2. 1870-1890 काल को नवजागरण और हिंदी उपन्यास
3. 1891-1917 तक रोमांस पाठक और उपन्यास
4. यथार्थ के नये स्वर (1918-1947)
    - (क) केंद्र में किसान (1918-1936)
    - (ख) नयी दिशाओं की तलाश (1937-1947)
5. विमर्श के नये क्षितिज (1948-1980)
6. समकालीन परिदृश्य (1981-2000)

अलग-अलग रूप में प्रत्येक काल को प्रस्तुत किया हैं।

3. उपन्यास की संरचना :

यह पुस्तक गोपाल राय द्वारा लिखी गई एक महत्वपूर्ण कृति मानी जाती हैं। इस पुस्तक का प्रकाशन सन् 2005 में राजकमल प्रकाशक से हुआ, इस पुस्तक का उद्देश्य यह रहा कि कथा के सफ़र से लेकर औपन्यासिक संरचना की समस्या, औपन्यासिक संरचना की प्रविधियां और हिंदी उपन्यास, यथार्थवादी संरचना आदि शीर्षक में लेखक ने उपन्यास की संरचनाओं को समझाने का प्रयास किया हैं।

4. अज्ञेय और उनके उपन्यास :

यह आलोचनात्मक पुस्तक गोपाल राय की महत्वपूर्ण पुस्तक में से एक मानी जाती है। इस पुस्तक का मुख्य उद्देश्य, अज्ञेय की जीवन रेखा, रचना परिवेश, साहित्य संबन्धित विचार और अज्ञेय द्वारा रचित तीनों उपन्यासों में पात्र, वस्तु, शिल्प आदि विषयों का विश्लेषण करना रहा है।

5. अज्ञेय और उनका कथा साहित्य :

'अज्ञेय और उनका कथा साहित्य' गोपाल राय की आलोचनात्मक पुस्तक है, यह पुस्तक वाणी प्रकाशन द्वारा सन् 2010 में प्रकाशित हुई। इस पुस्तक में आलोचक ने अज्ञेय जी का जीवन, रचना परिवेश, साहित्य संबंधी विचार, अज्ञेय के उपन्यासयों का परिचय, वस्तु, पात्र, शिल्प, भाषा, उनकी कहानियाँ, कथा सहित्या में अज्ञेय का स्थान आदि विषयों पर अज्ञेय को विश्लेषित किया हैं।

6. हिंदी भाषा का विकास :

गोपाल राय द्वारा लिखी हुई एक महत्वपूर्ण किताब है। इस किताब का प्रकाशन अनुपम प्रकाशन से सन् 1995 में हुआ है। इस किताब में हिंदी भाषा का विकास एवं उद्भव कों लेकर संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत किया है।

7. हिंदी कथा साहित्य और उसके विकास पर पाठकों की रुचि का प्रभाव :

यह मूलत: एक शोध प्रबंध था जिसे गोपाल राय ने डी. लिट. उपाधि के लिए प्रस्तुत किया था। जिसे ग्रन्थ के रूप में सन् 1965 ई. में 'ग्रंथ निकेतन' पटना से प्रकाशित किया था। लेखक अपने इस शोध प्रबंध में हिंदी कथा साहित्य पर चर्चा करते हुए उपन्यासों के विषय, शिल्प, और भाषा आदि विषयों पर अपना ध्यान केन्द्रित किया। अपने शोध प्रबंध को विस्तार से विश्लेषित करने के लिए उन्होंने कुछ काल विभाजन किया है। वह इस प्रकार है,

1) किसान कहानियों का युग (1800-1869 ई.)

2) हिंदी उपन्यास का उद्भव और शैशव काल (1870-1889 ई.)

3) हिंदी उपन्यास का विकास (प्रथम चरण)-प्रेमचंद पूर्व युग (1890-1917 ई.)

4) हिंदी उपन्यास का विकास (द्वितीय चरण) - प्रेमचंद युग (1918-1936 ई.)

5) हिंदी उपन्यास का विकास (तृतीय चरण) - प्रेमचंदोत्तर युग (1936-अब तक)

8. हिंदी उपन्यास कोश :

गोपाल राय ने रचना संसार के आलावा हिंदी साहित्य को दो अमूल्य निधि प्रधान की हैं प्रथम 'हिंदी उपन्यास कोश' और दूसरा 'हिंदी साहित्याब्द कोश'। यह दोनों ही रचनाएँ हिंदी साहित्य में अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं, क्योंकि इन रचनाओं में एक प्रकार की वैज्ञानिकता और वस्तुनिष्ठता विद्यमान हैं। यह ग्रंथ साहित्य में शोध करने वाले छात्र-छात्राओं के लिए उनके शोध को एक आधार प्रधान करता है।

गोपाल राय ने 'हिंदी उपन्यास कोश' को दो खंडो में लिखा है। प्रथम खंड सन् 1968 में और दूसरा सन् 1969 में प्रकाशित हुए है। प्रथम खंड में 1870 से 1917 तक, और दूसरे खंड में 1918 से 1936 तक के उपन्यासों के लेखक, प्रकाशक, रचना-काल, प्रकाशन-काल एवं विषय का संक्षिप्त विवरण दिया गया है। इस ग्रंथ की सबसे बड़ी

विशेषता यह है कि साहित्यिक अनुसंधान की मूलभूत सामग्री इस ग्रंथ में एक प्रमाणिक रूप में पाठकों, अध्यापकों और शोधार्थियों को प्राप्त होती है। हिंदी उपन्यास कोश लिखने की प्रेरणा सर्व प्रथम आलोचक गोपाल राय से प्रारंभ होती है।

9. उपन्यास का शिल्प :

उपन्यास का शिल्प गोपाल राय का आलोचनात्मक ग्रंथ हैं। इसका प्रकाशन 1973 में बिहार ग्रंथ अकादमी, पटना से हुआ है। यह ग्रंथ उपन्यास के शिल्प की समस्याएँ, कला, शैली, प्रकार, प्रविधि आदि विषयों पर केन्द्रित है।

10. शेखर एक जीवनी :

यह पुस्तक गोपाल राय की महत्वपूर्ण समीक्षा कृति है। इस पुस्तक का प्रकाशक 1975 में अनुपम प्रकाशन से हुआ है। इसमें लेखक ने उपन्यास के गहनतम विषयों को लेकर बड़े विस्तार से अपने समीक्षात्मक मानदंड को एक नया आयाम दिया है। उपन्यास के कथानक शेखर की जीवनता कों लेखक ने बड़े व्यापक ढंग से विश्लेषण किया है।

11. गोदान ; नया परिपेक्ष्य :

इस कृति का प्रकाशक 1982 मे अनुपम प्रकाशन पटना से हुआ। यह पुस्तक गोपाल राय की महत्वपूर्ण आलोचनात्मक कृति है। इसमें उपन्यास के नायक होरी और अन्य पात्रों, उपन्यास की समस्याएँ, कला, भाषा आदि महत्वपूर्ण विषयों को गहराई से विश्लेषण किया है।

12. रंगभूमि : पुनर्मुल्यांकन :

यह पुस्तक गोपाल राय की महत्वपूर्ण समीक्षात्मक कृतियों में से एक है। इस पुस्तक का प्रकाशन सन् 1983 अनुपम प्रकाशन हुआ है। इसमें लेखक ने उपन्यास के गहनतम मुद्दों को उठाया है और बड़े विस्तार से अपने आलोचनात्मक मानदण्ड को एक नया आयाम दिया है।

13. मैला आँचल :

इस में लेखक ने विशेष रूप से 'मैला आँचल' आंचलिक उपन्यास की अवधारणा और हिंदी उपन्यास, रेणु की उपन्यास यात्रा, कथ्य, शिल्प, पात्र-योजना, भाषा आदि विषयों पर विस्तार से विवरण दिया है। इस किताब का प्रकाशन सन् 2000 में अनुपम प्रकाशक से हुआ है।

14. दिव्या :

इस पुस्तक का प्रकाशन सन् 2001 में अनुपम प्रकाशन से हुआ है। 'दिव्या' लेखक के आलोचनात्मक किताबों में से एक विशिष्ट मानी जाती है। इस पुस्तक में आलोचक ने 'दिव्या' का कथासंसार, पात्र, दिव्या का समाज, दिव्या में चित्रित भारतीय संस्कृति आदि बातों पर अपना ध्यान केन्द्रित किया है।

15. महाभोज :

गोपाल राय की यह किताब ('उपन्यास की पहचान' श्रृंखला के अंतर्गत) छठे स्थान पर है है। इस किताब का प्रकाशन सन् 2002 में अनुपम प्रकाशन से हुआ है। लेखक ने इस आलोचनात्मक पुस्तक में कथ्य, शिल्प, भाषा और पात्र को लेकर अपने गहनतम मुद्दो को उठाया है और उनका विस्तार के साथ विवरण दिया है।

संपादित पुस्तकें :

1. हिंदी सहित्याब्द कोश :

'हिंदी साहित्याब्द कोश' भी हिंदी उपन्यास कोश की तरह एक संदर्भ ग्रंथ हैं जिसमें साहित्य की हर विधा की रचना का वर्णन वर्ष-वार रूप में प्रस्तुत किया गया है। 'हिंदी साहित्याब्द कोश' गोपाल राय द्वारा संपादित है, इस कोश में सन् 1967 से 1980 तक की पुस्तकों की समीक्षाएँ, परिचय और पुस्तकों की सूचनाएँ दी गई है।

‘हिंदी साहित्याब्द कोश’ में लगभग 14 साल के साहित्य का पूरा वर्णन हमें मिलता हैं। यह कोश विद्यार्थियों, शोधार्थियों और लेखकों के लिए बहुत महत्वपूर्ण माना जाता है। इसमें साहित्य की हर विधाओं की रचना की समीक्षाएँ और पुस्तक सूचनाओं का वर्णन प्रस्तुत किया है।

2. ‘दिनकर’ व्यक्तित्व और रचना के आयाम :

इस पुस्तक का सम्पादन गोपाल राय और प्रो. सत्यकाम ने किया है। इस पुस्तक का प्रकाशन सन् 2011 में सुहानी बुक्स (किताब घर) से स्वर्गीय दिनकर की पुण्यतिथि की प्रथम वार्षिकी के अवसर पर उनकी पुण्यस्मृति में हुआ। इस पुस्तक में दिनकर के लेख और उनकी छोटी-बड़ी सभी रचनाएँ एक साथ हमें इस किताब में मिलती है।

3. देवरानी जेठानी की कहानी :

यह पुस्तक गोपाल राय की महत्वपूर्ण आलोचनात्मक कृति है। इस पुस्तक का प्रकाशन सन् 1966 में ग्रंथ निकेतन, पटना से हुआ है। यह कहानी उस समय की समकालीन परिस्थितियों को लेकर प्रकाशित हुई थी। जिसकी गोपाल राय ने बड़े अच्छे ढंग से आलोचना की है। उतना ही नहीं इस कहानी को गोपाल राय ने ‘हिंदी का प्रथम उपन्यास’ का दर्जा भी दिया है।

सम्मान/पुरस्कार :

गोपाल राय को उनके इस साहित्यिक अवदान के लिए समय-समय पर सरकारी एवं निजी साहित्यिक संस्थाओं द्वारा पुरस्कृत और सम्मानित भी किया गया है। वह इस प्रकार है।

- ‘हिंदी कथा साहित्य और उसके विकास पर पाठकों की रूचि का प्रभाव’ के लिए बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना द्वारा पुरस्कृत (1966)

- पुनः 'हिंदी कथा साहित्य और उसके विकास पर पाठकों की रूचि का प्रभाव' के लिए उत्तर प्रदेश शासन, लखनऊ द्वारा पुरस्कृत (1972)
- 'हिंदी उपन्यास कोश' के लिए उत्तर प्रदेश शासन, लखनऊ द्वारा पुरस्कृत (1974)
- 'साहित्यकार सम्मान' हिंदी अकादमी, दिल्ली (2000)
- रचना सम्मान 2010, नयी धारा, पटना (बिहार)
- आल इंडिया मुस्लिम इंटलेक्चुअल फोरम, नयी दिल्ली द्वारा वरिष्ठ आलोचक के रूप में सम्मानित (04.04.2011)
- केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा ; शोध और आलोचना, राहुल सांकृत्यायन पुरस्कार से पुरस्कृत (2012)

साहित्यिक संस्थाओं और सरकारी विभागों में सदस्यता :

- 1971-1977 में बिहार प्रगतिशील लेखक संघ के सदस्य तथा उपाध्यक्ष
- 1973-1977 तक भारतीय हिंदी परिषद् के साहित्य मंत्री और 1988-92 तक प्रधान मंत्री
- 1984-1988 में भारत सरकार के विदेश मंत्रालय में हिंदी सलाहकार समिति के सदस्य
- 2002-2004 में भारत सरकार के अपारम्परिक उर्जा विकास मंत्रालय में हिंदी सलाहकार समिति के सदस्य
- 2005-2008 में भारत सरकार विज्ञान और प्रौद्योगिक मंत्रालय तथा महासागर विकास विभाग की संयुक्त हिंदी सलाहकार समिति के सदस्य

अंततः बिहार के एक साधारण मध्यवर्गीय किसान परिवार में जन्मे गोपाल राय की आरंभिक शिक्षा अपने गाँव में ही हुई। माध्यमिक शिक्षा बक्सर हाई स्कूल से प्राप्त

कर उच्च शिक्षा पूरी करने के लिए वे पटना आ गए और वहाँ पटना कॉलेज से ही अपनी शिक्षा पूरी की। वहीं से 1966में 'हिंदी कथा साहित्य और उसके विकास पर पाठकों की रूचि का प्रभाव' विषय पर डी. लिट् की उपाधि भी प्राप्त की। एक अध्यापक, आलोचक और संपादक के रूप में उन्होंने अपने जीवन का सफलता पूर्वक निर्वाह किया। यह कह सकते हैं कि प्रतिकूल परिस्थितियों में भी गोपाल राय जी ने अपने व्यक्तित्व का सुयोग्य विकास किया। बचपन से ही अनेक कठिनायों का सामना करते हुए आगे बढ़ते रहे। इतना ही नहीं वे बचपन से ही पोलियों का शिकार हो गए, फिर भी फिर भी उनकी पढ़ाई-लिखाई में उनकी माँ का सहयोग हमेशा रहा। इसलिए गोपाल राय अपना पहला गुरु अपनी माँ को ही मानते हैं। उनके पिता के द्वारा खड़े किए गए कई सरे अवरोधों के बावजूद उनकी माँ ने उन्हें पढ़ाने का एकतरफा निर्णय लिया था। इस तरह गोपाल राय जीवन में अनेक संघर्षों का सामना कर सफल रहे और दूसरों के लिए प्रेरणादायाक रहे हैं। ऐसे चिंतनशील, प्रेरणदायी, उत्कृष्ट कोटी के आलोचक आज हमारे बीच नहीं हैं। 26 सितंबर 2015 को इस श्रेष्ठ आलोचक ने साहित्य जगत से विदा ली।

संदर्भ :-

[1] समसामयिक सृजन - सं. महेंद्र प्रजापति अंक एक जुलाई-दिसम्बर 2013 पृ. सं. 62

[2] 'समीक्षा' पत्रिका - सं. सत्यकाम, अंक 3 अक्टूबर-दिसम्बर 2012, पृ. सं. 21

[3] समसामयिक सृजन - सं. महेंद्र प्रजापति, अंक एक जुलाई-दिसम्बर 2013, पृ. सं. 47

[4] वही, पृ. सं. 42

[5] 'समीक्षा' पत्रिका - सं. गोपाल राय, अंक एक संपादकीय से 1967

[6] वही, अंक एक जनवरी-मार्च 1982

-: द्वितीय अध्याय :-

हिंदी आलोचना की विकास यात्रा : एक परिचय

द्वितीय अध्याय

हिंदी आलोचना की विकास यात्रा : एक परिचय

हिंदी की अन्य विधाओं की तरह ही आलोचना का विकास भी प्रमुख रूप से आधुनिक काल के शुरुआती दौर में हुआ। साहित्य के अंतर्गत आलोचना विकास की दो शर्त्तें प्रमुख रूप से मानी गई हैं, पहली कि आलोचना हमेशा रचनात्मक साहित्य से जुड़ी हो और दूसरी वह समकालीन साहित्य के साथ अपना सामंजस्य स्थापित करें। आलोचना अपने प्रस्थान बिंदु से ही इन दोनों कसौटियों पर खरी उतरती रही है। आधुनिक काल के पहले आलोचना का स्वरूप संस्कृत काव्य की परंपरा से होकर निकलता था, किन्तु आज जो हिंदी आलोचना का स्वरुप है वह आधुनिक हिंदी साहित्य आरंभ के साथ या साहित्य में आधुनिक दृष्टि के साथ दिखाई देता है। आज की हिंदी आलोचना संस्कृत के काव्यशास्त्रीय चिंतन की पृष्ठभूमि का भी स्वीकार करती है, जिसके कारण वह नवीन सृजन, नवीन विचारधाराओं और नवीन सामाजिक सरोकारों से टकराते हुए विविध दृष्टियों, प्रतिमानों और प्रवृतियों से युक्त हो रही है।

परिभाषा :

किसी भी साहित्यिक कृति को देखना, परखना, समझना और उसके अंतरबाह्य संबंधों का उद्घघाटन व विश्लेषण करना ही आलोचना है। किसी भी साहित्यिक कृति का परम्परा से अविच्छिन्न संबंध रहता है। परम्परा के परिपेक्ष्य में उसका मूल्यांकन करने की पद्धति ही आलोचना है। आलोचना वस्तुत: व्यक्ति विवेक पर निर्भर रहती है। एक आलोचक अपने अध्ययन, मनन चिंतन तथा विवेक की दृष्टी से किसी कृति का मूल्यांकन करता है। कोई कृति समाज के लिए कितनी महत्वपूर्ण है, समाज के लिए

उसकी उपादेयता क्या है? समय और समाज की प्रवाहशीलता में वह कृति टिक सकती है अथवा नहीं, क्या वह जीवन के प्रश्नों से आत्मसाद होती है या नहीं, जीवन मूल्यों को वह कहाँ तक संजोये रखती है आदि प्रश्नों के उत्तर जानने के लिए एक आलोचक कृति को जानने की कोशिश करता है। अंतत: उत्तम आलोचना स्वयं सर्जनशील होती है। वह अपने आप में एक कृति बन जाती है। इस प्रकार आलोचना का कर्म केवल विश्लेषण विवेचन नहीं है, प्रत्युत जीवन के शाश्वत प्रश्नों की खोज है। आलोचना अपने समय और परिवेश के संदर्भ में किसी कृति के मर्म बिन्दुओं तक पहुँचने की अंतरदृष्टी है।

मैनेजर पाण्डेय के अनुसार "रचना की तरह आलोचना भी एक सांस्कृतिक प्रक्रिया का अंग है। रचना का संबंध व्यापक सामाजिक-सांस्कृतिक प्रक्रिया से होता है, लेकिन आलोचना का संबंध रचना से भी होता है और व्यापक सामाजिक-सांस्कृतिक प्रक्रिया से भी। उसका संबंध कलात्मक संवेदनशीलता से होता है और सामाजिक संवेदनशीलता से भी। आलोचना की सार्थकता के लिए समकालीन रचनशीलता और सामाजिक जीवन के यथार्थ का संबंध-बोध ही पर्याप्त नहीं होता, रचनशीलता की परंपरा, प्रक्रिया, प्रभाव और परिणाम की चिन्ता भी आवश्यक होती है।"[1] वस्तुत: रचना का सामाजिक, सांस्कृतिक और कलात्मक संवेदनशीलता के साथ अध्ययन ही आलोचना है।

यदि काव्य को जीवन की व्याख्या कहा जाएँ तो निश्चित ही आलोचना को काव्य का आख्यान कहा जाना चाहिए। श्रेष्ठ आलोचक कवि की प्रतिभा को प्रकाशित करता है। वह कवि द्वारा प्रणित साहित्य की विशिष्टताओं को प्रकाश में लाकर अंतसौंदर्य को प्रकट करता है। यथा डॉ. जानसन अगर शेक्सपियर की विशिष्टताओं का उद्घाटन न करते तो शायद ही वे विश्व के सर्वोत्तम नाटककार बन पाते। उसी प्रकार आचार्य शुक्ल

ने सुर, तुलसी, जायसी की विस्तृत समीक्षाएँ लिखकर उन्हें हिंदी साहित्य में सर्वोच्च आसान पर बिठा दिया।

हिंदी आलोचना की आज एक स्वतन्त्र और समृद्ध गद्य विधा के रूप में स्वीकृति है। अन्य गद्य विधाओं की तरह आलोचना का विकास भी आधुनिक काल से अर्थात भारतेन्दु युग से ही माना जाता है। इसका तात्पर्य यह नहीं कि भारतीय आचार्यों ने काव्य सौंदर्य के विधायक तत्वों का विरूपण नहीं किया। वस्तुत: उन्होंने काव्य के सौंदर्य विधायक तत्वों को लक्षित और परिभाषित करने के प्रयत्न में स्वतंत्र सिद्धांत ग्रंथों की रचना की थी। वे स्वयं काव्यशास्त्र निर्माता कहें गए। इन आचार्यों ने कवि विशेष या कृति विशेष के रचना सौष्ठव के विश्लेषण में विशेष रुचि नहीं दिखाई। उन्होंने रस, अलंकार, रीति, वक्रोत्ति, औचित्य और ध्वनि सिद्धांत की मीमांसा करते हुए काव्य के बह्य और आतंरिक सौंदर्य के आधारभूत तत्वों का स्वरूप निर्धारित किया। उनकी स्थापनाएँ आज भी प्रासंगिक है और हिंदी आलोचना अपने विकास के प्रत्येक चरण में उनसे प्रेरणा और शक्ती ग्रहण करती है। आधुनिक काल से हिंदी आलोचना का आरंभ मानने का अर्थ यह है कि हिंदी के साहित्य मनीषियों में कवि विशेष या कृति विशेष का अध्ययन करने के बाद उसके महत्व और मूल्य का प्रतिपादन करते हुए स्वतंत्र रूप से प्रबंध या निबंध लिखने की शुरुआत आधुनिक काल में की है। हिंदी साहित्य के आधुनिक काल का आरंभ भारतेन्दु युग से माना जाता है। अत: हिंदी आलोचना के स्वरूप को निर्देशित करने के लिए हमें इसी युग से अपनी विचार यात्रा आरंभ करनी होगी।

भारतेन्दु युग में हिंदी आलोचना का आरंभ पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से हुआ, किन्तु इस काल में आधुनिक आलोचना का उत्कृष्ट उदहारण नहीं मिलता। 'हिंदी प्रदीप' (1877-1910) ही एक ऐसा पत्र था जो अपेक्षाकृत गंभीर आलोचनाएँ प्रकाशित करता था। पत्र-पत्रिकाओं में 'पुस्तक समीक्षा' के रूप में प्रकाशित होने वाली आलोचनाओं के अतिरिक्त इस युग में तीन प्रकार की आलोचनाओं का अस्तित्व भी स्वीकार किया गया।

जिसमें प्रथम रूप में रीतिकालीन लक्षण-ग्रंथों की परम्परा में लिखित सौद्धांतिक आलोचना आती है, द्वितीय रूप में ब्रजभाषा एवं खड़ी बोली गद्य में लिखी गयी टीकाओं के रूप में प्रचलित आलोचना को स्वीकारा गया और तृतीय रूप में इतिहास-ग्रंथों में कवि परिचय के रूप में लिखी गयी आलोचना का समावेश होता है।

प्रथम वर्ग के अंतर्गत पिंगल, अलंकार, रस, नाटक तथा सम्पूर्ण काव्यशास्त्र इन सभी विषयों पर लक्षण ग्रंथों की रचना की गयी। उदाहरण स्वरूप ज्वालास्वरूप कृत 'रूद्र पिंगल' (1869), उमराव सिंह कृत 'छद् महोदधि' (1878), जगन्नाथ प्रसाद 'भानु' कृत 'छन्द प्रभाकर' (1894) और जगन्नाथ दास 'रत्नाकर' कृत 'घनाक्षरी नियम रत्नाकर' (1897) इस युग में रचित उल्लेखनीय पिंगल ग्रंथ है। इस प्रकार लछिराम कृत 'रावणेश्वर कल्पतरु' (1892) और मुरारिदान कविराज कृत 'जसवंत-जसो-भूषण' (1897) आलोच्य युग के महत्वपूर्ण अलंकार ग्रंथ है। रस ग्रंथों में कृष्णलाल कृत 'रस-सिन्दुविलास' (1883), साहब प्रसाद सिंह कृत 'रस रहस्य' (1886) और प्रताप नारायण सिंह कृत 'रस कुसुमाकर' (1884) उल्लेखनीय है। 'रस कुसुमाकर' में लक्षण स्वच्छ खड़ीबोली गद्य में दिये गये हैं। इसीलिए रसशास्त्र के स्पष्ट और सुबोध ज्ञान के लिए यह ग्रंथ महत्वपूर्ण है। सम्पूर्ण काव्यशास्त्र को दृष्टी में रखकर लिये गये लक्षण ग्रंथों में जानकी प्रसाद का 'काव्य सुधाकर' (1886) उल्लेखनीय है। नाट्यशास्त्र संबंधी सर्वाधिक महत्वपूर्ण कृति भारतेन्दु का 'नाटक' (1883) है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें प्राचीन 'नाट्यशास्त्र' की जानकारी के साथ युग प्रवृत्ति का ध्यान रखकर प्राचीन, जटिल शास्त्रीय नियमों की छूट लेने की आवश्यकता पर भी बल दिया गया है। इन लक्षण ग्रन्थों से कुछ महत्वपूर्ण बातें प्रकट होती हैं एक तो ये इस बात के सूचक हैं कि किसी भी युग में शिक्षित जनता की मनोवृति का प्रवाह समानान्तर कई धाराओं में हो सकता है। आलोच्य-युग में एक ओर जहाँ पत्र-पत्रिकाओं में व्यापक राष्ट्रिय हित एवं

समाज-कल्याण को दृष्टि में रखकर पुस्तकों की समीक्षा की जा रही थी, वहीं दूसरी ओर रितिकालीन मूल्यों में विश्वास करने वाले कुछ विद्वान पिंगल, नायिका-भेद, रस-निरूपण एवं अलंकार-विवेचन में प्रवृत्त थे। दूसरी महत्वपूर्ण बात यह लक्षित करने की है कि समाज को प्रभावित करने वाली कुछ विकृतियों का उल्लेख कर देने मात्र से काव्य-समीक्षा का स्तर ऊँचा नहीं उठता। जब तक शास्त्रीय सिद्धांतों का पुनराख्यान करके उनकी कसौटी पर नवीन कृतियों की गम्भीर एवं मार्मिक परख नहीं की जाती, तब तक शास्त्रीय सिद्धांतों की पुरानी परंपरा अलग घिसटती रहती है और सामान्य समीक्षा का प्रवाह अलग चलता रहता है।

ब्रजभाषा गद्य में लिखी जाने वाली टीकाओं की परंपरा को आलोच्य युग के पूर्व तक 'सरदार' कवि ने जीवित रखा। उनके द्वारा रचित 'कवि प्रिय', 'रसिक प्रिय' और 'बिहारी सतसई' की टिकाएँ अधिक लोकप्रिय हुई थी। आलोच्य-युग में 'बिहारी सतसई' पर लल्लू-लाल जी की टीका 'बालचन्द्रिका' (1819) का संशोधन करके दुर्गादत्त कवि ने सन 1864 में और पून: ग्रीयर्सन ने 1896 में प्रकाशित कराया। यह टीका ब्रजभाषा प्रभावित खड़ी बोली गद्य में थी। प्रभुदयाल पाण्डेय ने भी 1896 ई. में खड़ी बोली गद्य में 'बिहारी सतसई' की एक अच्छी टीका लिखी थी। इन टिकाओं में कहीं-कहीं उत्तम एवं सूक्ष्म-काव्य-गुणों का संकेत मिल जाता है। इसलिए टीका पद्धति की व्याख्या को भी एक प्रकार की आलोचना कहा जा सकता है। आलोच्य युग में दो इतिहास ग्रंथ लिखे गये। शिवसिंह सेंगर कृत 'शिवसिंह सरोज' (1878) और जार्ज ग्रीयर्सन कृत 'द माडर्न वर्नाक्युलर लिटरेचर ऑफ नार्दर्न हिंदुस्तान' (1889)। इनमें से शिवसिंह सेंगर की आलोचना-पद्धति में प्रशंसात्मक उक्तियों की बहुलता है। प्रशंसात्मक उक्तियों के अतिरिक्त जो कुछ उन्होनें कहा है वह सब प्राय: सूचना मात्र है। ग्रियर्सन ने अवश्य कुछ

कहने की चेष्टा की है लेकिन उसमें समीक्षा-दृष्टि का केवल आभास मिलता है। तुलसीदास के संबंध में विचार करते हुए उन्होंने वस्तु-वर्णन की स्वाभाविकता को सहारा है। पात्रों के वार्तालाप के लालित्य की दाद दी है और उनके भाषाधिकार की प्रशंसा की है, किन्तु उनकी यह दृष्टि जायसी, सूर और तुलसी जैसे कुछ थोड़े से कवियों के परिचय में ही लक्षित होती है। सामान्यत: उन्होंने एक इतिहासकार की भूमिका को अदा करते हुए कवियों और लेखकों का वृत्त ही प्रस्तुत किया है। अत: आलोच्य युग के इतिहास ग्रन्थों में दिये गये कवि परिचयों में आलोचना के तत्व नहीं के बराबर है।

भारतेन्दु युग में आधुनिक आलोचना का बीज-रूप आज भी पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित पुस्तक-समीक्षाओं में सुरक्षित है। इस युग में सबसे पहला उल्लेखनीय नाम बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' का है। उन्होंने श्रीनिवासदास कृत 'संयोगिता स्वयंवर' और गदाधर सिंह कृत 'बंग विजेता' के अनुवाद की विस्तृत आलोचना 'आनन्द कादंबिनी' में की थी। इसके बाद बालकृष्ण भट्ट और बालमुकुन्द गुप्त ने इस परम्परा को आगे बढ़ाया। भट्ट जी 'नीलदेवी', परीक्षा गुरु', 'संयोगिता स्वयंवर' और 'एकांतवासी योगी' आदि ग्रन्थों की आलोचनाएँ तत्कालीन समीक्षा-साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं। बालमुकुन्द गुप्त द्वारा लिखित आलोचनाएँ भी इसी परम्परा को आगे बढ़ाने वाली है किन्तु इनका कृतित्व बहुत कुछ द्विवेदी युग की सीमा में आता है।

हिंदी आलोचना : स्वरूप और संकल्पना :

रीतिकालीन काव्यशास्त्रीय विवेचन में संस्कृत काव्यशास्त्र की पुनरावृति के कारण इसमें न तो सूक्ष्म विश्लेषण रहा और न ही पर्यालोचन और न ही मौलिकता थी। काव्यशास्त्रीय के दृष्टि से इसमें रस तो विद्यमान था लेकिन सामाजिक संदर्भो में उभरते हुए जीवन काव्य का रस नहीं। फिर भी हम कह सकते हैं कि हिंदी आलोचना का

विकास सामाजिक संदर्भों के उभरते रूप से हुआ। भारतेन्दु युग में विकसित होते साहित्य के पीछे देश के सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक समस्याओं एवं विषमता बोध आदि स्थितियाँ लक्षित हुई, उसी प्रकार आलोचना का भी संबंध यथार्थ बोध से हुआ और यह प्रतीत होने लगा कि रस किसी छंद में नहीं है बल्कि मानवीय संवेदना के विस्तार में है। इस संदर्भ में मैनेजर पाण्डेय कहते हैं कि, "हिंदी आलोचना के शिल्प में अतिरंजना और सरलीकरण की प्रवृत्ति बहुत व्यापक हैं। अतिरंजना और सरलीकरण के मूल में चमत्कार की चिंता होती है, जिससे पाठक या श्रोता चकित तो होते हैं, पर विवेकशील नहीं बनते।"[2]

हिंदी आलोचना की संकल्पना पाश्चात्य की नक़ल पर नहीं है, बल्कि भारतीय साहित्य को समझने-बूझने और उसकी उपादेयता पर विचार करने की आवश्यता के कारण इसका उदय और विकास हुआ है। इसी कारण हिंदी आलोचना रचनाशीलता की समानधर्मी रही है। हिंदी साहित्य के मुक्त चेतना के स्वरूप को ध्यान में रखते हुए हिंदी आलोचना भी संस्कृत काव्यशास्त्र की आधार भूमि के साथ जुड़कर भी स्वाभाविक रूप से रीतिवाद, साम्राज्यवाद, सामंतवाद, कलावाद और अभिजात्यवाद विरोधी और स्वच्छंदताकामी रही है। रचना और आलोचना की समानधर्मिता या समांतरता को डॉ. रामविलास शर्मा, निराला और प्रेमचंद द्वारा स्पष्ट करने का प्रयास किया गया। उनकी दृष्टि से जो काम निराला ने काव्य में और प्रेमचंद ने उपन्यासों के माध्यम से किया वही काम आचार्य शुक्ल ने आलोचना के माध्यम से किया। गौरतलब है कि आलोचना और रचना दोनों का संबंध गहन होता है जिसके परिणाम स्वरूप आलोचक शस्त्रवाद का सहारा न लेते हुए रचना के बीच से ही मूल्यांत्मक और विवेचनात्मक दृष्टि का परिचय देता है।

हिंदी आलोचना की विकास यात्रा :

हिंदी आलोचना के इतिहास के संदर्भ में चर्चा की जाए तो ज्ञात होगा कि यह रीतिकाल से थोड़ा पहले शुरू होता है। 'हिततरंगिणी' के लेखक कृपाराम हिंदी के पहले काव्यशास्त्री माने जाते हैं। लेकिन हिंदी में 'काव्य रीति' का सम्यक समावेश सबसे पहले आचार्य केशव ने ही किया, जिसका अनुकरण परवर्ती रीतिकालीन आचार्यों और लक्षणकारों ने किया। हिंदी वार्ता-ग्रंथों, भक्तमालों और उनके टीका-ग्रंथों के रूप में आलोचना की जो प्राचीन परंपरा मिलती है, वह निःसंदेह हिंदी आलोचना का प्रवेश द्वार है। लेकिन आचार्यत्व और कवित्व के एकीकरण के इस दौर में आलोचना लक्षण, उदाहरण और टीकाओं तक ही सीमित थी। हिंदी आलोचना की विकास यात्रा को हम निम्न अवस्थाओं के अंतर्गत देख सकते हैं

भारतेन्दु युगीन हिंदी साहित्य पुनर्जागरण कालीन जिन प्रवृत्तियों का प्रतिनिधित्त्व करता है, हिंदी आलोचना उन्हीं के बीच से विकसित होती है। इस युग से ही हिंदी आलोचना का विकास मुख्यत: पत्र-पत्रिकाओं में लिखे गए निबंध और पुस्तक समीक्षाओं से ही होता है। हिंदी आलोचना के उद्भव का विवेचन करते हुए नंदकिशोर नवल ने लिखा है कि "भारतेन्दु-युग की आलोचना पुस्तक-समीक्षा के रूप में ही सामने आती हैं, लेकिन यह पुस्तक-समीक्षा आलोचनात्मक संभावनाओं से भरी हुई है। इसमें गुण-दोष, विवेचन प्रधान है, पर साथ ही इसका भी संकेत है कि कृति सम्पूर्ण रूप से कैसी है, इसी तरह इसमें कृति को सामाजिक और राष्ट्रिय संदर्भ से जोड़कर देखने की प्रवृत्ति है तो साहित्यिक कसौटी पर उसकी परीक्षा का भी प्रयत्न है।"[3] इस युग में कवि और आलोचना दोनों ही एक साथ कंधा मिलाकर खड़े हो गए। कहना चाहिए कि अपने

सृजनकार्य को समझने के लिए या सही स्थिति का एहसास करने के लिए कवि ही आलोचक हो गया। यह कहना होगा कि इस युग के सभी लेखक ही आलोचक है।

भारतेन्दु बहुमुखी प्रतिभा के दूर दृष्टि सम्पन्न साहित्यकार थे। वे ब्रजभाषा के तथा खड़ी बोली के उत्तम कवि, नाटककार, निबंधकार एवं पत्रकार थे। उन्होंने न केवल स्वयं रचना की, अपितु रचनाकारों का एक मण्डल बनाया। उन्होंने अपने अल्पजीवन काल में ही हिंदी की विभिन्न विधाओं में उल्लेखनीय कार्य किया। हिंदी में आधुनिक आलोचना का सूत्रपात भारतेन्दु से ही होता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में "हमारे जीवन और साहित्य ले बीच जो विच्छेद पड़ रहा था उसे उन्होंने दूर किया। हमारे साहित्य को नए-नए विषयों की ओर प्रवृत्त करने वाले हरिश्चंद्र ही हुए"[4] 'हरिश्चंद्र-चंद्रिका' नामक पत्रिका के मुख पृष्ठ पर प्रकाशित विषयों की सूची के अन्त में 'समालोचना-संभूषित' के अंतर्गत समालोचनात्मक रचनाओं को स्थान दिया जाता था।

भारतेन्दु काल हिंदी आलोचना का पुनर्जागरण काल कहा जाता है। गद्य के विकास का प्रारम्भिक काल होने के कारण इस युग की हिंदी आलोचना भाषा की दृष्टि से इतनी परिनिष्ठित और प्राणवती नहीं थी। इस काल के साहित्यकारों ने उसे विकास मार्ग की ओर प्रवृत्त किया। अत: गद्य की अन्य विधाओं के समान इस काल को हम हिंदी आलोचना का प्रवर्त्तन काल भी कह सकते हैं। लेकिन फिर भी भारतेन्दु युग की आलोचना पद्धति पर आरोप-प्रत्यारोप होते रहे हैं, जिनका खंडन करते हुए नंदकिशोर नवल कहते हैं, "भारतेन्दु-युग की आलोचना के बारे में यह कहा जाता रहा है कि इस में कृति पर उसकी समग्रता में विचार नहीं किया गया है और समीक्षकों ने अलग-अलग केवल उसके अंशों पर दृष्टि डाली है। यह बात पूर्णतः सही नहीं प्रतीत होती है, क्योंकि 'संयोगता स्वयंवर' के बारे में भट्टजी के उपयुक्त विचारों को देखने से ऐसा लगता है कि

उन्होंने संपूर्ण नाटक को अपनी दृष्टि में रखकर उस पर टिप्पणियाँ की हैं।"[5] भारतेन्दु युग के आलोचकों की प्रमुख विशेषता यह है कि उन्होंने अपने आपको प्राचीन परम्परा से भिन्न करते हुए संस्कृत साहित्य-समीक्षा एवं पाश्चात्य समीक्षा पद्धति के साथ समन्वित करने का प्रयत्न किया। अर्थात भारतेन्दु युग के आलोचनात्मक लेखों में हमें पाश्चात्य एवं संस्कृत समीक्षा-पद्धति दोनों के सिद्धांतों का समन्वय दिखायी देता है। भारतेन्दु युग के संदर्भ में नंदकिशोर नवल कहते हैं, "इस युग की आलोचना में हम एक ओर स्वच्छंदतावाद का आग्रह देखते हैं और दूसरी ओर साहित्य के सामन्ती मूलों का तिरस्कार। इस युग की आलोचना की अन्यतम विशेषता यह है कि यह इस युग के रचनात्मक साहित्य के अंतर्विरोध से मुक्त है।"[6]

भारतेन्दु का हिंदी आलोचना के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान है। उनका कृतित्व ऐसे काल में रहा जहाँ आलोचना को लेकर नए प्रयोगों की शुरुआत नहीं हुई थी लेकिन भारतेन्दु ही सर्वप्रथम ऐसे आलोचक थे, जिन्होंने भारतीय और पाश्चात्य आलोचना के सिद्धांतों का गहन अध्ययन कर नवीन सिद्धांतों का निर्माण कर हिंदी आलोचना साहित्य को एक नया मोड़ दिया। भारतेन्दु युग अन्य आलोचकों में दूसरे प्रमुख आलोचक चौधरी पण्डित बद्रीनारायण उपाध्याय 'प्रेमघन' हैं। प्रेमघनजी की कृतियों में भारतेन्दु युगीन समस्त प्रवृत्तियों का विवेचित रूप दृष्टिगत होता है। साथ ही वे आधुनिक आलोचना का सूत्रपात करने वालों में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। द्विवेदी युगीन आलोचना जिन प्रवृत्तियों से पल्लवित होती दिखाई देती है उन सभी तत्वों का समावेश इनकी आलोचना में मिलता है। प्रेमघन जी ने भाषा का स्वरूप, नाटक तथा आलोचना संबन्धित चर्चाएँ की। चौधरी पण्डित बद्रीनारायण उपाध्याय 'प्रेमघन' की परंपरा को आगे सुचारु रूप से बढ़ाने का श्रेय आचार्य शुक्ल को जाता है या यों कहें कि वे आचार्य शुक्ल के निर्माता रहे। बाल्यकाल में उन्होंने ही शुक्लजी को साहित्य, संस्कार व प्रकृति के प्रति प्रेमदृष्टि प्रदान की।

भारतेन्दु युग के तीसरे सशक्त और विद्वत्त आलोचक पण्डित बालकृष्ण भट्ट माने जाते हैं। 'हिंदी प्रदीप' का संचालन कर उन्होंने अपने विचारों को बड़ी दृढ़ता और निर्भीकता के साथ आलोचना के माध्यम से अभिव्यक्त किया। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार, "समय के प्रतिकूल पुराने बद्धमूल विचारों को उखाड़ने और परिस्थिति के अनुकूल नए विचारों को जमाने में उनकी लेखनी सदा तत्पर रहती थी।"[7] हिंदी प्रदीप पुराने अंकों में आज भी उनके अनेक व्याख्यात्मक निबंध संग्रहित है जो निस्संकोच आधुनिक आलोचना के मूल उत्स कहे जा सकते हैं। उन्होंने भाषा, व्याकरण आदि विषयों पर भी अपनी लेखनी चलायी। उनकी समालोचनाओं में मौलिकता के दर्शन होते हैं। उनमें नवीन विषय सुझाने की अद्‌भुत क्षमता थी।

भारतेन्दु युग के चतुर्थ आलोचक पण्डित गंगाप्रसाद अग्निहोत्री है। उनके समय में आलोचना का स्वरूप कुछ डांवा-डोल था। आलोचना दल-बदली के मार्ग का अनुसरण कर रही थी। आलोचकों में सत्यपथ की अपेक्षा राग-द्वेष की भावना प्रबल बन रही थी। कुछ आलोचनाएँ तो केवल पाठकों के मनो-विनोद हेतु ही प्रकाशित की जाती थी। अत: आलोचना की दृष्टि से इस युग को संकुचित विचारों से आक्रान्त युग भी कहा जा सकता है। उदार दृष्टिकोण की प्रवृत्ति इस युग में न के बराबर थी बल्कि अन्य प्रवृत्तियों को भी आलोचना द्वारा दबाया जा रहा था। अत: अग्निहोत्री जी ने आलोचना संबंधी कुछ नियमों तथा आलोचक के लिए आवश्यक गुणों का निर्देश किया। वे हिंदी पत्रिकाओं द्वारा खेद व्यक्त करते रहें। उनकी दृष्टि से पत्रिकाओं में समालोचना का वह सौष्ठवपूर्ण रूप प्राप्त नहीं होता जो पाश्चात्य भाषा की पत्रिकाओं में दृष्टिगत होता है। आलोचना के सबंध में उनके विचार मौलिक एवं उदार थे।

भारतेन्दु युग के आलोचको में बाबू बालमुकुंद गुप्त अलग स्थान रखते हैं। उनका कार्य भारतेन्दु युग और द्विवेदी-युग की आलोचना को विकसित करने का रहा है। वे 'भारत मित्र' के प्रमुख संपादक थे। 'भारत मित्र' के अधिकतर लेखों के अध्ययन से ज्ञात

होता है कि उनकी आलोचना में व्यंग्यात्मक प्रवृत्ति की अधिकता थी। उनकी शैली चुटीली एवं चुलबुली थी। उनकी आलोचना के विषय समसामयिक ही रहे। भारत राष्ट्र, राजभाषा, लिपि-निर्धारण जैसे समकालीन विषयों को उन्होंने अपनी लेखनी का विषय बनाया। अन्य लेखकों की भाँति गुप्तजी ने बुक-रिव्यू की प्रणाली अपनाई किन्तु उनकी सभी पुस्तक समीक्षाएँ केवल नाम मात्र की रही। इससे आलोचना क्षेत्र में कोई विशेष प्रगति नहीं हुई। अत: विशुद्ध समीक्षा की दृष्टि से उनका स्थान महत्वपूर्ण नहीं माना जा सकता। भारतेन्दु और द्विवेदी युग के संधिकाल में होने के कारण तथा किसी भी प्रकार के विचारों का प्राधान्य न होने के कारण उनकी आलोचना सशक्त न हो सकी। अत: वे आलोचना जगत को कोई महत्वपूर्ण देन न दे सके। सब मिलाकर कहा जा सकता है कि भारतेन्दु-युग में आधुनिक हिंदी-आलोचना का सूत्रपात तो हो गया था, किन्तु तत्कालीन समीक्षकों में न तो सूक्ष्म काव्य सौन्दर्य-विधायक तत्वों को पहचानने की क्षमता थी और न रचना में निहित जीवन-मूल्यों को सौन्दर्य तत्व से जोड़कर व्याख्यायित करने की शाक्ति। इन में वैज्ञानिक विश्लेषण का अभाव रहा।

हिंदी आलोचना का संवर्धन सर्वरूप से अगर किसी युग में हुआ है तो वह द्विवेदी युग में। इसी कारण द्विवेदी युग को संवर्धन-काल के रूप में माना जाता है। इस युग में पुस्तकालोचना (बुक-रिव्यू) के साथ-साथ सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक आलोचना का भी विकास हुआ। इस युग में की गई समालोचना यद्यपि भारतीय काव्यशास्त्र पद्धति को अधिक महत्व देने में रहीं, तथापि युग के साथ चलने वाली पाश्चात्य समीक्षा-पद्धति को भी इस युग में अपनाया गया। आधुनिक युग में आलोचना की जितनी प्रणालियाँ प्राचलित हैं, उन सबका उद्भव द्विवेदी युग में हुआ और उन सब प्रणालियों का विकास आधुनिक युग में हो रहा है। इस काल के दूरद्रष्टा और महारथी आलोचकों में महावीर प्रसाद द्विवेदी का स्थान सर्वोपरि है। रामविलास शर्मा के अनुसार, “द्विवेदी जी का

गद्य-साहित्य आधुनिक हिंदी साहित्य का ज्ञान-काण्ड है। जो साहित्यकार स्वतः स्फूर्त भावोद्गारों से संतुष्ट नहीं हो जाते, उनके लिए यह ज्ञान-काण्ड सदा महत्वपूर्ण रहेगा।"[8] द्विवेदीजी ने 'विक्रमांकदेवचरित चर्चा', 'नैषधचरित चर्चा' एवं 'कालिदास की निरंकुशता' जैसे निबंधों को लिखकर समीक्षा का सूत्रपात किया। द्विवेदीजी की आलोचनाएँ प्राय: निर्णयात्मक होती थी। अत: कुछ विदवान् इस काल को 'निर्णयात्मक समीक्षा काल' कहना उचित समझते हैं। इस काल के सीमा निर्धारण को लेकर भी कुछ विद्वानों में आपसी मतभेद हैं। कुछ विद्वान इस काल की सीमा सन् 1901 से 1920 तक मानते हैं, किन्तु आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के अनुसार इस युग का विस्तार सन् 1901 से 1930 तक हैं। इस युग में द्विवेदीजी के साहित्य के विशिष्ट आदर्शों का सृजन कर जिन साहित्यकारों ने साहित्य का निर्माण किया वे आज उच्चकोटि के साहित्यकारों में गिने जाते हैं।

द्विवेदी युग में हिंदी आलोचना का गम्भीर एवं तात्विक रूप तो नहीं निखरा, किन्तु उनकी कई महत्वपुर्ण पद्धतियाँ अवश्य विकसित हुई। सामान्यत: इस युग में हिंदी आलोचना के पाँच रूप लक्षित किये जा सकते हैं, शास्त्रीय आलोचना अर्थात् लक्षण ग्रन्थों की परम्परा में कव्यांग विवेचन, तुलनात्मक मूल्यांकन एवं निर्णय, अन्वेषण एवं अनुसंधानपरक आलोचना, परिचयात्मक आलोचना तथा व्याख्यात्मक आलोचना। संस्कृत आचार्यों की पद्धति पर लक्षण ग्रंथ प्रस्तुत करने की परम्परा रीतिकाल की एक प्रमुख प्रवृत्ति थी। आलोच्य युग में भी इस परम्परा में जगन्नाथ प्रसाद 'भानु' ने 'काव्य प्रभाकर' (1910) तथा 'छन्द सारावली' (1917) और लाला भगवानदीन ने 'अलंकार मंजूषा' (1916) की रचना की। 'भानु' जी ने अपने ग्रंथ की

भूमिका अंग्रेजी में लिखी हैं और हिंदी के अनेक पारिभाषिक शब्दों के अंग्रेजी पर्याय भी दिये हैं।

द्विवेदी युग के एक सशक्त आलोचक डॉ. श्यामसुंदर दास हैं। उनका 'साहित्यालोचन' पाश्चत्य एवं भारतीय काव्यशास्त्रपरक ग्रन्थों का निचोड़ है। इस ग्रंथ में समालोचना के प्रमुख तत्वों का ज्ञान है। हिंदी आलोचना के कौशल्य काल में इस ग्रंथ ने महत्वपुर्ण भूमिका निभायी तथा आधारभूत सामाग्री प्रस्तुत कर आगे का मार्ग प्रशस्त किया। 'साहित्यालोचन' में साहित्य संबंधी कुछ सैद्धांतिक व्याख्याएँ, मनोवैज्ञानिक निरूपण और व्यावहारिक (साहित्य-तन्त्र-विषयक) निर्देश किये गये थें। इस ग्रंथ का बड़ा ही मार्मिक प्रभाव हिंदी के आलोचना क्षेत्र पर रहा। 'साहित्यालोचन' में कला, साहित्य, दृश्यकाव्य, श्रव्यकाव्य, रस, शैली के साथ सौंदर्य एवं आलोचना के संबंध में विवेचन किया है। श्यामसुंदर दास के संदर्भ में डॉ. पशुपतिनाथ उपाध्याय कहते हैं, "शुक्लपूर्व आलोचना में सौंदर्यवादी प्रवृत्ति के प्रमुख आलोचक डॉ. श्यामसुंदर दास है। उनके अनुसार सौंदर्य भावना सभ्य मानव समाज में सर्वत्र पाई जाती है तथा साहित्यकार की सौंदर्यप्रियता के कारण ही सरसता, अलौकिकता तथा आनंदप्रद अनिर्वचनीयता सन्निविष्ठ हो जाती है। सौंदर्य भावना के कारण ही विशुद्ध साहित्य दार्शनिक जटिलताओं से मुक्त होकर सभी सहृदयजनों के लिए आकर्षक, रमानीय और सविद्य बनाता है। सौंदर्यज्ञान की सहायता से ही साहित्यकार अपने भावों, विचारों, आकांक्षाओं और कल्पनाओं को सुंदरतम रूप में अभिव्यक्त करता है। इस प्रकार साहित्य सौंदर्य की ही अभिव्यक्ति है।"[९]

श्यामसुंदर दास ने आलोचना का उद्देश, आलोचक के गुण तथा आलोचना करते समय किन नियमों का ध्यान रखना चाहिए इत्यादि विषयों का विवेचन

‘साहित्यालोचन’ में किया है। उन्होंने आधुनिक आलोचना की सैद्धांतिक, व्याख्यात्मक, निर्णयात्मक तथा आत्मप्रधान प्रणालियों के अन्तर्गत कौन से विषय आने चाहिए तथा उनका क्षेत्र कितना व्यापक होना चाहिए इत्यादि पर अपने विचार व्यक्त किये हैं तथा आलोचक को यह निर्देश दिया है कि उसे आलोचना करते समय विश्व-रूचि तथा मानवदर्शन को अवश्य ध्यान में रखना चाहिए। ‘साहित्यालोचन’ सैद्धांतिक समीक्षा के क्षेत्र में महान उदाहरण है। इस ग्रंथ ने हिंदी समीक्षा में फैले अज्ञानता को दूर करने में सहयोग प्रदान किया।

द्विवेदी युग में हिंदी आलोचना का विकास और उत्कर्ष व्यापक एवं प्रभूत रूप में हुआ। इस युग की सबसे बड़ी उपलब्धि संस्कृत समीक्षा सिद्धान्तों का पुनराख्यान करके तथा पाश्चात्य समीक्षा सिद्धांतों को भारतीय संस्कारों के अनुकूल ढालकर, दोनों के समन्वित आधार पर हिंदी के लिए उचित शास्त्रीय समीक्षा सिद्धांतों का निर्माण माना जा सकता है। साथ ही इन सिद्धांतों का उचित उपयोग करते हुए व्यावहारिक समीक्षा की व्याख्यात्मक पद्धति के विकास को इस युग की दूसरी महती उपलब्धि मान सकते हैं। इनके अतिरिक्त इस युग की एक बहुत बड़ी उपलब्धि है, कृतियों के मूल्यांकन में सामाजिक मूल्यों को महत्व देने की परम्परा का विकास। यह परम्परा भारतेन्दु युग में प्रारम्भ हुई थी। इस युग में उसे और महत्व दिया गया। यह महत्व आलोचना के क्षेत्र में द्विवेदी युग की प्रगतिशील चेतना की सक्रियता का द्योतक है। यह स्पष्ट है कि द्विवेदी जी नायिकाभेद और रीतिवाद के प्रखर विरोधी थे। वे अपने युग के साहित्य को नवजागरण की वैज्ञानिक जीवन-दृष्टि के अनुकूल प्राणवान बनाना चाहते थे।

अध्यापकीय आलोचना की शुरुआत भी द्विवेदी युग की ही देन है। विश्वविद्यालयों में कई शिक्षक, अध्यापक अध्यापन के लिए आलोचनात्मक पुस्तकों की कमी को पूरा करने के लिए आलोचना के क्षेत्र में अग्रसर हुए। आज तक जितने भी उच्चकोटि के आलोचक हुए हैं जैसे - आचार्य रामचंद्र शुक्ल, श्याम सुन्दरदास, आचार्य

हजारी प्रसाद द्विवेदी, डॉ. रामविलास शर्मा, विश्वनाथ त्रिपाठी, नामवर सिंह, मैनेजर पांडे, गोपाल राय आदि अपने जीवन काल में अध्यापक भी रह चुके हैं। इन सभी में एक बात आम है कि इनका अध्यापकीय कर्म ही इन्हें एक प्रतिष्ठित आलोचक के रूप में पहचान दिला सका है।

इन अध्यापकों में बाबू श्याम सुन्दरदास और आचार्य रामचंद्र शुक्ल का स्थान सर्व प्रथम हैं। श्याम सुन्दरदास ने एम. ए. के पाठ्यक्रम के लिए 'साहित्यालोचन', 'रूपक रहस्य' और 'भाषा रहस्य' नामक आलोचनात्मक ग्रंथ लिखे। हिंदी आलोचना को आधुनिक और गंभीर साहित्यांग के रूप में विकसित करने का प्रयास करने वाला 'साहित्यालोचन' संभवत: प्रथम ग्रंथ है। श्याम सुन्दरदास शोधपरक आलोचना का भी विशिष्ट उदहारण रहे हैं। इसी श्रेणी में गोपाल राय का नाम भी महत्वपूर्ण समझ सकते हैं, क्योंकि उन्होंने हिंदी साहित्य को कुछ ऐसी आलोच्य कृतियां प्रदान की हैं जिसके तोड़ की रचनाएँ अभी तक कोई आलोचक नहीं दे पाया। गोपाल राय जिन्होंने हिंदी कथा साहित्य को एक अलग ही नजरिए से देखा और उसकी व्याख्या भी औरों से भिन्न तथा अलग तरह से की। गोपाल राय ने अपने शोधपरक आलोचना से ही अपनी पहचान बनाई है। इस प्रकार हिंदी आलोचना के विकास क्रम को आगे ले जाने में अध्यापकीय आलोचना का अधिक योगदान रहा है।

भारतेन्दु युग के लेखकों ने जिस आलोचना का बीज बोया और महावीर प्रसाद द्विवेदी ने विकास स्वरूप जिसे अंकुरित किया, उसकी चरम परिणति एक विशाल वृक्ष के रूप में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी की आलोचना में हुई। रामचंद्र शुक्ल की आलोचना पद्धति अन्य आचार्यों के स्थूल प्रयोजनों से भिन्न भूमिका पर प्रतिष्ठित है। इनकी आलोचना सम्पूर्ण व्यक्त जगत के लोकसंग्रह से सम्बध्द है। इसीलिए संस्कृत आचार्यों के काव्यशास्त्र की शब्दावली को ग्रहण करते हुए उन्होंने काव्यशास्त्र की जो

व्याख्या की वह नवीन मौलिक उद्भावनाओं, गहन व्याख्या, युगानुरूप व्यावहारिक और मनोवैज्ञानिक बन गई हैं।

शुक्लजी ने कविता को अपेक्षाकृत बृहतर व उदात्त भूमि पर प्रतिष्ठित किया। दूसरी ओर व्यावहारिक समीक्षा की दृष्टि से उनकी कुछ कृतियाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। तुलसीदास, सूरदास, जायसी आदि ग्रन्थों की समीक्षाएँ एवं भूमिकाएँ व्यावहारिक समीक्षा की दृष्टि से हिंदी समीक्षा साहित्य में अपना स्थान बना चुकी है तथा भावी आलोचकों के लिए वे प्रेरणा की स्रोत बनीं है।

शुक्लजी ने अपने अधिकतर साहित्य-सिद्धान्त भारत के प्राचीन महाकवियों के आदर्श पर निर्मित किये हैं। वाल्मीकि, कालिदास, भवभूति और तुलसीदास आदि वह महानुभूति हैं जिनके विचारों को वे पुनः-पुनः अपने साहित्य में स्थान देते हैं। वाल्मीकि, कालिदास एवं भवभूति को वे काव्य में प्रकृति-चित्रण का दर्श मानते हैं।

आचार्य शुक्ल की समीक्षा पद्धति में पाश्चात्य वैज्ञानिकता अर्थात् काव्य के विश्लेषण, प्रयोजन, व्याख्या, स्पष्टता, गंभीरता आदि दिखाई पड़ते हैं। "शुक्लजी के भाव और मनोविकार संबंधी विवेचन से यह स्पष्ट है कि वे हर विषय का अध्ययन-विश्लेषण समाजिकता के संदर्भ में करते थे। लोकमंगल की अवधारणा से संगति बैठकर मानव-मन की अंतवृत्तियों का जो विवेचन शुक्लजी ने किया है, उससे उनके चिंतन में व्याप्त एक अंतसंगति का स्पष्ट बोध होता है। उनका करूणा और प्रेम का विवेचन इसका प्रमाण है।"[10]

'हिंदी साहित्य का इतिहास' भी व्यावहारिक ओलोचना के नमूनों से भरा पड़ा है। प्रत्येक रचना की आलोचना के वे दो आधार मानते हैं भावपक्ष और कलापक्ष। आचार्य शुक्ल संस्कृत जीवन से असंपृक्त व्यक्ति हैं जिसकारण कलावाद पर उन्होंने

भरपूर आक्रमण किये। समय-समय पर यूरोप से उठने वाली साहित्यिक तथा कलात्मक व्यर्थ गंध के प्रति उनकी रूचि कभी नहीं रही। शुक्लजी का सम्पूर्ण चिंतन उनकी प्रौढ़ता, अध्ययन, सूक्ष्म विश्लेषण-विवेचन तथा मनन का ही परिणाम है। शुक्लजी ने जो भी सोचा, वह गहन और वर्षों के अध्ययन-मनन के बाद सिद्धान्त रूप में स्थापित किया। "शुक्लजी के आलोचक व्यक्तित्व की एक बहुत बड़ी विशेषता उनकी व्यपाक और सजग दृष्टि थी। अपने समय के हर साहित्यिक विवाद की तरफ उन्होंने ध्यान ही नहीं दिया उस पर राय भी दी।"[11] इसलिए कहना न होगा कि बिना किसी टकराहट के शुक्लजी की साहित्य समीक्षा से बचना मुश्किल है।

शुक्लजी का दृष्टिकोण शुरुआती समय से ही नीतिवादी रहा इसी नीतिवादी दृष्टि से कृष्ण के बजाय राम उनके आदर्श थे। इसी का प्रभाव उसकी साहित्य समीक्षा पर भी रहा। शायद यही बात रही कि उन्होंने सूर से अधिक तुलसी को महत्व दिया। गीति काव्य की अपेक्षा उन्होंने प्रबंध काव्य को श्रेष्ठ कहा। उन्होंने साहित्य के सभी अंगों का सैद्धान्तिक विवेचन कर सम्पूर्ण साहित्य शास्त्र का निर्माण किया। जिसके आधार पर उन्होंने तुलसी की सर्वथा मौलिक ढंग से व्याख्या की। सूर और जायसी का विस्तृत अध्ययन को उन्होंने 'हिंदी साहित्य का इतिहास' में वैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत किया।

आचार्य शुक्ल के समकालीन आलोचकों में बाबू श्यामसुंदर दास, बाबू गुलाब राय, पदुमलाल पुन्नालाल बक्शी आदि का नाम लिया जा सकता है। बाबू श्यामसुंदर दास ने 'साहित्यालोचन', 'भाषा विज्ञान' आदि पुस्तकों का निर्माण किया। उन्होंने साहित्यालोचन में 'साहित्य सिद्धान्त' का तथा बख्शीजी ने 'विश्व साहित्य' में विश्व के साहित्य का मुख्यत: अंग्रेजी साहित्य का गम्भीर विवेचन किया। यह पुस्तकें वैज्ञानिक ढंग तथा साहित्य और कला की प्रकृति समझने में उपादेय हैं।

शुक्लजी की समीक्षा पद्धति ने अनेक आलोचकों को प्रभावित किया, किन्तु उनमें से अधिकांश आलोचकों ने उनके द्वारा स्थापित नीतिवादी और व्यावहारिक पक्ष को नाम मात्रा के लिए आलोचनाओं में रखा तथा कुछ आलोचकों ने त्याग ही दिया। परवर्ती आलोचक इसके स्थान पर किसी वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण का सम्यक विकास न कर पाये और आलोचना दृष्टि केवल साहित्य के भाव पक्ष तक ही सीमित होकर रसवादी या शुद्ध शास्त्रीय हो गयी। इस प्रवृत्ति के आलोचकों में विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, कृष्णशंकर शुक्ल, रामकृष्ण शुक्ल, चन्द्रबली पांडेय और रमाशंकर शुक्ल रसाल आदि हैं। पं. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने 'अजातशत्रु', 'दीपिका' से लेकर बिहारी की 'वाग्विभूति', 'घनानन्द और आनंदघन', 'पद्माकर पंचामृत', 'वाङ्मय विमर्श' आदि अनेक ग्रन्थों का सृजन सम्पादन किया है। इन्होंने मुख्यत: रीतिकाल को अपनी आलोचना का केंद्र बनाया। कृष्णशंकर शुक्ल ने 'केशव की काव्य कला', 'कविवर रत्नाकर' तथा रामकृष्ण शुक्ल ने प्रसादजी की नाट्य कला में अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन किया है। रसालजी ने 'उध्दव शतक' की आलोचना लिखी। बाबू गुलाबराय भी शुक्लजी के अनुयायियों में परिगणित किए जाते हैं, किन्तु उनके दृष्टिकोण में अपेक्षाकृत सामाजिक तत्व भी मिलते हैं।

शुक्लजी के दृष्टिकोण के कारण जिन आदर्शों की सृष्टि हुई थी उनसे निर्गुण पंथ के संतों तथा साहित्य की नई प्रवृत्तियों के प्रति न्याय नहीं हो पाया था। इस अभाव को दूर करने हेतु साहित्यशास्त्र को पूर्णत्व देने के उद्देश्य से कई समालोचक आगे आए। इनमें हज़ारीप्रसाद द्विवेदी, पं. नन्ददुलारे वाजपेयी, लक्ष्मीनारायण सुधांशु, डॉ. नगेन्द्र, डॉ. सत्येन्द्र, शांतिप्रिय द्विवेदी और जानकीवल्लभ शास्त्री आदि प्रमुख हैं। इन विद्वान आलोचकों में साहित्यालोचन की एक भी प्रवृति नहीं मिलती। सभी ने शुक्लजी द्वारा

निर्देशित अथवा उपेक्षित विषय को लेकर हिंदी साहित्यलोचना को आगे बढ़ाया। 'हिंदी साहित्य : बीसवीं शताब्दी', जयशंकर प्रसाद', 'सूर संदर्भ की भूमिका', 'प्रभृति' आदि नंददुलारे वाजपेयी जी की आलोचना पद्धति की प्रतिनिधि रचनाएँ हैं। कलाकार की अंत:प्रेरणा और चिन्तन धारा का अनुसंधान एवं विश्लेषण उनकी समीक्षा के मूल तत्व हैं। कलाकार के व्यक्तित्व का निर्माण करने वाली सामाजिक परिस्थितियों तथा दार्शनिक विचारधाराओं का भी वे निरूपण करते हैं।

आचार्य हज़ारीप्रसाद द्विवेदी ने 'सूर साहित्य', 'हिंदी साहित्य की भूमिका' और 'कबीर' आदि अनेक ग्रंथ हिंदी समीक्षा क्षेत्र में प्रस्तुत किए हैं, जिनमें उनकी तत्वान्वेषनी प्रज्ञा सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है, साथ ही उनका मानववादी स्वभाव भी रचनाओं में दिखाई देता है। वे साहित्य को सांस्कृतिक भूमिका में रखकर देखते हैं। नये समीक्षकों में डॉ. नगेन्द्र ने आधुनिक काव्य की अधिक स्पष्ट समीक्षा की हैं। डॉ. नगेन्द्र पर भारतीय समीक्षा के साथ फ्रायड के मनोविश्लेषणशास्त्र का भी प्रभाव है। 'सुमित्रानंदन पंत', 'साकेत : एक अध्ययन', 'आधुनिक हिंदी नाटक' तथा 'देव की कला' आदि डॉ. नगेन्द्र के समीक्षा ग्रंथ हैं। डॉ. सत्येन्द्र अपने उदार सामाजिक दृष्टिकोण के कारण अनेक प्रगतिवादी मान्यताओं को भी अपनाते हैं। शांतिप्रिय द्विवेदी छायावाद के भाव-सौन्दर्य के स्वतंत्र व्याख्याता है। इसी परम्परा में डॉ. पीताम्बर दत्त बड्थ्वाल, डॉ. दीनदयाल गुप्त, डॉ. भगीरथ मिश्र, डॉ. रामकुमार वर्मा, डॉ. केसरी नारायण शुक्ल, डॉ. माता प्रसाद गुप्त आदि ने आलोचना क्षेत्र में सुंदर रचनाएँ प्रस्तुत की हैं। उन्होंने सौष्ठवादी, मनोविश्लेषणात्मक एवं ऐतिहासिक समीक्षा पद्धतियों का आश्रय लेकर काव्य धाराओं एवं कवियों का सर्वांगीण अध्ययन प्रस्तुत किया है।

आचार्य शुक्ल के नेतृत्त्व में हिंदी आलोचना की यह शास्त्रीय धारा प्राचीन एवं आधुनिक सभी अंगों को परखती और उनके बाद छोटी-बड़ी धाराओं में बटकर आगे बढ़ती रही। एक ओर हिंदी समालोचना में ये परम्पराएँ विकास पा रही थी, दूसरी ओर देश की राजनैतिक, सामाजिक स्थिति तेजी से बदलने के कारण जनवादी प्रगतिवाद अपना प्रवेश हिंदी साहित्य में भी पाता जा रहा था। अस्तु कुछ साहित्यिकों का ध्यान समालोचना के प्रगतिवादी मापदण्डों की ओर आकर्षित हुआ। श्री शिवदास सिंह चौहान ने अपने आलोचनात्मक निबंधों में प्रगतिवाद की व्याख्या की है। फिर प्रकाशचन्द्र गुप्त, रामविलास शर्मा, नरेन्द्र शर्मा, नेमिचन्द्र जैन, अमृतराय, शमशेर बहादुर सिंह, दिनकर तथा भगवतीशरण उपाध्याय आदि अनेक प्रगतिवादी आलोचक सामने आये। प्रगतिवाद ने आलोचना की शास्त्रीय पद्धति न अपना कर हिंदी आलोचना के सम्मुख साहित्य और समाज के संबंध का प्रश्न उठाकर साहित्यकार के सामाजिक दायित्व का प्रश्न उठाया। छायावाद की नई दृष्टि से व्याख्या करके सामाजिक जीवन से साहित्य और साहित्यकार के विलगाव का कारण स्पष्ट करके प्रगतिशील आंदोलन द्वारा साहित्य को जनजीवन के निकट आने की प्रेरणा दी। प्रगतिवाद की विचारधारा का हिंदी आलोचना पर व्यापक प्रभाव पड़ा है। सामान्यत: यह माना जाने लगा कि रसानुभूति कराने के साथ साहित्य का व्यापक सामाजिक प्रयोजन भी होता है। साहित्य का कार्य जीवन के वस्तु-सत्य को कलात्मक अभिव्यक्ति देना है। आधुनिक हिंदी आलोचना के इतिहास पर दृष्टिपात करने से ऐसा प्रतीत होता है मानो इसका विकास भी आदर्शवाद से यथार्थवाद तथा यथार्थवाद से रोमांसवाद की ओर उन्मुख रहा है इसकी प्रगति में शास्त्रीय पद्धति के साथ सामयिक नयी विचारधारों ने भी काफी प्रभाव डाला है। यही प्रगतिशीलता जीवित साहित्य का लक्षण है। हिंदी समालोचना अपने गुरूरत कर्तव्यों की ओर सतत् जागरूक रही है।

आचार्य शुक्ल को हिंदी आलोचना के शिखर पुरुष के रूप में माना जाता है। उन्होंने आलोचना के क्षेत्र में जो सिद्धांत स्थापित किए वह परवर्ती आलोचकों के लिए मील के पत्थर सिद्ध हुए हैं। लेकिन शुक्लोतर हिंदी आलोचना का विकास शुक्लजी की मान्यताओं के टकराहट के साथ शुरू हुआ। इस टकराहट का प्रमुख कारण छायावाद के प्रति सहानुभूति पूर्ण रुख रखने वाले रचनाकार और समीक्षक। शुक्लजी के समकालीन प्रसाद, पन्त और निराला प्रमुख थे। जिन्होंने छायावादी काव्यरचना के साथ छायावाद के सन्दर्भ में शुक्लजी की मान्यताओं और प्राचीन शास्त्रवादी साहित्य मूल्यों का प्रतिवाद करते हुए छायावादी काव्यरचना को समझने के लिए एक नई दृष्टि प्रदान की। पन्त के 'पल्लव' को छायावादी आलोचना के नए प्रतिमानों का पहला घोषणापत्र कहा जाता है। इन कवि आलोचकों ने छायावादी साहित्य की काव्यभाषा, यथार्थ निरूपण, अर्थ मीमांसा, छंद मुक्ति, शिल्प-बोध आदि के एक नए साहित्यशास्त्र द्वारा काव्य बोध कराने का मार्ग प्रशस्त किया। पन्त का काव्यभाषा विश्लेषण, निराला का छंद संबंधी विचार और महादेवी के गीत-विधा विवेचन का हिंदी आलोचना में महत्वपूर्ण स्थान है। यही नहीं, निराला ने हिंदी आलोचना में पहली बार कविता के आवयविक सिद्धांत की व्याख्या की और प्रसाद ने हिंदी आलोचना को दार्शनिक धरातल प्रदान किया।

हिंदी अलोचना को जो प्रौढ़ता और सुव्यवस्था आचार्य शुक्ल ने प्रदान की थी, उसे आगे ले जाने का चुनौतीपूर्ण कार्यनन्द दुलारे वाजपेयी, हजारीप्रसाद द्विवेदी और डॉ. नगेन्द्र की महान त्रयी ने किया। ये तीनों अलग-अलग विषयों पर शुक्ल जी से टकराये। जिसके संदर्भ में निर्मला जैन कहती हैं, "शुक्ल जी से पहले हिंदी आलोचना की परंपरा समृद्ध न थी। किन्तु आचार्य शुक्ल ने हिंदी आलोचना को जो प्रौढ़ता प्रदान की थी उससे उसे आगे ले जाना था उसका दिशा परिवर्तन करना बहुत ही बड़ी बात थी।

आचार्य शुक्ल का विशाल व्यक्तित्व एक चुनौती की तरह परवर्ती आलोचकों के सामने खड़ा था। किन्तु अपने पूर्ववर्ती आलोचना साहित्य की तुलना में शुक्ल जी का आलोचना व्यक्तित्व जीतना विराट लगता है उतना परवर्ती आलोचकों के सामने नहीं।"[12]

नन्ददुलारे वाजपेयी का शुक्ल जी से मतभेद केवल छायावादी काव्य को लेकर था और उनका हिंदी आलोचना में सबसे महान योगदान छायावाद को राष्ट्रीय स्वतंत्रता आन्दोलन और सांस्कृतिक पुनर्जागरण की साहित्यिक अभिव्यक्ति के रूप में प्रतिष्ठित करना है और उन्होंने सिद्ध किया कि छायावाद की मूल प्रेरणा धार्मिक न होकर मानवीय और सांस्कृतिक है। वाजपेयी जी ने काव्य-सौष्ठव को सर्वोपरि महत्त्व दिया।

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का शुक्ल जी से मतभेद इतिहास-बोध को लेकर था। उन्होंने 'हिंदी साहित्य की भूमिका' में हिंदी साहित्य को एक समवेत, भारतीय चिंता के स्वाभाविक विकास के रूप में समझने का प्रयास और प्रस्ताव किया। काव्य-रूढियों और कवि-प्रसिद्धियों के माध्यम से काव्य के अध्ययन का प्रस्ताव भी हिंदी आलोचना को एक महत्वपूर्ण देन है। इस आधार पर ही द्विवेदी जी ने पृथ्वीराज रासो की प्रामाणिकता पर विचार किया। साहित्य और जनजीवन के प्रति उनका दृष्टिकोण पूरीतरह से मानवतावादी था जो शुक्ल जी के लोकमंगलवाद से काफी दूर तक मेल खाता है।

डॉ. नगेन्द्र ने फ्रायडीय प्रभाव के तहत मनोविश्लेषणात्मक व्याख्याएँ की और शास्त्र विवेचन करते हुए भारतीय और पाश्चात्य काव्यशास्त्र के सामानांतर सिद्धांतों की तुलना कर दोनों के बीच समान तत्वों की खोज की।

शुक्लोतर आलोचकों में डॉ. देवराज का स्वर कुछ अलग था। उन्होंने शुक्ल जी के सूत्रों और कुछ नयी प्रवृतियों के आधार पर छायावाद की दुर्बलताओं की सोदाहरण व्याख्या करते हुए छायावाद के पतन की घोषणा कर दी और सांस्कृतिक-बोध को साहित्य के प्रतिमान के रूप में स्थापित किया।

शुक्लोतर आलोचना में अज्ञेय का भी अहम् योगदान है। उनकी भूमिकाओं (कवि-दृष्टि), निबंध (त्रिशंकु, आत्मनेपद, अद्यतन) और समग्र विवेचन (संवत्सर) में साहित्य ही नहीं, रचनात्मकता और सम्प्रेषण मात्र की विविध समस्याओं का गहरा और सुलझा हुआ विश्लेषण हुआ है।

दर्शन, समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र और राजनीति के क्षेत्र में जो कुछ मार्क्सवाद है, वही साहित्य के क्षेत्र में 'प्रगतिवाद' के नाम से अभिहित है। साम्प्रदायिक और संकुचित अर्थ में मार्क्सवादी सिद्धांतों की कलात्मक अभिव्यक्ति को 'प्रगतिवाद' कहना कुछ लोगों को अभिप्रेत है। इसी संकुचित और साम्प्रदायिक अर्थ में मार्क्सवाद जीवन-दर्शन के आधार पर साहित्य की श्रेष्ठता, उपादेयता और स्थायित्व का मूल्यांकन करना प्रगतिवादी समीक्षा हैं। प्रगतिवादी समीक्षक समाज-सापेक्ष होता है। वह सत्य और सर्वहारा वर्ग (Havenots) का पक्षधर होता है।

साहित्य में शास्त्र-सत्य जैसी कोई चीज नहीं होती। साहित्य सत्य की ऐतिहासिक सामाजिक परिस्थितियों का सापेक्ष्य होता है। नैतिक मूल्य और मान्यताएँ भी विकासमान समाज के साथ बदलती रहती है। कोई भी साहित्यकार अपने युग की सीमाओं का अतिक्रमण कर सार्थक नहीं होता। साहित्य का शिल्प भी उसके विभिन्न रूप और सामाजिक विकास के अनुरूप विकसित होता है। किन्तु साहित्य की रचना-प्रक्रिया में निर्णयक भूमिका विषय वस्तु की होती है। भाषा विचार शून्य नहीं हो सकता। भाषा का विश्लेषण विचारों के विश्लेषण के अभाव में अधूरा माना जाएगा। वह साहित्य-समीक्षा महत्वपूर्ण होती है जो वस्तुवादी चिन्तन पर आधारित हो, जिनमें द्वन्दात्मक पद्धति का सहारा लेकर विषयवस्तु का विश्लेषण किया गया हो, जिनमें साहित्यकार की सीमाओं का ध्यान रखते हुए उसकी रचना में निहित प्रगतिशील एवं

प्रतिक्रियावादी तत्वों की पहचान की गई हो और जिसमें साहित्यकार की भाव सम्पदा एवं विचार-वैभव की अपेक्षा में उसकी कला और भाषा संरचना का विवेचन उपलब्ध हो। विरोधी लागने वाली वस्तुओं में सामंजस्य देखना, उन्हें गतिशील और विकासमान के रूप में देखना, संसार के विभिन्न भौतिक-मानसिक व्यापारों का परस्पर संबंध स्थापित करना ही प्रगतिवादी दृष्टि है।

मार्क्सवादी समीक्षा-पद्धतिका प्रादुर्भाव वस्तुत: रूप-पक्ष पर विशेष रूप से अवलम्बित स्वच्छन्दतावादी समीक्षा पद्धति के विरोध में हुआ है। स्वच्छंदतावादी समीक्षा पद्धति के मूल में व्यक्ति-विकास की भावना से अनुप्राणित जीवन-दृष्टि समाहित है। मार्क्सवादी समीक्षा पद्धति के मूल में समाज-चिंतन एवं व्यापकता का भाव है, विश्लेषण क्षमता तथा साहित्य को समाज के परिप्रेक्ष्य में देखने की दृष्टि है। विश्वनाथ त्रिपाठी कहते हैं कि "हिंदी की प्रगतिशील आलोचना अपने साहित्य की प्रगतिशील परंपरा का परिचय स्वीकार कर के आगे बढ़ने की जगह एक तरह से सर्वनिषेधात्मक और उपदेशात्मक मुद्रा के साथ चली है।"[13] साथ ही वे आगे कहते हैं "हिंदी के प्रगतिवादी आलोचकों ने विदेशी प्रगतिवादी चिंतकों विशेषत: लेनिन, प्लेखानोव, काडवेल इत्यादि की साहित्यिक मान्यताओं से हिंदी जगत का परिचय कराया।"[14]

हिंदी के मार्क्सवादी समीक्षाकों में डॉ. नामवर सिंह नाम अग्रणीय है। रचना विशेष के ऐतिहासिक संदर्भ, उसमें अंतनिहित विचारधारा तथा उसके स्वरूप और कला चेतना को परखने की नामवर सिंह जी की चेतना सराहनीय है। इनकी प्रथम रचना 'हिंदी के विकास में अपभ्रंश का योग' 1952 ई. में प्रकाशित हुई थी। तब से लेकर आज तक ये निरंतर हिंदी समीक्षा के केन्द्र में रहे हैं। प्रयोगवाद के विषय में इन्होंने स्पष्ट मन्तव्य दिया – 'व्यक्तिवाद ही प्रयोगवाद का केन्द्र बिन्दु है। उनके

अनुसार, प्रगतिशील साहित्य कोई स्थिर मतवाद नहीं, बल्कि यह निरंतर विकासशील साहित्य धारा है, जिसका विकास सामाजिक-सांस्कृतिक भावधारा से होता रहता है। नामवर सिंह नई कहानी के भी समर्थ समीक्षक हैं। 1968 में नामवर सिंह की प्रसिद्ध कृति 'कविता के नये प्रतिमान' प्रकाशित हुई। 1982 में नामवर सिंह की महत्वपूर्ण पुस्तक 'दूसरी परम्परा की खोज' प्रकाशित हुई। यह पुस्तक आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी को केन्द्र में रख कर लिखी गई हैं। द्विवेदीजी ने भारत की लोकोन्मुखी क्रांतिकारी परम्परा को जीवित रखने का प्रयत्न किया हैं जिसे नामवर सिंह साहित्य की प्रगतिशील परम्परा मानते हैं। नामवर जी की नयी पुस्तक 'वाद-विवाद-संवाद' 1989 ई. में आई है। इसमें नामवर जी ने भाषा, साहित्य, आलोचना पर विचार किया हैं।

प्रयोगवाद का प्रारंभ 'तारसप्तक' (1943) से माना जाता है। इसके उन्मेषकाल में आलोचकों के पास कुछ ठोस एवं दृढ़ विचारधारा न होने के कारण वे मात्र शिल्प तथा मार्ग-अन्वेष कहलाये। वे ही कवि इस युग की काव्य-प्रवृत्ति के आलोचक है, जो इस प्रवृत्ति को छायावादी प्रवृत्ति से श्रेष्ठ मानते हैं। 'तारसप्तक' की 'विवृत्ती' से हमें अज्ञेय जी के प्रयोगवाद संबंधित दृष्टिकोण का परिचय मिलता है। यही 'विवृत्ति' प्रयोगवाद का आधार मानी जाती है और इसी से इस धारा के अन्य आलोचकों ने प्रेरणा ग्रहण की है।

प्रयोगवादी कवि एवं आलोचक जीवन में प्रयोग को महत्व देते हुए प्राचीन रूढ़िवादी परम्पराओं को तोड़ना चाहते हैं। उनके अनुसार, छायावाद और प्रगतिवाद अब पुराने हो चुके हैं। इन वादों के काव्य-प्रतिमान भी घिसे-पिटे हैं। अत: ये कवि-आलोचक नवीन प्रयोग के हिमायती हैं। ये आलोचक स्वयं अपने समर्थन में तर्क प्रस्तुत

करते हैं, किन्तु उनके विचारों में एकमानता का अभाव होने के कारण किसी तर्क के द्वारा उन्हें पुष्टि प्रदान करना असंभव सा प्रतीत होता है। अज्ञेय जी के अनुसार उनमें मतैक्य नहीं है, सभी महत्वपूर्ण विषयों में उनकी राय अलग-अलग है, जीवन के विषय में, समाज, धर्म और राजनीति के विषय में, काव्य-वस्तु और शैली, छन्द और तुक तथा कवि के दायित्वों के प्रत्येक विषय में उनका आपस में मतभेद है, यहाँ तक कि हमारे जगत् के ऐसे सर्वमान्य और स्वयंसिद्ध मौलिक सत्यों को भी वे स्वीकार नहीं करते। जैसे लोकतंत्र की आवश्यकता, उद्योगों का समाजीकरण, यांत्रिक युद्ध की उपयोगिता इत्यादि। वे सब एक-दूसरे की रुचियों, कृतियों, आशाओं, विश्वासों पर, एक-दूसरे की जीवन-परिपाटी और यहाँ तक कि कुछ एक-दूसरे के मित्रों और पालतू जानवरों पर भी हँसते हैं। 'तारसप्तक' के सात कवियों को अज्ञेय जी ने भले ही एक साथ रखने का प्रयत्न किया हो, किन्तु वे तो अलग-अलग रास्ते खोजते प्रतीत होते हैं। इस प्रकार विचारों में विरोध होने के कारण प्रयोगवाद को लेकर आज जो काव्य-निर्माण और समीक्षण चल रहा है, उसका कोई ठोस आधार नहीं। केवल प्रयोग के नाम पर ये कवि आलोचक अपने पथ से भटक गये हैं। निश्चित सिद्धांतों के अभाव में प्रयोगवादी आलोचना में गांभीर्य नहीं है। कुछ सिद्धांत यत्र-तत्र सूत्र के रूप में बिखरे हुए मिलते हैं। उन्हीं को एकत्र करने पर हमें प्रयोगवादी आलोचना की जानकारी प्राप्त होती है। प्रयोगवादी आलोचकों की मान्यता है कि कवि की कोई भी कृति स्वान्त:सुखाय नहीं कहीं जा सकती, क्योंकि किसी भी कवि की आत्माभिव्यक्ति सम्पूर्ण एवं निरपेक्ष नहीं हो सकती। ये प्रयोगवादी समीक्षक नूतनता के जीतने पक्षपाती है, उतने साहित्य-सिद्धांत निरूपण के नहीं। ये प्रयोगवादियों की संसार के विद्वानों में गणना करते हैं। ये अपनी उलझी हुई संवेदनाओं की अभिव्यक्ति चाहते हैं। किन्तु स्वयं उलझकर रह जाते हैं। और यदि अभिव्यक्ति होती

है तो वह मात्र उलझन बन पाठकों के समक्ष प्रस्तुत होती है। ऐसे उलझन को सुलझाने का प्रयास भी इन्हीं कवियों द्वारा होता है। अत: ये कवि के साथ-साथ आलोचक का आवरण भी ओढ़े हुए रहते हैं। दो नावों में पैर रखने के कारण न तो ये श्रेष्ठ आलोचक बन पाये और न ही श्रेष्ठ कवि और न ही इनके कविता एवं आलोचना के प्रतिमान स्पष्ट हो पाये हैं। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी इनके कृतित्व का वर्णन इन शब्दों में करते हैं, 'उलझी हुई संवेदना की अभिव्यक्ति के लिए अथवा अभेध क्षेत्रों में जाने की स्वाभाविक प्रेरणा वश सीधी तिरछी लकीरों, सीधी या उल्टे अक्षरों आदि का उपयोग करते हुए कभी किसी विषय पर सहमत न होने वाले अन्वेषियों की रचना'।

कुछ आलोचकों ने प्रयोगवाद के समर्थन में अपने व्यर्थ वक्तव्य प्रस्तुत किये हैं जैसे प्रभाकर माचवे ने छायावाद को हिस्टीरिया की भाँति हिंदी कविता का एक मानसिक रोग माना और प्रयोगवाद का समर्थन किया है। इसका प्रमुख कारण यह हो सकता है कि प्रयोगवाद के पास न तो कोई शास्त्रीय आधार है और न तर्कसंगत भाषा। इसलिए प्रयोगवादी आलोचकों का दृष्टिकोण भ्रांत हैं। इन आलोचकों द्वारा प्रयोगवादी समीक्षा संबंधी बहुत कम सिद्धांत व्यक्त किये गये है और जो किये है, वे टूटे-फूटे ही है। प्रयोगवादी साहित्य बुध्दि-संगत नहीं है। इसके नाम पर काव्य के प्रयोजन तथा हेतु मिट्टी में मिला दिये गये हैं। 'रसात्मक काव्य' तथा रमणीय अर्थ से इन्हें कोई वास्तव नहीं। केवल नवीन प्रयोग होना चाहिए, चाहे वह भद्दा ही क्यों न हो। कह सकते है कि प्रयोगवादियों ने साहित्य रूपी म्यूजियम में भाव एवं शब्द रूपी जानवरों की प्रदर्शनी लगा रखी है।

वैसे तो सभी प्रयोगवादी कवि आलोचक भी है, किन्तु प्रमुख आलोचक के रूप में अज्ञेय जी का नाम लिया जाता है। उन्होंने 'तारसप्तक' की 'विवृत्ति' में प्रयोगवादी

समीक्षा के सिद्धांतों का विवेचन किया है। उन्होंने कहा है कि प्रयोगवादी कवि 'कविता को प्रयोग का विषय मानते हैं, काव्य की कोई प्रणाली नहीं केवल अन्वेषण के रूप में ही इसका प्रयोग किया जा रहा है। 'तारसप्तक' के कवियों को भी अज्ञेय जी 'राहों के अन्वेषी' कहते हैं। इन कवियों के बारे में स्वयं अज्ञेय जी का भी निश्चित मत नहीं है। अज्ञेय जी मनोविश्लेषणवादी आलोचक हैं। साथ ही वे प्रयोगवाद के व्याख्याता तथा जन्मदाता के रूप में भी जाने जाते हैं। किन्तु वे भी प्रयोगवाद को स्पष्ट करने में असमर्थ रहे हैं। इस वाद के अन्य समर्थकों में धर्मवीर भारती, विजयदेवनारायण साही आदि के नाम लिये जा सकते हैं।

स्वातंत्रोत्तर हिंदी आलोचना बहुआयामी रही। डॉ. नन्ददुलारे वाजपेयी, डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी, डॉ. नगेन्द्र, डॉ. रामविलास शर्मा आदि आलोचक संक्रांति काल के समीक्षक रहे। हजारीप्रसाद जी का सांस्कृतिक मानवतावाद, आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी का सौन्दर्यवाद तथा सौष्ठववाद, डॉ. नगेन्द्र की मनोवैज्ञानिक पद्धति तथा भाषा शैली की सौष्ठता, डॉ. रामविलास शर्मा की मार्क्सवादी भारतीय दृष्टि आदि ने अपने युग पर व्यापक प्रभाव डाला। डॉ. द्विवेदी ने कबीर को मानवतावादी दृष्टि से देखकर नवीन मूल्यांकन प्रस्तुत किया, तो नन्ददुलारे वाजपेयी ने प्रसाद के काव्य सौन्दर्य को अपनी समीक्षा का आधार बनाया।

द्विवेदी जी के चिंतन में जड़-चेतना का भेद मिट गया हैं। दर्शन का सत्य मानव एवं प्रकृति दोनों का सत्य बनकर चरितार्थ हुआ है। द्विवेदी जी का मानवता और मानव की अदम्य जिजीविषा में बहुत भरोसा है। वे चिन्मुखी मानवता के अन्वेषक आलोचक है। द्विवेदी जी की समीक्षा पुस्तकीय न होकर, अनुसंधानभरी, प्राणमयी हो गई है। वह

स्वयं में सर्जनात्मक कृति हो गई है। 'कालिदास की लालित्य योजना' निबंध में कवि कालिदास के संदर्भ में किया गया उनका तथ्यान्वेषी और वैज्ञानिक अनुसंधान दृष्टिगत होता है। उनका चिंतन केवल साहित्य तक केन्द्रित नहीं था, वह साहित्य का अतिक्रमण कर दर्शन के क्षेत्र में प्रवेश कर जाता था। वह मनुष्य सापेक्ष चिन्मुखी-मानवता के अन्वेषक, तत्वान्वेषी समीक्षक थे। उनके अनुसार मनुष्य ही साहित्य का लक्ष्य है। उनका अध्ययन, मनन, चिंतन मनुष्य केन्द्रित था। उन्होंने अतीत के सार्थक और प्राणवान तत्वों को वर्तमान से जोड़कर उसमें प्राणशक्ति का संचार किया।

'स्वच्छन्द' शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत के विशेषण 'स्व' तथा धातु 'छन्द' के संयोग से हुई हैं। (स्वस्य छन्द :- स्वछन्द)। 'स्व' का अर्थ है स्वयं की, छन्द का अर्थ है इच्छा। इस प्रकार दोनों शब्द के योग (स्व+छन्द) से निष्पन्न इस शब्द का अर्थ है 'स्वेच्छानुसार' (according to one's own freewill) हिंदी में भी स्वच्छंद शब्द इसी अर्थ में प्रयुक्त होता है। इस विश्लेषण से 'ता' प्रत्यय जोड़कर इसकी भाववाचक संज्ञा 'स्वच्छन्दता' बन जाती है इसका कोषगत अर्थ है, स्वतन्त्रता या स्वाधीनता। इस प्रकार यद्यपि भाषा शास्त्रीय दृष्टि से स्वच्छन्दतावाद शब्द का उद्गम संस्कृत में निहित है। तथापि साहित्य-प्रवृत्ति या मतवाद के अर्थ में इस शब्द का प्रयोग संस्कृत अथवा हिंदी के पूर्ववर्ती साहित्य में कहीं भी दृष्टिगत नहीं होता। इसका व्यवहार, संप्रति पाश्चात्य साहित्य-प्रवृत्ति रोमांटिसिजम के हिंदी पर्याय के रूप में होता है। बाबू श्यामसुन्दरदास द्वारा सम्पादित 'हिंदी शब्द-सागर' में यह शब्द सम्मिलित नहीं है। किन्तु 1955 में प्रकाशित राजेन्द्र द्विवेदी द्वारा प्रणीत 'साहित्य-शास्त्र का पारिभाषित शब्दकोश' में यह पाया जाता है। राजेंन्द्र द्विवेदी ने इस शब्द को यूरोपीय साहित्य की एक काव्यधारा के अर्थ में

ग्रहण किया है, हिंदी साहित्य के बाद के रूप में नहीं। अत: यह शब्द रोमांटिसिजम का हिंदी अनुवाद है। हमें यह देखना उपादेय होगा कि स्वच्छन्दतावाद के संबंध में आधुनिक विचारकों की क्या धारणा है। क्या वह युगीन वातावरण के अनुकूल है? इत्यादि। वास्तव में स्वच्छन्दतावाद एक ऐसा साहित्यिक आन्दोलन है, जिसने नये विज्ञान की यथार्थवादी मान्यताओं को आत्मस्त् करते हुए उसे मानवतावादी रूप दिया है। यह आन्दोलन भावुकतापूर्ण होने के कारण इस ने संश्लिष्ट जीवन रचना-प्रणाली को जन्म दिया। इस गतिशील स्वच्छन्दतावादी आन्दोलन ने तर्क के बल पर प्राचीन रूढ़िवादी परम्पराओं को समाप्त कर के उनके स्थान पर भावात्मक ढंग से नवीन संस्कृति के पुनःनिर्माण का कार्य किया। इस नवीन निर्माण के द्वारा संस्कृति के देश-काल और जातीय बंधन समाप्त हो गये और उच्च कोटी की मानवीय सत्ता की स्थापना हुई। जातिगत सीमा-रेखा समाप्त होने के कारण विशुद्ध मानवता का विकास हुआ। काव्य और कला के क्षेत्र में भी स्वच्छन्दतावाद एक उदत्त एवं जीवन सापेक्ष दृष्टिकोण पर आधारित व्याक्तिवाद जीवन-दर्शन का आन्दोलन था, जो मानवीय अध्यात्म की भूमिका पर विकसित होता रहा। इसकी परंपरा यूरोप में एक निश्चित रूप लिये हुए थी। भारत में भी इसका रूप हमें छायावादी चिंतन के अंतर्गत दृष्टिगोचर होता है। यद्यपि छायावादी आन्दोलन यूरोप की तरह समृद्ध नहीं था, तथापि उसमें पर्याप्त प्रौढ़ता एवं परिपक्वता के दर्शन होते हैं। छायावादी आन्दोलन सशक्त संवेदना की समग्रता पर आधारित होने के कारण प्रगतिशील भारतीय संस्कृति का प्रतिनिधि रहा है।

स्वच्छन्दतावादी कवियों को युग के परम्परावादी विचारकों के प्रबल आघातों को सहन करते हुए अपना रास्ता बनाना पड़ा। अत: इनका मार्ग कांटों से भरा था। किन्तु इस युग के कवियों ने बड़े साहस के साथ बाधाओं को दूर कर अपना मार्ग प्रशस्त किया। हिंदी में इस महत्वपूर्ण काव्य-चिंतन की हल्की-फुल्की समीक्षाएँ तो दृष्टिगत हो

जाती है, किन्तु सिधान्तों पर जमकर विचार नहीं हुआ। एकमात्र वाजपेयी जी ही ऐसे आलोचक रहे हैं, जिनमें हमें स्वच्छन्दतावादी-छायावादी सौन्दर्य-दृष्टि के दर्शन होते हैं। वाजपेयी जी के प्रगतिशील स्वच्छन्दतावादी मौलिक सिद्धांतों के बल पर ही इस आन्दोलन को गति प्राप्त हुई। वाजपेयी जी ने द्विवेदी-युगीन परंपरावादियों तथा उपयोगितावादियों को एक नयी दृष्टि दी। इतना ही नहीं, उनके परवर्ती समीक्षकों ने उनके मार्ग का अनुसरण कर स्वच्छन्दतावादी समीक्षा-धारा को विकसित किया।

समकालीन हिंदी आलोचना 'आलोचना' को भी रचना के रूप में देखे जाने की प्रस्तावना करती है। यह आलोचना में रचनात्मकता के लिए पर्याप्त स्पेस की माँग करती है। अपनी राजनीतिक दृष्टी में यह अपनी पूर्ववर्ती आलोचना से अधिक संतुलित दिखाई पड़ती है। इस दौर में कविता की आलोचना के साथ-साथ कथालोचना और नाट्यलोचना का भी विकास हुआ है। हिंदी आलोचना के समकालीन परिदृश्य में परम्परा संवाद की प्रवृत्ति भी बड़ी है। कथालोचना को आगे ले जाने के कार्य में इस आलोचना की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण रही है। इसमें बच्चन सिंह, निर्मल जैन, विश्वनाथ त्रिपाठी, नवल किशोर और डॉ. गोपाल राय आदि का उल्लेखनीय योगदान रहा है। गोपाल राय ने 'हिंदी उपन्यास कोश' (दो खंड), 'उपन्यास का शिल्प', 'अज्ञेय और उनका उपन्यास', हिंदी उपन्यास का इतिहास', 'हिंदी कहानी का इतिहास' (तीन खंड) आदि पुस्तकों के अतिरिक्त गोदान, रंगभूमि, मैला आँचल, शेखर एक जीवनी आदि पर स्वतंत्र आलोचनात्मक पुस्तकें लिखी। इस तरह गोपाल राय कथालोचना को आगे ले जाने में सक्षम रहे हैं।

आलोचना का महत्व :

'राम स्वरूप चतुर्वेदी के अनुसार रचना यदि जीवन का अर्थ विस्तार करती है तो आलोचक रचना का अर्थ विस्तार करती है।' दूसरे शब्दों में जीवन के अंतर्द्वंद को देखने-परखने में आलोचना दीपक की भूमिका निभाती है। आलोचना रचनात्मक संकेतों को सामाजिक अनुभवों के आलोक में 'डी-कोड' करती है। इस तरह जहाँ रचनाकार की रचनाशीलता विराम लेती है वहीं से आलोचक का कार्य प्रारंभ होता है। किसी भी साहित्य की आलोचना अपने समय और समाज की सापेक्षता और प्रसंगानुकूलता में संभव होती है, तभी आलोचना की सार्थकता और साथ ही साथ रचना की मूल्यवत्ता प्रमाणित होती है और इस प्रसंगानुकूलता और सापेक्षता की तलाश में आलोचना की सामाजिकता उभरती है। मैनेजर पाण्डेय कहते हैं, "साहित्य मनुष्य की मनुष्यता का एक माध्यम है। मनुष्य की मनुष्यता पूरी तरह प्रकट होती है उसकी स्वतंत्रता में - विचार, कल्पना और कर्म की स्वतंत्रता में। आलोचना उसी स्वतंत्रता का पालन पोषण करते हुई और उसके पक्ष में लड़ती हुई सामाजिक बनती है। मनुष्य की स्वतंत्रता ही जब उसकी आलोचनात्मक चेतना में विकसित होती है तब वह जानदार, असरदार और सामाजिक होती है।"[15] साथ ही वे आगे कहते हैं, "किसी भी समाज में आलोचना का स्वास्थ उस समाज के बौद्धिक वातावरण पर निर्भर होता है। अगर समाज का बौद्धिक वातावरण उन्मुक्त और संवादधर्मी होगा तो आलोचना भी मूलगामी, उत्सुक, तेजस्वी, प्रशंकुल और सत्यनिष्ठ होगी, लेकिन अगर बौद्धिक वातावरण रूढ़िवादी, पीछे देखू और सहमतिवादी होगा तो आलोचना वैसी ही होगी।"[16] अतः आलोचना साहित्य जीवन है जो बदलते सामाजिक सन्दर्भों में बार-बार रची जाती है। इस प्रकार आलोचना परखे हुए को बार-बार परखती है और जीवन-संबंधों के विकल्प की तलाश में साहित्य और आलोचना की सह-यात्रा जारी रहती है।

आलोचना का संबंध एक साथ इतिहास और सामाजिक विमर्श दोनों से होता है। इतिहास में परिवर्तन की दिशा और संवेदना की पहचान करने, उसका विश्लेषण करने, उस परिवर्तन के कारणों और पड़ावों की पहचान करने और उसे अपने तत्कालीन समाज से जोड़ने की दृष्टि से आलोचना का व्यापक महत्व है। सामाजिक विमर्श के रूप में आलोचना के मूल्य सामाजिक मूल्य से भी संबंधित होते हैं। आलोचक जब इतिहास के साथ ही समाज, राजनीति, धर्म, नैतिकता और अर्थव्यवस्था के प्रश्नों से भी टकराता है तो इस टकराहट में वह साहित्य के मूल्य भी निर्मित करता है। मनुष्य के जातीय जीवन और उसकी संस्कृति से जोड़कर साहित्य का विश्लेषण करने में आलोचना का महत्त्व समझ में आता है। आलोचना से सहृदय को साहित्य के प्रमाणिक अनुशीलन की सुविधा प्राप्त होती है। सहृदय की रस ग्रहण क्षमता का परिष्कार करने के लिए उसकी संवेदनाओं को जागृत करने में आलोचना का अहम महत्त्व है। इससे कृतिकार को उत्साह, विचारों की प्रौढ़ता, रचनात्मक विचारों और शिल्प एवं भाषा के परिमार्जन और परिवर्धन की प्रेरणा मिलती है जबकि पाठक की बोध-वृति का भी परिष्कार होता है।

इसप्रकार हम देखते हैं कि हिंदी आलोचना अपने आरंभ से सामाजिक सरोकारों से गहरे स्तर पर जुड़ी हुई है। युगीन हलचलों, वैचारिक द्वंद्वों, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक, नैतिक, राष्ट्रीय चिंताओं के सापेक्ष आलोचना के स्वरुप में भी व्यापक बदलाव हुआ है। सबसे अहम् यह कि हिंदी आलोचना रचनात्मक साहित्य के नवीन सृजन, नवीन विचारधाराओं और नवीन सामाजिक सरोकारों से टकराते हुए विविध दृष्टियों, प्रतिमानों और प्रवृतियों से युक्त होती चलती है। आलोचना के महत्त्व को मनुष्य के जातीय जीवन और उसकी संस्कृति से जोड़कर साहित्य का विश्लेषण करने की प्रक्रिया में ही हम समझ सकते हैं। किसी भी साहित्य की आलोचना अपने समय

और समाज की सापेक्षता और प्रसंगानुकूलता में संभव होती है, तभी आलोचना की सार्थकता और साथ ही साथ रचना की मूल्यवत्ता प्रमाणित होती है।

अंततः इस प्रकार हिंदी आलोचना भारतेन्दु युग से लेकर समकालीन परिदृश्य तक एक निरंतर आरोही क्रम में विकसित होती रही है। आरंभिक दौर में जहाँ साहित्य के मानकीकरण और आलोचना की भाषा के निर्माण की चिंता केंद्र में है, वही बीच के दौर में आलोचना विभिन्न गुटों में बटी हुई है। समकालीन दौर काफी हद तक हिंदी आलोचना की परिपक्वता का दौर है। और आज आलोचना में विचार का आग्रह तो है पर वह विचारधारा के खूंटे में बंधी हुई नहीं है। वह न तो कला को ही साहित्य का पर्याय मान रहीं है, न तो वह रचना के रूप के प्रति पूर्णत: उदासीन है।

संदर्भ :-

[1] आलोचना की समाजिकता - मैनेजर पाण्डेय, पृ. सं. 57

[2] आलोचना में सहमति-असहमति - मैनेजर पाण्डेय, पृ. सं. 22

[3] हिंदी आलोचना का विकास - नंदकिशोर नवल, पृ. सं. 37

[4] हिंदी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ. सं. 308

[5] हिंदी आलोचना का विकास - नंदकिशोर नवल, पृ. सं. 31

[6] वही, पृ. सं. 38

[7] हिंदी साहित्य का इतिहास - आचर्या रामचंद्रा शुक्ल, पृ. सं. 309

[8] महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण - रामविलास शर्मा, पृ, सं. 381

[9] हिंदी आलोचना : बदलते परिवेश - डॉ. पशुपतिनाथ उपाध्याय, पृ. सं. 189

[10] हिंदी आलोचना की बीसवीं सदी - निर्मला जैन, पृ. सं. 34

[11] वही, पृ. सं. 38

[12] वही, पृ. सं. 50

[13] हिंदी आलोचना - विश्वनाथ त्रिपाठी, पृ. सं. 179-180

[14] वही, पृ. सं. 181-182

[15] आलोचना की समाजिकता - मैनेजर पाण्डेय, भूमिका से

[16] वही, भूमिका से

-: तृतीय अध्याय :-

गोपाल राय का आलोचना कर्म

तृतीय अध्याय

गोपाल राय का आलोचना कर्म

आलोचना का अर्थ किसी कृति के गुण-दोष की ही व्याख्या करना नहीं हैं, बल्कि आलोचना किसी भी लेखक की विशेषताओं को उजागर करने के साथ-साथ उसकी विचारधारा में डूबकर उसकी अंतर्वृत्तियों की छान-बिन करती है। आलोचना करना कोई आसन कार्य नहीं है, ऊपर से देखने में यह कार्य जितना आसन दिखाई देता है, उतना ही व्यवहार में यह कार्य कठिन है। 21वीं सदी के साहित्य पर नजर ड़ाली जाए तो अनगिनित आलोचक विद्यमान है, जो किसी न किसी विषय की आलोचना करते हैं। लेकिन गौर किया जाए तो ऐसे कितने आलोचक हैं जिन्होंने 'समालोचना' के पथ को सही रूप में आगे बढ़ाया है। आलोचना का अर्थ दो धारी तलवार पर चलने जैसा होता है। आलोचक को सुक्ष्म पर्यवेक्षक, गहन अध्येयता, निष्पक्षता आदि गुणों से लेस होना चाहिए। आलोचक के गुण लेखक में नहीं पाए जा सकते और न यह जरुरी कि बहुत ज्यादा पढ़ने-लिखने वाला व्यक्ति एक अच्छा आलोचक बन सकता है। राजेंद्र यादव ने यह सवाल उठाया था कि आखिर एक अध्यापक ही एक अच्छा आलोचक क्यों माना जाता है? यह कठिन, परिश्रम और गहन अध्ययन तो कोई भी कर सकता है, जिसमें लगन हो या कुछ करने की इच्छा हो। ऐसा नहीं है कि अध्यापक ही एक उत्कृष्ट आलोचक हो। लेकिन एक उच्चकोटि का आलोचक बनने के लिए व्यक्ति में अध्यापकीय गुण होना जरुरी है। अध्यापक ऐसा व्यक्ति है जो सवालों में छिपे जावाबों को पहचान सकता है, एक अध्यापक शब्दों के अर्थो में भाव को समाझ सकता है, अध्यापक की जिज्ञासा ही उसे आस-पास की अनदेखी परिस्थितियों से परिचित कराती है। अध्यापक अपने ज्ञान को ही समृद्ध करने के लिए नहीं पढ़ता बल्कि अपने विद्यार्थियों की

समस्यायों के समाधान और उन्हें कुछ नया ज्ञान देने के लिए भी गहन अध्ययन करता है। अध्यापक अपने लिए, समाज के लिए, आने वाली पीढ़ी के लिए ज्ञान को संचित करता है। आलोचक की पहली मांग है गहराई में जाकर अध्ययन करना, समस्या के मूल जड़ तक जाना, ताकि विषय का बारीकी से परिचय हो सके।

जब हम आलोचना की बात करते हैं तो अनेक आलोचकों के नाम हमारें समाने प्रस्तुत होते हैं। लेकिन जब बात कथालोचना हो तो एक ऐसे श्रेष्ठ आलोचक सामने आते हैं जिन्होंने हिंदी कथालोचना को उच्च शिखर तक पाहुचने का कार्य किया। उन्होंने साहित्य जगत को ऐसी रचनाएँ दी जो कालजयी बन गई हैं, वे आलोचक है गोपाल राय। इन्होंने हिंदी कथा साहित्य को एक अलग ही नजरिए से देखा और उसकी व्याख्या भी दूसरों से भिन्न अलग तरह से की। गोपाल राय के आलोचना कर्म में रचना का सत्य और उसकी अवधारण अथवा उद्घाटन ही प्रमुख है, बाकि सब द्वितीयक। आलोचना के पीछे उनकी यह दृष्टी रही है कि आलोचकीय तटस्थता, धैर्य, विवेक, वाद तथा विवाद संचालित आलोचना केवल आलोचना नहीं है वह इससे भी परे है।

आज हिंदी साहित्य जगत में बहुतेरे विद्वान और चिन्तक भावत: यह कहते थकते नहीं कि विश्वविद्यायों में हिंदी आलोचना का बड़ा गर्क हुआ है, परन्तु साक्ष्यों पर आधारित बात करें तो हिंदी आलोचना का सर्वश्रेष्ठ और अधिकांश साहित्य देश के विभिन्न विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयों से ही निकला है। यह मानना जरूरी हो जाता है क्योंकि भारत देश में यह परंपरा पूर्वपार से चली आ रही है। जैसे आचार्य रामचंद्र शुक्ल, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, डॉ. रामविलास शार्म, डॉ. नगेन्द्र नंददुलारे वाजपेयी, विजयदेव नारायण साही, नामवर सिंह और अन्य विद्वान विभिन्न विश्वविद्यालयों से निकले हैं और आज भी इस प्रक्रिया में लगातार विद्वान आगे आ रहे हैं। इन्ही विद्वानों में डॉ. गोपाल राय भी आते हैं और उनके आलोचना विकास में उनके

अध्यापकिय व्यक्तित्व ने अहम् भूमिका निभाई है। उन्होंने अपनी पुस्तक 'शेखर एक जीवनी: मूल्यांकन' की भूमिका में लिखा है, "यह पुस्तक पढ़ने-पढाने के क्रम में बन गई है, गत पांच-छह वर्षो से स्नातकोत्तर वर्गों में 'शेखर एक जीवनी के अध्यापन के सिलसिले में इस उपन्यास के संबंध में अनेक सवाल मन में उठते रहे हैं और उनका हल ढूँढने का प्रयास करता रहा हूँ।"[1] उनकी लगभग सभी पुस्तके अध्यापन काल में लिखी गई। इससे एक बात साफ़ दिखाई देती है कि एक शिक्षक के रूप में छात्र-शिक्षक के बीच के संवाद को डॉ. गोपाल राय अपरिहार्य मानते हैं। इस प्रक्रिया में दोनों का रचनात्मक विकास संभव हो पाता है। आज शिक्षा जगत में विशेषकर हिंदी शिक्षा जगत में रचनात्मक विकास का आभाव होता जा रहा है। इसे देखते हुए अध्ययन-अध्यापन की इस प्रक्रिया को अपनाना परवर्ती साहित्य अध्येता और छात्र के रूप में सुखद अहसास है।

आज-कल आलोचना के क्षेत्र में एक शब्द बार-बार सुनाई देता है, वह है अध्यापकीय आलोचना। इसका प्रयोग प्रशंसात्मक न होकर किसी के महत्व को हल्का करने या सिरे से खारिज करने के लिए किया जाता है। परन्तु ऐसा करते हुए लोग स्तर भेद बिल्कुल भुला देते हैं। आचार्य रामचंद्र शुल्क का 'हिंदी साहित्य का इतिहास' कक्षा के लिए तैयार किये गए नोट्स ही थे, अत: अगर कोई यह कहता है कि कक्षा में पढ़ने के क्रम में अमुक कार्य की, अमुक पुस्तक की, योजना बनी तो उसकी परीक्षा किये बिना नकारात्मक संदर्भ में अकादमिक आलोचना मानकर सिरे से ख़ारिज करना उचित नहीं हैं। वास्तविकता तो यह है कि विद्यार्थियों से लगातार संवाद के कारण उनके द्वारा उठाएँ गए प्रश्नों के आलोक में सहज ही अध्यापक-आलोचक पाठ को पुनर्विवेचित करने

को प्रोसाहित होता है। यह कार्य ईमानदारी और सजगता से किया जाये तो आलोचना समृद्ध होती है अपितु अधिक स्पष्ट और प्रभावोत्पादक भी होती है।

वस्तुत डॉ. गोपाल राय हिंदी के उन महत्वपूर्ण आलोचकों में है जो उपर्युक्त प्रक्रिया द्वारा निरंतर अपनी आलोचना का विकास और विस्तार करते रहें। 'गोदान : नया परिप्रेक्ष्य' में वे लिखते हैं, "प्रस्तुत पंक्तियों के लेखक ने आज से लगभग 15 वर्ष पूर्व 'गोदान' का अध्ययन अपनी 'गोदान : अध्ययन की समस्याएं' 1966 नामक पुस्तक में किया था। तब से लेकर अब तक 'गोदान' पर कई पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी है। पर इनमें अधिकांश संकलन रूप में है। जो थोड़ी से गोदान पर स्वतन्त्र आलोचना पुस्तकें हैं। उनमें गंभीर अध्ययन तथा वैज्ञानिक दृष्टी का आभाव है, स्वयं मेरी पहली पुस्तक मुझे अपर्याप्त और दोषपूर्ण प्रतीत होती है। उस पुस्तक की कुछ सामाग्री मैंने ले ली है, पर अपने विगत उन्नीस वर्षो के अध्ययन-अध्यापन से प्राप्त सामाग्री और दृष्टी को नए ढंग और अवलोकन बिंदु से नियोजित करने का परिणाम है यह पुस्तक।"[2] इस प्रकार उपर्युक्त बातों से यह स्पष्ट होता है कि गोपाल राय ने भी स्पष्ट स्वीकारा है और आलोचना-अनुसन्धान में यह प्रक्रिया उन्होंने लगभग सर्वत्र अपनाई है। इसके अनेक उदाहारण प्रस्तुत किये जा सकते हैं।

उपर्युक्त उदाहरण में कुछ अन्य बातों की ओर भी ध्यान दिया जा सकता है। सबसे पहली बात जिसकी ओर हमारा ध्यान जाता है वह यह है कि, एक ही पुस्तक का बार-बार लेखन, आलोचना के सन्दर्भ में स्वतन्त्र पुस्तक के स्थान पर लेखों को संकलित कर पुस्तक रूप में प्रकाशित कराने का चलन। इसकी ओर ध्यान देते हुए गोपाल राय यह मानते हैं कि इस प्रकार की पुस्तक में वैज्ञानिक दृष्टी और गहन अध्ययन का अभाव होता है। ऐसी संकलित पुस्तक का अपना महत्व है परन्तु उसकी एक सीमा होती है।

वह भानुमती का पिटारा होती है, उनमें न आतंरिक क्रमवारता होती है न विवेच्य विषय पर एक दृष्टिकोण और न ही गंभीर और सुसंबंध विवेचन प्रस्तुत करने वाले लेख होते हैं। ऐसी संकलित पुस्तके उस विषय पर उपलब्ध कुछ श्रेष्ठ और कुछ ऐतिहासिक महत्व की सामाग्री का संकलन मात्र होती है।

गोपाल राय की श्रम, साधन, निष्ठा और कर्मठता का दूसरा सफल और महत्वपूर्ण पक्ष उनकी रचनाओं के रूप में हमारे सामने आता है। हिंदी आलोचना को इन्होनें नई दिशा और गति प्रदान की है। उनका सबसे बड़ा कार्य हिंदी कथा-साहित्य का श्रृंखलाबद्ध इतिहास है। हिंदी कथा साहित्य से संबंधित जो पुस्तकें उन्होंने लिखी या संपादित की है, उस तरह का कार्य किसी अन्य विद्वान, लेखक और प्राध्यापक ने नहीं किया है। उनका आलोचना कर्म निम्न प्रकार है,

3.1 संपादक के रूप में आलोचना :

रचना, पत्र-पत्रिका के सन्दर्भ में अगर देखा जाए तो संपादक का महत्व अधिक होता है। उसे क्या संपादन करना है और क्या नहीं उसका ध्यान उसे रखना होता है। यह कहने में जितना आसान है, उतना ही यह कार्य मुश्किल है। क्योंकि आलोचना के क्षेत्र में काफी सारे आलोचक अनेक विचारधाराओं को लेकर चलते हैं, हर कृति को वे अपने विचारधारा के अनुरूप देखते हैं। तो उसी कृति को दूसरे आलोचक अलग दृष्टी से देखते हैं। तब संपादक के समक्ष यह कठिन कार्य उपस्थित होता है, किसे स्वीकारे या किसे अस्विकार करे। संपादक का दूसरा कार्य इसलिए महत्वपूर्ण बन पड़ता है कि वह अपने संपादन कार्य के माध्यम से पाठकों को नये विचारों, नई साहित्यिक कृतियों से परिचय करता है।

किसी भी रचना या पत्र-पत्रिका का संपादक दीपक की लौ के समान होता है। जिस प्रकार लौ दीपक के चारों ओर प्रकाश बिखेरती है ठीक उस प्रकार संपादक द्वारा उस रचना या पत्र-पत्रिका को प्रकाशित किया जाता है। जिसे पढ़ते ही उस रचना या अन्य विषय के बारे में मन में एक चित्र प्रकाशित होने लगता है। संपादक के तार प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रकाशित रचना से जुड़े होते हैं। संपादक द्वारा रचाना की दृष्टी विशेष का पता चलता है। वह किस वाद, विचारधारा या व्यक्तित्व से प्रभावित है और निष्पक्ष है या तटस्थ है। वैसे तो विशुद्ध रूप से तटस्थ या निष्पक्ष होना असंभव है, फिर भी कहे सकते हैं कि अन्य रचनाओं के द्वारा आघात किये जाने पर संपादक के नाते वह प्रतिउत्तर देने का भी काम करता है।

व्यक्ति, समाज और देश के लिए पथ प्रदर्शक के रूप में संपादक के पद का प्रयोग किया जाता है। उसका अपने परीवेश के प्रति सजग दृष्टिकोण स्पष्ट झलकता है। अत: यह कहा जा सकता है कि जिस प्रकार मानव शरीर के विकास के लिए संतुलित भोजन आवश्यक है, ठीक उसी प्रकार संपादक उस रचना में संतुलित भोजन का काम करता है। वास्तव में रचना और पत्र-पत्रिकाओं के संसार में संपादक सर्वश्रेष्ठ और उत्तरदायित्वपूर्ण स्थान रखता है। संपादक के पास सूक्ष्म, गहन, विस्तृत और व्यवहारिक आलोचकीय दृष्टी का होना आवश्यक है। तभी वह व्यक्ति, समाज और देश के सन्दर्भ में प्रासंगिक रचना के साथ न्याय कर सकता है।

गोपाल राय के संपादकीय व्यक्तित्व को दो कार्यो से देखा जा सकता है। पहला है तैमासिक पत्रिका 'समीक्षा' और दूसरा है 'हिंदी साहित्याब्द कोश' और अन्य विषयों पर उनके संपादन कार्य। 'हिंदी साहित्याब्द कोश' में वस्तुत: एक वर्ष में प्रकाशित हिंदी रचनाओं का आलेखन और सिंहावलोकन करने का प्रयास किया गया था। उन्होंने

'साहित्याब्द कोश' 1967 की भूमिका में लिखा है, "हिंदी साहित्याब्द कोश 1967 में प्रकाशित समस्त नई और उल्लेखनीय पुस्तकों की समीक्षा, परिचय अथवा सुचना देने का प्रयास किया गया है। हम यह दावा नहीं करते हैं कि कोई पुस्तक नहीं छूटी है। हिंदी का क्षेत्र इतना विशाल है कि उसे देखते हुए इस तरह का दावा संगत नहीं होगा, पर हमने इस बात का प्रयास जरुर किया है कि कोई भी महत्वपूर्ण पुस्तक 'हिंदी साहित्याब्द कोश' में अचर्चित नहीं रहे।"[3] तदुपरांत सन् 1980 तक लगतार प्रकाशित यह सन्दर्भ ग्रन्थ संपादक के शब्दों में इस कारण एक दू:खद अंत को प्राप्त हुआ... "व्यावसायिक स्तर पर यह योजना असफल रही है। इस ग्रन्थ के प्रत्येक खंड़ की पांच सौ प्रतियां छपती रही हैं, पर अधिकांश प्रतियाँ अनबिकी, गोदाम में सीड़-बिडों और चूहे का खाद बनने को बाध्य हुई है। हिंदी जगत में शताब्दिक विश्वविद्यालयों तथा अनके शोध संस्थानों के होते हुए एक उपयोगी सन्दर्भ प्रकाशन योजना का यह हश्र आश्चर्य नहीं तो चिंता की बात अवश्य हैं"[4] इस सन्दर्भ ग्रन्थ के महत्व को अनुसंधानकर्ता सहज ही पहचानते हैं। संपादक ने स्पष्ट आत्मविश्वास भरे शब्दों में इस ग्रंथ के ऐतिहासिक महत्व को स्वीकार करते हुए कहा है, "संपादक का यह आत्माविश्वास वायवीय नहीं है, सूचनाओं के साथ आरंभिक विश्लेषण भी इसकी विशेषता है। इन आरंभिक विश्लेषण में आज यत्र-तत्र कच्चापन अधिक नजर आ सकता है, परन्तु इनके ऐतिहासिक महत्व को नहीं नकारा जा सकता है।"[5]

गोपाल राय ने 'साहित्याब्द कोश' के अलावा और अन्य प्रमुख पुस्तकों का भी संपादन किया है। उतना ही नहीं 'समीक्षा' पत्रिका के संपादकीय में उन्होंने अनेक विषयों पर अपना लेखन दिया है। 'राष्ट्रकवि दिनकर व्यक्तित्व और रचना के आयाम',

प. गौरिदत कृत ‘देवरानी जेठानी की कहानी 1966 आदि उनके द्वारा संपादित अत्यंत महत्वपूर्ण पुस्तके हैं। उनकी संपादकीय टिप्पणियां, समीक्षाएँ और निबंध समीक्षा जिनकी संख्या पाँच सौ से भी अधिक है वह अन्य पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित है। यदि उनके द्वारा संपादित पुस्तकों पर ध्यान दिया जाए तो उनकी पुस्तक ‘हिंदी साहित्याब्द कोश’ अपना विशेष महत्व रखती हैं।

‘हिंदी साहित्याब्द कोश’ गोपाल राय द्वारा संपादित संदर्भ ग्रन्थ अत्यंत महत्वपूर्ण है। 1967 से 1980 तक इस ग्रन्थ को चौदह खंडों में प्रकाशित किया है, इस ग्रन्थ में चौदह साल के साहित्य का पूरा वर्णन है। इस कोश का संपादन करते समय इसे प्रकाशित करने के लिए कोई भी प्रकाशक तैयार नहीं था। उस समय इतनीं आसानी से कोई भी पुस्तक का प्रकाशन नहीं होता था। इस महत्वपूर्ण कोश को प्रकाशित करने के लिए उन्होंने स्वयं एक प्रकाशन ‘ग्रंथ निकेतन’ नाम से शुरू किया। ताकि एक मूल्यवान पुस्तक से साहित्य के लोग परिचित हो सकें। ‘हिंदी साहित्याब्द कोश’ विद्यार्थियों, शोधार्थियों और लेखकों के लिए बहुत महत्वपूर्ण मानी जा सकती हैं। इतना ही नहीं पाठकों के लिए उन्होंने अपना शोध ग्रंथ ‘हिंदी कथा साहित्य के विकास पर पाठकों की रुचि का प्रभाव’ शीर्षक से प्रकाशित करवाया। ‘ग्रन्थ निकेतन’ से प्रकाशित होने वाली यह पहली पुस्तक थी। इसके बाद यहीं से ‘हिंदी का पहला उपन्यास ‘देवरानी जेठानी की कहानी’ और ‘हिंदी उपन्यास कोश’ दो खंडों में प्रकाशित हुआ। इसी ‘ग्रंथ निकेतन’ से और भी कुछ पुस्तके प्रकाशित करायी गई।

‘दिनकर: व्यक्तित्व और रचना के आयाम’ यह पुस्तक राष्ट्रकवि दिनकर की पुण्यतिथि के प्रथम वर्ष के अवसर पर सन् 2009 में प्रकाशित हुई है। संपादक का कहना है कि “यह पुस्तक इसी दिशा में एक बहुत छोटा सा प्रयास है। दिनकर के निधन

के बाद 1975 ई. में 'समीक्षा' ने दिनकर स्मृति विशेषांक निकाला था, जो ईषत् संवर्धन के साथ पुस्तक रूप भी उपलब्ध कराया गया था। उस सामग्री को और भी संवर्धित और संशोधित रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास इस पुस्तक के द्वारा किया है।"[6] मुख्यतः गोपाल राय ने इस पुस्तक में दिनकर की सभी रचनाओं की समीक्षा एक साथ कर दी है।

गोपाल राय 'समीक्षा' पत्रिका के संपादक थे और स्वामित्व आधिकार उन्हीं के पास था। वैसे तो संपादक समाज का अगुआ होता है। वह अपने परिवेश के प्रति सहग रहता है। उसके लिए यह पद व्यापार या पेशा नहीं बल्कि नैतिक जिम्मेदारी का है। योग्य संपादक का नेतृत्व प्राप्त कर ही कोई पत्र लोक-जीवन को जागृत, गतिशील और सरल बना सकने का दायित्व निभा सकता है। संपादक पत्र-पत्रिकाओं की नीति का निर्धारक होता है। वह पत्रकारिता की अनुशासनिक, न्यायिक और व्यवस्थापकीय त्रिधारा का संगम है। संपादक के जीतने भी गुण है उनमें गोपाल राय खरे उतरते हैं।

समीक्षा पत्रिका कों आगे बढ़ाने के लिए गोपाल राय ने लगभग 45 सालों तक संपादक का दायित्व निभाया। अपने संपादन कार्य में उन्होंने अनेक कृतियों की आलोचनाएँ की और अन्य विषयों पर अपनी अमूल्य मान्यताओं को हमारे सम्मुख रखा। गोपाल राय संपादक की विशेषताएँ बताते हैं कि वह आलोचकों से अच्छी आलोचनाएँ समय पर प्राप्त करना चाहता है पर हिंदी पत्रिकाओं की आर्थिक हालत प्राय: खस्ता है, अत: संपादक अलोचाकों को मूल्य नहीं दे पाता। फिर भी ऐसी स्थितियों में गोपाल राय ने 'समीक्षा पत्रिका' का चार दशकों तक संपादन कर अनेक रचनाओं और उनके रचिताओं से परिचित करवाया। इस प्रकार 'समीक्षा' पत्रिका और अन्य संपादित ग्रंथो द्वारा गोपाल राय का संपादकीय कर्म अपने-आप में महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

3. 2 कहानियों से संबंधित आलोचना :

गोपाल राय अपने लेखन में आलोचना को बहुत महत्व देते हैं। साहित्यिक क्षेत्र में उनकी आलोचना अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान रखती है। जिस प्रकार उन्होंने हिंदी उपन्यास या अन्य विधा की आलोचना की उसी प्रकार कहानियों को लेकर भी उनके लेखन में आलोचनात्मक दृष्टी पायी जाती है। उन्होंने हिंदी कहानी का इतिहास में कहानी लेखन को लेकर अपने विचार व्यक्त किए हैं। 'हिंदी कहानी का इतिहास' अब तक तीन भागों में विभाजित हैं। इसमें उन्होंने कहानी के इतिहास को बढ़े विस्तार से विश्लेषित करने की कोशिश की है। कहानी के इतिहास में गोपाल राय ने कहानी का उद्भव एवं विकास से लेकर अब तक की यात्रा और हिंदी कहानी शब्द से लेकर भाषा की संरचना तक को ध्यान में रखकर कहानियों की आलोचना की है। वे कहानी के विषय में लिखते हैं कि, "संस्कृत साहित्य में कहानी का एक अतिप्राचीन पर्याय 'कथा' है। जिसके किंचित अर्थान्तारों के साथ आख्यान, उपाख्यान, आख्यायिका, वृत्त, इतिवृत्त, गाथा, इतिहास, पुराण, वार्ता, चरित आदि रूप प्रचलित है। शब्द ही अपभ्रंश में 'कहा' का रूप ग्रहण कर अवधी, भोजपुरी आदि भाषाओं में 'कहानी' आदि पदों में बदल गया है। हिंदी में यह शब्द वस्तुत: अवधी, भोजपुरी आदि से ही आया है। उन्नीसवीं सदी के आरम्भ में इंशा अल्ला खां ने अपनी रोमानी गद्य कथा 'उदयभान चरित' को 'रानी केतकी की कहानी' और सदल मिश्र ने अपनी पौराणिक गद्यकथा को 'नासिकेतोपाख्यान' कहा था। उन्नीसवीं शताब्दी के पहले तीन चरणों में मुद्रित हिंदी कथाओं के लिए कहानी, उपाख्यान, वृत्तान्त आदि पद प्रचलित थे।"[7]

वर्तमान समय में हिंदी कहानी को विशिष्ट महत्व दिया गया है। पूर्ववर्ती साहित्य में इसकी उपेक्षा हुई है। आरंभिक काल में हिंदी कहानी में वर्णनात्मक शैली का प्रयोग हुआ है। जिसमें तृतीय पुरुष में कथा प्रस्तुतीकरण किया जाता है। तथा कुछ

कहानियां आत्मकथात्मक शैली में लिखी गई। प्राचीन भारतीय कथा-साहित्य के अंतर्गत 'पंचतंत्र' तथा 'हितोपदेश' में जो शैलीगत जटिल रूपात्मकता मिलती हैं उसका प्रभाव कहानी की अपेक्षा उपन्यास पर अधिक पड़ा। भारतेंदु युग में वर्णनात्मक तथा आत्मकथात्मक शैलीयों के अतिरिक्त अन्य शैलियों की ओर ध्यान नहीं दिया गया। प्रेमचंद के समय से ही वर्णात्मक शैली तथा ड़ायरी शैली का प्रयोग हुआ। सभी शैलियों की अपनी सीमाएं व विशेषताएं है जो कहानी में अभिव्यंजित होती है। गोपाल राय कहानी और आख्यायिका के अंतर को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं, "उल्लेखनीय है कि कथा और आख्यायिका का भेद भुला दिया गया। भामह के अनुसार कथा की वस्तु कल्पित जबकि आख्यायिका की ख्यात अथवा ऐतिहासिक होती थी।"[8] जब से 'सरस्वती' पत्रिका का प्रकाशन होने लगा तब से कथा और आख्यायिका में भेद कम हुआ है। 'सरस्वती' में 'आख्यायिका का खंड़' शीर्षक से आख्यायिकाएँ प्रकाशित होती रही। लेखक के अनुसार, "गोस्वामी जी ने 'इंदुमती' को तो आख्यायिका पर 'गुलबाहर' को उपन्यास कहा था। और तो और स्वयं शुक्ल जी ने भी अपनी रचना 'ग्यारह वर्ष का समय' को आख्यायिका ही कहा था। तनिक बाद में जयशंकर प्रसाद ने भी अपनी छोटी कथा रचनाओं को आख्यायिका नाम से ही अभिहित किया था।"[9] प्रेमचंद ने सन् 1908 में प्रकाशित अपने कहानी संग्रह 'सोजे वतन' की भूमिका में पहली बार 'शार्ट स्टोरी' पद के अर्थ में कहानी पद का प्रयोग किया था। परन्तु हिंदी में लिखने के बाद वे अपनी कहानियों को कभी कहानी, कभी आख्यायिका और कभी गल्प कहते रहें।

कथा और कहानी :

गोपाल राय ने 'कथा' और 'कहानी' को पारिभाषित किया है। 'कहानी' को 'कथा' से अलग माना जाए तो हमें पहले 'कथा' पद को स्पष्ट करना होगा। लेखक के शब्दों में, "कथा अपने मूल अर्थ में समयानुक्रम में निबंध घटनाओं की श्रृंखला है। सफल कथा वह है जो श्रोता की कौतुहल भावना को आरम्भ से अंत तक जागृत रखे। श्रोता हमेशा यह जानने को उत्सुक रहे कि, फिर क्या हुआ? ऐसा क्यों हुआ? या यह कैसे हो सकता है? इसकी चिंता वह नहीं करे यह कथा का मूल चरित्र है, जो बच्चों को या अविकसित बुद्धि के श्रोताओं को लुभाता और रमाता है। इसका मूल रूप 'कहने सुनने' का था जो मुद्रण यंत्रों के प्रचलन के साथ लिखने पढ़ने का हो गया।"[10]

'कथा' का थोड़ा विकसित रूप वह है जिसमें घटनाओं के बीच कार्य, कारण संबंध भी अपेक्षित होता है। साथ ही समयानुक्रम की अवधारण में भी परिवर्तन हो जाता है और कथा अतित से वर्तमान की ओर न चलकर, वर्तमान से अतित की ओर और अतित से वर्तमान में आवाजाही करने लगती है। देवकीनंदन खत्री इस प्रकार के कथाकार और 'चंद्रकांता' इस प्रकार की कथा है। कथा का इससे भी विकसित रूप वह है जहाँ घटना श्रृंखला का स्थान कार्य-व्यापार श्रृंखला ले लेती है। घटना और कार्य व्यापार का अंतर यह है कि घटना आकस्मिक, असाधारण और प्राय: कार्य-कारन से सम्बंधित परे होती है। जब कथा में तर्क और अनुभवजन्य कार्यकलापों की श्रृंखला होती है तब उसका स्वरूप बदल जाता है और वह मानव जीवन के यथार्थ और संस्कृति की बाधक बन जाती है। उदाहरण स्वरूप वेद, उपनिषद, पुराण और पंचतंत्र आदि हमारे सामने प्रस्तुत हैं।

कहानी और उपन्यास :

कहानी किसे कहें? और उपन्यास किसे कहें? इस विषय के बारे में लेखक यह लिखते हैं कि, "भारत में प्रचीन काल से लेकर उन्नीसवी शताब्दी के लगभग तीसरे चरण तक कथा का उपयोग प्रबंध काव्य और नाटक में गौण तत्व के रूप में होता रहा है। उन्नीसवी शताब्दी में भारत में मुद्रणयंत्र के परिवेश के बाद कथा न केवल बाल बुद्धि के मनोविनोद के लिए पुस्तक का रूप ग्रहण करने लगी, वरन वह लेखक के विचारों, भावों और नैतिक बोध की अभिव्यिक्ति का साधन भी बनने लगी। हिंदी की 'देवरानी जेठानी की कहानी', 'भाग्यवती', 'परीक्षा गुरु', 'चंद्रकांता' आदि पुस्तके इसके प्रमाण है। कथा के इन्हीं रूपों से हिंदी में 'उपन्यास' और 'कहानी' का विकास हुआ।"[11] कथा की दृष्टी से उपन्यास और कहानी में कोई मौलिक अंतर नहीं है। अत: दोनों का सम्बन्ध मानव जीवन की सच्चाईयों और संवेदनाओं से है। अंतर यह है कि, "जहाँ उपन्यास में मानव जीवन की सच्चाइयों या संवेदनाओं का एक 'विजन' में समाहार होता है। वहाँ कहानी मात्र एक सच्चाई या संवेदना के बिंदु पर केन्द्रित होती है। कहानी का यथार्थ उपन्यास के यथार्थ की तरह जीवन के व्यापक संदर्भो से युक्त नहीं होता। कहानी में उपन्यास की तरह पात्रों का बाहुल्य भी अपेक्षित नहीं होता। अधिकतर तो कहानी में दो-एक पात्र ही होते हैं यदि कथ्य की अनिवार्यता के कारण कुछ अधिक पात्र आते भी है तो उनकी कोई स्वतन्त्र भूमिका नहीं होती। कहानी के केंद्रीय पात्र का भी पूरा चरित्र कहानी का विषय नहीं बनता, उसके चरित्र का कोई मार्मिक अंश कोई करारा संकट कोई अप्रत्याशित स्थिति कोई मनोवैज्ञानिक द्वंद्व ही कहानी का विषय बनता है।"[12] इसी प्रकार प्रो. सत्यकाम भी लिखते हैं कि, "कहानी में यथार्थ की स्थिति बिजली की चमक की तरह होती है, जहाँ यथार्थ का कोई क्षण सहसा उद्भासित हो जाता है।

उपन्यास में मनुष्य के जीवन उसके सामाजिक सम्बन्ध, उसकी मनोवैज्ञानिक समस्याओं आदि के अवलोकन, विश्लेषण और अंकन के लिए पर्याप्त अवकाश होता है। कहानी में यथार्थ की अभिव्यक्ति इतने व्यापक पैमाने पर नहीं होती। कहानी में यथार्थ उद्भासित ही हो पाता है विश्लेषण नहीं हो पाता।"[13]

गोपाल राय ने आदर्श कहानी के लिए यह आवश्यक बताया है कि उसमें संवेदना का कोई मार्मिक बिंदु या क्षण ही प्रस्तुत किया जाए। उनका मानना है कि कहानी के प्रभाव के बिखर जाने की आशंका अधिक रहती है। उपन्यास में गतकाल की अपेक्षाकृत व्यापक विकास होता है तो कहानी में ऐसी संभावना बड़ी होती है। आदर्श कहानी के सन्दर्भ में लेखक का विचार यह है, "आदर्श कहानी तो वह होती है जिसमें केवल एक ही प्रसंग होता है या अधिक से अधिक मुख्य प्रसंग के इर्द-गिर्द सहायक रूप में कुछ गौण प्रसंग होते हैं यदि किसी मार्मिक संवेदना के क्षण को प्रस्तुत करने के लिए कथा का क्रम चलता भी है तो वह बहुत लम्बा या पेंचदार नहीं होता। कहानी का आकार तो छोटा होता ही है लेकिन उपन्यास की तरह उसमें दृश्य-निर्माण, वर्णन और वार्तालाप के लिए भी बहुत कम अवश्यक होता है। उपन्यास की संरचना में एकाधिक अवलोकन बिन्दुओं का प्रयोग आम बात है जबकि कहानी में इसके लिए बहुत कम गुंजाईश होती थी। कहानी में भाषा में वैविद्या की भी बहुत कम गुंजाईश होती है पर भाषा का बहुत सावधान और सर्जनात्मक उपयोग अपरिहार्य होता है।"[14]

गोपाल राय द्वारा रचित 'हिंदी कहानी का इतिहास' अब तक तीन भागों में प्रकाशित है। इस इतिहास पुस्तक में उन्होंने कहानी के उद्भव एवं विकास को लेकर बड़े ढंग से कालानुक्रम के साथ विश्लेषण किया है। हिंदी साहित्य में उनका आलोचनात्मक योगदान अधिक प्रेरणदायी रहा है। जिसका प्रमुख कारण यह है कि उन्होंने साहित्य की विविध विधाओं को लेकर समीक्षात्मक और आलोचनात्मक शोधपरक रचनाओं का

निर्माण किया है। जिसमें 'हिंदी कहानी का इतिहास' पुस्तक महत्वपूर्ण है। इस पुस्तक के भाग एक में उन्होंने आधुनिक हिंदी कहानी के क्रम को सामने रखते हुए यह बात कही है कि, "संस्कृति से आधुनिक हिंदी कहानी के विकास का कोई क्रमबद्द इतिहास नहीं है। खड़ीबोली आधारित हिंदी गद्य का इतिहास भी बहुत पुराना और समृद्ध नहीं कहा जा सकता। उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में मुद्रण-यंत्रों के बढ़ते उपयोग के फलस्वरूप परंपरा से चली आती मौखिक कथा को मुद्रित होने का लाभ मिला और पहली मौखिक गद्य कथा 'रानी केतकी की कहानी' 1841 के दशक में प्रथम बार मुद्रित हुई थी। इस बीच बहुत सी संस्कृत और फारसी परंपरा की कथाएं भी अनुदित होकर हिंदी में छपी। 1870 में उन्नीसवीं शताब्दी की दूसरी मौखिक गद्यकथा 'देवरानी जेठानी की कहानी' देवनागरी में मुद्रित हुई जिसके बाद 'कहानी' और 'उपन्यास' नाम से गद्य कथाओं के प्रकाशक का सिलसिला उन्नीसवीं शताब्दी के अंत तक चलता रहा पर 1900 के पूर्व शाब्दिक अर्थ में भी लघु कथाओं के प्रकाशन की कोई उल्लेखनीय परम्परा नहीं थी।"[15]

छोटी कथा का प्रकाशन पहली बार 'सरस्वती' पत्रिका में शुरू हुआ था। 'सरस्वती' पत्रिका की हिंदी साहित्य को बड़ी देन यह है कि इस पत्रिका में गद्य साहित्य को बड़ा स्थान दिया गया था। 'सरस्वती' में अनेक प्रकार की कहानियाँ प्रकाशित होने के कारण एक स्वतंत्र पाठक वर्ग तैयार हुआ और इसके साथ ही देश के अनेक प्रान्त से लेखक सामने आये। "सन् 1900 ई. में ही 'सरस्वती' में प्रकाशित केशव प्रसाद सिंह कृत 'चंद्रलोक की यात्रा', 'कश्मीर यात्रा' और 'आपत्तियों का पर्वत' नामक कथाएँ कल्पनाप्रसूत ही थी। यद्यपि वैज्ञानिक चेतना और यात्रा पर आधारित तथा राजनीतिक स्वतंत्रता और समाज-सुधार के उल्लेख के कारण उनमें आधुनिक छोटी कहानी की झलक अनायास ही आ गयी है। माधव प्रसाद मिश्र कृत 'पुरोहित का आत्मत्याग',

माधवराव सप्रे कृत 'एक टोकरी भर मिट्टी', मास्टर भगवान दस कृत 'प्लेग की चुड़ैल', गिरिजादत्त वाजपेयी कृत 'पंडित और पंडितानी' और रामचंद्र शुक्ल कृत 'ग्यारह वर्ष का समय', बंग महिला (राजेंद्रबाला घोष) कृत 'कुम्भ में छोटी बहु' और 'दुलाई वाली' आदि कहानियाँ भी कल्पनाप्रसूत की कोटि में ही आयेगी। उर्दू की कथा-परंपरा से आने वाले नवाब राय ने भी 'ख्यात' और 'कल्पनाप्रसूत' दोनों प्रकार की कहानियाँ लिखी।"[16]

उपर्युक्त सभी कहानियाँ 'आख्यायिका' के नाम से प्रचलित रही, केवल नवाबराय ने अपनी कहानियों के लिए कहानी पद का प्रयोग किया इस प्रकार बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक में हिंदी में आधुनिक कहानी के प्रथम चरण के रूप में अस्तित्व में आ गयी। गोपाल राय ने 'हिंदी कहानियों का इतिहास' को तीन भागों में विभाजित कर आलोचना की है। इस विषय के संबंध में लेखक का कहना है कि, "सन् 1900 ई वीं के आरम्भ से लेकर 2000 ई. वीं तक लिखित 'हिंदी कहानी का इतिहास' प्रस्तुत करने का निश्चय किया है। प्रस्तुत खंड में व्यवहारिक कारणों से अंतिम समय-सीमा 1950 तक कर दी गयी हैं।"[17] इस समय में जो हिंदी की कहानियाँ प्रकाशित हुई वह पहले भाग में विश्लेषित कर दी गयी है।

'हिंदी कहानी का इतिहास' भाग दो इस पुस्तक में सन् 1951 से लेकर सन् 1975 तक की हिंदी कहानी का इतिहास प्रस्तुत किया गया है। लेखक का कहना है कि, "पहले इरादा था कि दूसरे खंड़ में सन् 1951 से लेकर 2000 तक की हिंदी कहानियों का इतिहास लिखा जाए पर सामाग्री की अधिकता के कारण यह इरादा बदलना पड़ा। यह भी महसूस हुआ कि 1975 का वर्ष हिंदी कहानी में एक पड़ाव की तरह है। मोटा-मोटी रूप से इस वर्ष के आसपास अनेक पुराने और नये लेखकों का कहानी लेखन या तो समाप्त हो गया, उसकी चमक समाप्त हो गयी। जो हो दूसरे खंड़ की अंतिम सीमा के

लिए बहाना तो मिल गया। कहने की जरुरत नहीं कि तीसरे खंड़ से सन् 1976 से 2000 तक की कहानी का इतिहास प्रस्तुत करना अभिप्रेत है।"[18]

लेखक ने 'हिंदी कहानी की विकास यात्रा' को मुख्य: चार भागों में विभाजित किया है। 1. प्रेमचंद पूर्व युग (1901 -1915), 2. प्रेमचंद-प्रसाद युग (1915-1936), 3. उत्तर प्रेमचंद युग (1936-1950), 4. स्वातंत्र्योत्तर युग 1950। स्वातंत्र्योत्तर युग में विविध कहानी आंदोलन सामने आए जिसमें कहानी के विषय बहुत ही अलग ढंग से प्रस्तुत हुए। कहानी शुरुआत में रोमांस, आदर्श एवं मनोरंजन से जुडी रही। यह कहानी शिक्षित वर्ग को प्रभावित नहीं कर सकी परन्तु जैसे-जैसे समय बितता गया वैसे-वैसे कहानी लेखन में बदलाव आता गया।

गोपाल राय के अनुसार, हिंदी कहानी का आरम्भ कब से या किस रचना से माना जाए इसका किंचित विश्वसनीय उत्तर तभी दिया जा सकता है, जब कथा और कहानी के अंतर को ध्यान में रखकर निर्णय किया जाय कि प्रारम्भिक कथा रचना में कहानी का भेदक गुण प्रथम बार दिखाई देता है। कहानी को अंग्रेजी में 'शार्ट स्टोरी' कहते हैं। जो हिंदी में बीसवीं सदी के आरम्भ में आस्तित्व में आयी। गोपाल राय लिखते हैं कि, "हिंदी की प्रथम कहानी कौन सी है, यह प्रश्न विवादास्पद है और अनावश्यक भी, बीसवीं सदी के आरम्भ में जबकि कहानी विधा आस्तित्व में आयी थी, तब उसका अविर्भाव किसी बिजली की चमक जैसा नहीं हो गया था। अंग्रेजी की 'शार्ट स्टोरी' और कदाचित बंगला की गल्प (जो स्वयं भी शार्ट स्टोरी से ही प्रेरित और प्रभावित थी) नामक विधा अनुप्रेरित-प्रभावित होने पर भी उसका अपने आतंरिक नियमों से ही विकास हुआ था।"[19] परन्तु लेखक का कहना है कि उस काल में कहानी की कोई सुनिश्चित पहचान नहीं थी इतना ही नहीं बल्कि इसके लिए कोई संज्ञा तक निश्चित

नहीं हुई थी। गोपाल राय कहते हैं, "सरस्वती में इसके लिए आख्यायिका पद का आरम्भ हुआ, जिसे 'सुदर्शन वैश्योपकारक', 'इंदु' और कुछ दूसरी पत्रिकाओं ने भी अपनाया पर मर्यादा में बंगला साहित्य के अनुकरण पद इसके लिए गल्प पद प्रयुक्त हो रहा था। आचार्य रामचंद्र शुक्ल को इनमें से कोई भी नाम न जँचा और उन्होंने अपने 'हिंदी साहित्य के इतिहास' में छोटी कहानी पद का प्रयोग किया था।"[20]

गोपाल राय कहते हैं, "कहानियों का हमारे वर्त्तमान हिंदी साहित्य में 1900-1929 इतनी अनेकरूपता के साथ विकास हुआ है कि उनके संबंध में हम अपने कुछ स्वतंत्र सिद्धांत निर्मित कर सकते हैं, अपने ढंग पर उनके भेद उपभेद निरुपित कर सकते हैं। इसकी आवश्यकता समझने के लिए उदहारण देखिए, छोटी कहानियों के जो आदर्श और सिद्धांत अंग्रेजी की अधिकतर पुस्तकों में दिए गए है, उनके अनुसार छोटी कहानियों में शील या चरित्र विकास का अवकाश नहीं होता। पर प्रेमचंद की एक कहानी है 'बड़े भाई साहब' जिसमें चरित्र चित्रण के अतिरिक्त कुछ है ही नहीं। जिस संग्रह के भीतर यह कहानी है उसकी भूमिका में प्रेमचंद जी ने कहानी-विकास या चरित्र विकास को बड़ा भारी कौशल कहा है।"[21] हिंदी कहानी को गोपाल राय पाश्चात्य आदर्श के साथ नहीं देखते हैं, "वस्तुत: यदि हम छोटी कहानी के विषयक पाश्चात्य आदर्श-संवेदना के क्षण की आभिव्यक्ति पर टिके रहे तो प्रेमचंद, प्रसाद, जैनेन्द्र आदि की ही नहीं बाद की बहुत सारी कहानियाँ इतिहास से बाहर चली जायेगी।"[22]

हिंदी कहानी के उद्भव और विकास की प्रक्रिया को समझने के लिए उसका इतिहास अर्थात कहानी के क्रम बाह्य इतिहास का सिंहावलोकन बहुत आवश्यक है। हिंदी की पहली मौलिक गद्य कथा सय्यद इंशा अल्ला खां रचित 'रानी केतकी की कहानी' है। गोपाल राय इसे कहानी नहीं मानते क्योंकि यह आधुनिक कहानी नहीं है,

यह पुराण कथा पर आधारित है जिसमें घटनाएँ है और समयानुक्रम से निबंध घटनाओं की श्रृंखला भी। कमलेश्वर के अनुसार, “इंशा अल्ला खां की दूसरी कहानी भी कहानी के रूप में स्वीकार नहीं है। इंशा की दूसरी गद्य कथा ‘सिक्के गौहर’ भी कहानी के रूप में स्वीकार नहीं की जा सकती।”[23] इसी संदर्भ मे डॉ. सादीक के अनुसार, “उर्दू में एक प्रथम गद्य-विधा के रूप में कहानी के प्रथम चिन्ह उन्नीसवीं शताब्दी के पहले दशक में पोर्ट विलिएम कॉंलेज से संबंध लेखकों द्वारा तैयार की गई पुस्तकों में मिलते हैं। इसके समर्थन में उन्हें वे हैदर बख्श हैदरी की प्रो. इबादत बरेलवी द्वारा संकलित-संपादित 174 कहानियों के संकलन और भूमिका में व्यक्त उनके इस विचार को उल्लेख किया है कि इन कहानियों में लघु-कथा अथवा शोर्ट-स्टोरी की कलात्मक झलकियाँ स्पष्ट रूप से दिखाई देती है।”[24] पर स्वयं सादिक प्रो. हैदरी के विचार से पूर्ण सहमति नहीं रखते। अंग्रेजी हुकूमत या ईसाई धर्म प्रचारकों ने अपने स्कूली पाठ्यक्रमों में कुछ लिखित तथा कुछ लघु उपदेश कथाओं को शामिल किया जिसके उदाहरण उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्थ में मिलने लगते हैं। पर उन्हें भी कहानी के विकास से नहीं जोड़ा जा सकता।

गोपाल राय का मानना है कि, “उन्नीसवीं शताब्दी के आठवें दशक से मौलिक गद्य-कथाओं के लेखन और प्रकाशन का कार्य कुछ बड़े पैमाने पर आरम्भ हुआ, पर उन्हें ‘उपन्यास’ कहने का चलन रहा। ‘देवरानी जेठानी की कहानी’ के शीर्षक में कहानी शब्द का प्रयोग ‘कथा’ के अर्थ में ही हुआ है।”[25] कहानी लेखन के इतिहास में ‘सरस्वती पत्रिका’ का योगदान भी अधिक महत्वपूर्ण रहा है। क्योंकि उस समय हिंदी लेखकों में कहानी विधा के प्रति जागरूकता पैदा हुई और किशोरीलाल गोस्वामी की ‘इंदुमती’ ‘आख्यायिका’ विशेषण के साथ प्रकाशित हुई।

गोपाल राय ने अपने 'हिंदी कहानी का इतिहास' के प्रथम भाग में कहानी तथा उसके विकासक्रम को लेकर महत्वपूर्ण बाते सामने रखी है। वे लिखते हैं कि "जब हिंदी कहानी 'आख्यायिका' नाम से आस्तित्व में आयी, हिंदी लेखकों का संपर्क अधिकतर अंग्रेजी और बांगला साहित्य से ही स्थापित हो पाया था।"[26] गोपाल राय हिंदी कहानी का जन्म उस समय मानते है, जब उत्तर भारत का पुनर्जागरण आंदोलन अपने विकास के दूसरे चरण में प्रवेश कर चुका था। "यह एक अद्‌भुत संयोग है कि हिंदी कहानी का जन्म इसी राजनीतिक पुनर्जागरण के साथ हुआ। सरस्वती सुदर्शन, छत्तीसगढ़ मित्र, वैश्योपरक आदि इस काल की हिंदी-उर्दू की उल्लेखनीय साहित्यिक पत्रिकाएं थी। महावीर प्रसाद द्विवेदी 'सरस्वती पत्रिका' के माध्यम से हिंदी साहित्य में शब्दप्रेम, देशहित, नैतिक मूल्य, सामाजिक प्रबुद्धता, वैज्ञनानिक दृष्टी आदि की मुहीम चलाने के साथ-साथ हिंदी कहानी की नींव भी जमा रहे थें। उन्नीसवीं सदी के अंत तक साहित्यिक विधा के रूप में कहानी की कोई पहचान नहीं बनीं थी। यहाँ तक की उसके लिए कोई निश्चित संज्ञा भी स्थिर नहीं हुई थी। संभवता: सर्वप्रथम श्यामसुंदर दास ने अंग्रेजी की 'शार्ट-स्टोरी' विधा के लिए हिंदी में 'आख्यायिका' पद का प्रयोग आरम्भ किया था और जनवरी 1900 ई. वीं में 'सरस्वती' के प्रथम अंक में ही जिसके संपादक मंड़ल में कार्तिक प्रसाद खत्री, किशोरीलाल गोस्वामी, जगन्नाथदास, राधाकृष्णदास आदि के साथ वे भी शामिल थे।"[27]

किशोरीलाल गोस्वामी की 'इन्दुमती' तथा 'गुलाबधर' के साथ शुक्ल जी ने स्वयं अपनी कहानी को कहानी की संज्ञा प्रदान की। इसको अन्य कई आलोचकों ने समर्थन दिया। परन्तु कहना होगा कि स्वयं किशोरीलाल गोस्वामी ने 'इंदुमती' को

'आख्यायिका' और 'गुलाबधर' को 'उपन्यास' की संज्ञा दी। रामचंद्र शुक्ल ने भी अपनी कहानी 'ग्यारह वर्ष का समय' को 'आख्यायिका' ही कहा। गोपाल राय 'इंदुमती' को हिंदी की प्रथम कहानी मानने में संदेह करते हैं, "इंदुमती को प्रथम हिंदी कहानी मानने पर आपत्ति इस आधार पर की जाती है, जो संगत भी है कि यह मौलिक न होकर शेक्सपीयर के प्रसिद्ध नाटक 'टेम्पेस्ट' की छाया है।"[28]

रामचंद्र शुक्ल की कहानी 'ग्यारह वर्ष का समय' मौलिक होने पर भी अपनी अंतप्रकृति में, गोस्वामी जी की परंपरा की ही रचना है। उन्होंने स्वयं उसे धर्म और कर्तव्य से युक्त अदृष्ट प्रेम की कहानी होने के कारण उल्लेखनीय माना था। इस रचना में प्राकृतिक दुर्घटना के फलस्वरूप पत्ती-पत्नी के एक दूसरे से बिछड़ जाने और ग्यारह वर्ष के बाद रहस्यमय परिस्थितियों में पुनर्मिलन की मार्मिक कथा प्रस्तुत करना ही लेखक का उद्देश्य रहा है। कहानी नामक विधा का उद्भव हिंदी साहित्य में बीसवीं सदी में हुआ। हिंदी कहानी का स्त्रोत पंचतंत्र हितोपदेश व जातक कथा आदि में दूँढ़ने के प्रयास किए गए है। लेकिन इन्हें आख्यायिका, गल्प आख्यान व कथा तो माना जा सकता है, उस अर्थ में कहानी नहीं जिस अर्थ में आज कहानी लिखी जा रही है। गोपाल राय बीसवीं सदी के प्रथम दशक के कहानीकारों के संदर्भ में कहते हैं, "बीसवीं शताब्दी की प्रथम दशक में कहानियों के लेखन-प्रकाशन का सिलसिला आरम्भ हो गया। लक्ष्मी नारायण लाल और भवदेव पाण्डेय के अनुसार किशोरीलाल गोस्वामी, केशव प्रसाद सिंह और रामचंद्र शुक्ल के अतिरिक्त माधव प्रसाद मिश्र, माधवराव सप्रे, जगन्नाथ प्रसाद त्रिपाठी, भगवान् दास, गिरिजादत्त वाजपेय, सूर्यनारायण दीक्षित, बंग महिला, (राजेंद्रबाला घोष) गंगाप्रसाद अग्निहोत्री, नवाबराय, सत्यदेव, वृन्दावनलाल वर्मा आदि इस दशक के कहानीकार है।"[29] इनमें से माधवराव सप्रे कृत 'एक टोकरीभर मिट्टी',

भगवानदस कृत 'प्लेग की चुड़ैल', रामचंद्र शुक्ल कृत 'ग्यारह वर्ष का समय', गिरिजदत्त वाजपयी कृत 'पंडित और पंडितानी', उदयनारायण वाजपयी कृत 'जननी जभुनिश्य स्वर्गीय', बंग महिला कृत 'चंद्रदेव से मेरी बातें', 'कुम्भ में', 'छोटी बहु' और 'दुलाई वाली', वृन्दावनलाल वर्मा कृत 'रखी बन्द भाई' आदि मौलिक कहानी के रूप में उल्लेखनीय है। गोपाल राय शुक्ल जी की कहानी संबंधित बात को इस अंदाज़ में रखते हैं, "रामचंद्र शुक्ल ने भी किशोरीलाल गोस्वामी, भगवानदास, गिरिजादत्त वाजपेयी और बंग महिला का इस दशक के महतवपूर्ण कहानीकारों के रूप में उल्लेख किया है। पर उन्होंने माधवराव सप्रे और नवाबराय (प्रेमचंद) का उल्लेख इस दशक के कहानिकारों में नहीं किया है। संभव है उनका ध्यान 1901 में ही माधवराव सप्रे रचित 'एक टोकरी भर मिट्टी' नमाक कहानी पर न गया हो जो उन्ही के द्वारा प्रकाशित मासिक पत्र छत्तीसगढ़ मित्र में प्रकाशित हुई थी। इस प्रकार नवाबराय की कहानियों की ओर भी शुक्ल जी का ध्यान इसलिए नहीं गया क्योंकि उनकी भाषा और लिपि उर्दू थी। मेरी दृष्टी में इस ऐतिहासिक भूल को इशरा करने का समय अब गया है।"[30]

सन् 1900-1905 की कहानियों में माधवराव सप्रे की 'एक टोकरी भर मिट्टी' पाश्चात्य कहानियों से निकट दिखाई पड़ती है। पर कहानी उन्नीसवीं सदी में प्रकाशित हिंदी, उर्दू की समस्त गद्य कथाओं की प्रकृति भिन्न है। यह लग भाग 600 शब्दों की छोटी कहानी है। जिस में एक गरीब असहाय विधवा का स्वाभिमान रोशनी के रूप में समाज में फैला है। पृष्ठभूमि के रूप में जमींदार द्वारा उसकी झोपडी को हड़पने, स्त्री द्वारा जमींदार के पास जाकर अपनी जमीन से एक टोकरी भर मिट्टी भरने और उसे अपने सीर पर उठा देने के की कथा है। यह पृष्ठभूमि टिम-टिमते दीप के रूप में है। उसका स्वाभिमान या कथन जिसे सुनकर जमींदार निरुत्तर हो जाता है। यही कथन इस कहानी को कहानी बनता है। 'एक टोकरी भर मिट्टी' के विषय में गोपाल राय का

मानना है कि, “समकालीन सामंती शोषण का तल्ख़ चित्रण इस कहानी की दूसरी उल्लेखनीय विशेषता है। कहानी की संरचना कथन द्वारा वर्णन की ही है ,पर वह इतना बलौस सीधा और मारक है कि पाठक उसके प्रभाव से अभिभूत हुए बिना नहीं रहता इसकी भाषा संस्कृत या फारसी मिश्रित हिंदी से भिन्न ठेट देशी हिंदी है। इस प्रकार संवेदना के क्षण की अभिव्यक्ति की दृष्टी से ‘एक टोकरी भर मिट्टी’ को हिंदी की प्रथम कहानी के रूप में मान्यता दी जा सकती है।”[31] इस काल की कहानियों को आकार के आधार पर कथ्य की विशेषता के आधार पर ही कहानी के रूप में संज्ञा देने का औचित्य ठहर जाता है। गोपाल राय यह कहते हैं कि “इस दशक की कथा-रचनाओं के भीतर से कथ्य और संरचना दोंहों ही दृष्टियों से कहानी का स्वरूप पूर्णतः दिखाई देता है। संरचना की दृष्टी से केशव प्रसाद मिश्र की कहानियों की नवीनता का उल्लेख पहले किया जा चुका है। कथ्य की नवीनता की दृष्टी से माधव प्रसाद मिश्र की ‘सब मिट्टी हो गया’, ‘लड़की की बहादुरी’ और ‘विश्वास का फुल’, भगवानदास की ‘प्लेग की चुड़ैल’, गिरिजदत्त वाजपयी की ‘पंडित और पंडितानी’, बंग महिला की ‘कुम्भ में छोटी बहु’ और ‘दुलाईवाली आदि कहानियाँ उल्लेखनीय है।”[32]

इस काल की अनेक कहानियाँ अलग-अलग विषयों को लेकर समाज में परिवर्तन की दिशा लाने में उपयुक्त हुई है। उसी प्रकार बंग महिला ने भी तत्कालीन राजनीतिक और अर्थनीति को अपने रचनाओं के माध्यम से चित्रित किया है। “बंग महिला की पहली कहानी ‘चंद्रदेव से मेरी बाते’ भवदेव पाण्डेय के अनुसार हिंदी साहित्य की पहली कहानी थी जिसने अपने समय की राजनीतिक और अर्थनीति को केंद्रीय कथ्य बनाया।”[33] भवदेव पाण्डेय के शब्दों में “भारत की बदहाल आर्थिक दशा और देश में फैली बेरोजगारी के चित्रण के साथ-साथ समाज में नारियों की स्थिति जातिगत

पक्षधरता और हर क्षेत्र में वृद्ध पीढ़ी के अनुचित दबदबे का भी रेखांकन किया।"[34] इसके साथ वे 'चंद्रदेव से मेरी बाते' कहानी को हिंदी की पहली राजनीतिक कहानी भी मानते हैं। बंग महिला की दूसरी कहानी 'कुम्भ में छोटी बहु' है इसमें मुर्जापुर (उ.प्र.) के निकट के एक ग्रामीण मध्यवर्गीय परिवार की छोटी बहु के परिवार के सदस्यों के विरोध के बावजूद कुम्भ स्थान के लिए प्रयाग चले जाने की कथा है इसके साथ ही तत्कालीन मध्यवर्ग की सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, नैतिक, व रूढ़िग्रस्त वातावरण का चित्रण किया गया है। इस सन्दर्भ में गोपाल राय लिखते हैं कि, "पहली बार इस कहानी में गावँ की अनपढ़ स्त्रियों का संवाद भोजपुरी भाषा में प्रस्तुत किया गया है।"[35] इससे यह स्पष्ट होता है कि तत्कालीन स्त्रियों का शिक्षा व्यवस्था में योग नहीं था। बंग महिला की तीसरी कहानी 'दुलाई वाली' है। यह कहानी मध्यवर्ग के आत्मीय सम्बंधों पर चित्रित एक रोचक कहानी है। इस कहानी में हास्य-विनोद का प्रयोग करते हुए तत्कालीन मध्यवर्ग की आर्थिक स्थिति को मार्मिकता से प्रस्तुत किया गया है।

गोपाल राय के अनुसार बीसवीं सदी के आरम्भ में प्रथम दशक के कहानीकारों ने अंतर्द्वंद्व को दूर करने के लिए कहानियाँ लिखी है। "गिरिजादत्त वाजपेयी की कहानी 'पंडित और पंडितानी' में तत्कालीन समाज में प्रचलित अनमेल विवाह - प्रौढ़ पुरुष और युवती की कथा की विसंगतियों पर व्यंग्य किया गया है। इस कहानी में व्यंग्य की धार तो पैनी है ही वह स्त्री की नियति को भी संकलित करती है। नवम्बर 1909 में सरस्वती में प्रकाशित मधुमंगल मिश्र की कहानी 'भुत की कोठारी' है जो भुत-प्रेत के अंधविश्वास का खंड़न, नवजागरण की वैज्ञानिक चेतना की परिचायक है। तत्कालीन समाज में प्रचलित ओझा-सोखा, झाड़-फूंक, तंत्र-मंत्र और पूजा, अनुश्रण के पाखण्ड को चुनौती देनेवाली यह कथा अपनी प्रकृत्ति में कहानी के निकट पहुँच जाती है।"[36]

हिंदी में कहानी लेखन का उद्भव या जन्म बीसवीं सदी में हुआ। हिंदी कहानी का स्रोत पंचतंत्र हितोपदेश व जातक कथा आदि में ढूंठने के प्रयास किये गए है लेकिन ऐसी कथाओं को आख्यायिका, 'गल्प, आख्यान व कथा तो माना जा सकता पर उस अर्थ में कहानी नहीं जिस अर्थ में आज कहानी लिखी जा रही है। आधुनिक कहानी का प्रवर्तन भारतेंदु युग में हुआ हिंदी की प्रथम कहानी कौन सी है यह विवाद के रूप में हमारे सामने है। कुछ लोग इन्शा अल्ला खाँ की 'रानी केतकी की कहानी' को हिंदी की पहली कहानी मानते हैं। लेकिन इसमें कहानी का कोई तत्व उपलब्ध नहीं होता, इसके बाद किशोरीलाल गोस्वामी की 'इंदुमती', बंग महिला की 'दुलाई वाली', रामचंद्र शुक्ल की 'ग्यारह वर्ष का समय' प्रकाशित हुई। इन कहानीकारों ने विदेशी या बांगला साहित्य के प्रभाव में आकर हिंदी में कहानी लिखने का प्रयत्न किया। 'एक टोकरी भर मिट्टी' माधवराव सप्रे कृत कहानी को हिंदी की पहली कहानी माना जाता है। गोपाल राय ने हिंदी की प्रथम कहानी को लेकर अपना कोई मत नहीं दिया है उन्होंने माना है कि यह प्रश्न विवादास्पद है और अनावश्यक भी है। वे मानते हैं कि बीसवीं सदी के आरम्भ में कहानी नामक विधा की शुरुआत हुई और आगे जाकर कहानी का विकसित रूप सामने आया।

इस काल की कहानियाँ रोमानी, आदर्श और मनोरंजन प्रधान रही है। कई विद्वान इस काल की कहानी के समय को शैशव काल के नाम से जानते हैं जिसका कारण यह है कि प्रथम चरण में कहानी रोमानियत, आदर्श और मनोरंजन से जुडी रही। किन्तु यह शिक्षित वर्ग को प्रभावित नहीं कर पायी इनमें किसी प्रकार की प्रौढ़ता नहीं दिखाई देती है। परन्तु ऐसे माननेवाले यह भूल जाते हैं कि यह कहानी लेखन का प्रथम चरण है और इसके बाद अनेक कहानीकार सामने आये। किसी कार्य की शुरुआत उतनी

ही महत्वपूर्ण है जितना उसका आगे जाकर विस्तार होता है। उपर्युक्त विचारधारा को गोपाल राय ने अपने 'कहानी का इतिहास' में प्रस्तुत किया है।

बीसवीं सदी के आरम्भ की कहानियाँ गोपाल राय को महत्वपूर्ण ही नहीं बल्कि परंपरा का निर्वाह दर्शाने के लिए आवश्यक लगती है। गोपाल राय मानते हैं कि इस समय में कहानी का सही तरह से विकास नहीं हुआ और कहानी का विकसित रूप सामने नहीं आया। वह मानते हैं "इस प्रकार बीसवीं सदी का पहला दशक हिंदी कहानी का भी पहला दशक कहा जा सकता है। किसी विधा के आरंभिक दौर में 'कथ्य और शिल्प' विषयक जो अस्थिरता हो सकती है। वह इस दशक की कहानियों में भी देखने को मिलती है। कहानिकारों के सामने अंग्रेजी की 'छोटी कहानी' का आदर्श तो शायद था पर उसके अनुरूप न तो कथा, भाषा विकसित हुई थी न ही यथार्थ की संवेदना। देश-विदेशी शक्ति का उपनिवेश था और विचारों तथा भावनाओं की अभिव्यक्ति पर तमाम तरह की पावबंदियाँ लगी हुई थी।"[37] इसके अलावा और कई सारे कारण वह बताते हैं कि, "हिंदी में प्रबुद्ध पाठकों और लेखकों का भी अभाव ही था। आधुनिक ढंग से शिक्षित लोगों में शासन द्वारा औपनिवेशिक शासन के प्रति राजभक्ति पैदा करने की कोई कोशिश छोड़ी नहीं जाती थी। समाज का समृद्ध वर्ग सामंत, जमींदार और महाजन, व्यवसायी समुदाय और निवेशिक शासन का दाहिना हाथ बनकर अपने स्वर्थ की सिद्धि में लगा हुआ था। मध्यवर्ग, जो व्यवस्था के विरोध हो सकता था वह अभी अपने निर्माण के आरम्भिक दौर में ही था। फिर भी मध्यवर्ग से ही माधवराव सप्रे, मास्टर भगवानदास, गिरिजदत्त वाजपेयी, बंग महिला और सबसे बढ़कर नवाबराय जैसे लेखक वजूद में आ रहे थे और उनके साथ ही कहानी के लिए आवश्यक संवेदना भी अस्तित्व में आ रही थी। इसका प्रमाण दूसरे दशक की कहानियों में मिलने लगता है।"[38]

इसी वक्त के उर्दू-हिंदी कहानी को अपने समय की आत्मा से जोड़नेवाले सर्वाधिक उल्लेखनीय कहानीकार नवाबराय थे। प्रारम्भ में 'प्रेमचंद' नवाबराय नाम से कहानी लिखते थे। नवाबराय ने जिस समय कहानी लेखन का आरम्भ किया उसके पहले राष्ट्रीय आंदोलन की शुरुआत हो चुकी थी। ऐसे समय में न ड़रते हुए नवाबराय (प्रेमचंद) ने अपना लेखन जारी रखा। गोपाल राय उनकी की हिम्मत को दाद देते हुए लिखते हैं, "उग्र राष्ट्रवाद और हिंदी कहानी का एक साथ जन्म कदाचित एक संयोग ही है। नवाबराय को छोड़कर किसी अन्य हिंदी-उर्दू कहानीकार पर इसका प्रभाव नहीं दिखाई पड़ता। 1908 के पूर्व हिंदी कहानीकार सामाजिक, नैतिक, समस्यायों को तो अपनी कहानियों का विषय बनाते हैं पर औपनिवेशिक शासन के विरुद्ध इशारा करने का भी उनमें साहस या इच्छा नहीं दिखाई पड़ती। अपवादस्वरूप उदयनारायण वाजपेयी की कहानी 'जननी जन्म भूमिश्च स्वर्ग दीप गरिचसी' में मातृभूमि की महिमा का उल्लेख किया गया है। पर वह संकेत रूप में ही है। ठोस कथा रूप में नहीं। उर्दू कहानीकारों में भी सामाजिक, नैतिक, समस्याओं के प्रति किसी प्रकार की जागरूकता की झलक नहीं मिलती। पहली बार नवाबराय ने ही सरकारी नौकरी करते हुए भी औपनिवेशक शासन की इच्छा और आज्ञा के विरोध कुछ कहने की हिम्मत जुटाई थी।"[39]

प्रेमचंद बीसवीं सदी के दूसरे दशक के प्रसिद्ध कहानीकार है। 1915 तक प्रेमचंद की अनेक उर्दू कहानियां सामने आई थी, पर शुद्ध हिंदी के पाठकों के लिए उनका परिचय नहीं हुआ और उनकी उर्दू कहानी का हिंदी में रूपांतरण भी नहीं हुआ। इस संदर्भ में गोपाल राय लिखते हैं कि, "यहाँ इस बात का उल्लेख कर देना जरुरी है कि प्रेमचंद की 'हिंदी और उर्दू' में वैसे अंतर नहीं था कि उन्हें समझने में उस समय के शिक्षित उत्तर भारतीय समुदाय के लिए बहुत दिक्कत हो। यह भी उल्लेखनीय है कि

दिसम्बर 1915 के बाद भी जब, ‘सरस्वती’ में उनकी पहली कहानी ‘सौत’ हिंदी भाषा और देवनागरी लिपि में प्रकशित हुई थी।”[40]

प्रेमचंद उस प्रभुद्रय मध्यवर्गीय चेतना के प्रतीक थे जो अपने प्रतिकूल परिस्थितियों का विरोध, विद्रोह करती है। धनपतराय तत्कालीन समय में सरकार की सेवा में थे जिसने धनपतराय की भावना की अभिव्यक्ति पर बंधन लगा रखा था। फिर भी उन्होंने अपनी अभिव्यक्ति को समाज में प्रताड़ित करने के लिए बड़ी संघर्षशण कार्यप्रणाली अपनायी। गोपाल राय के मतानुसार “अपनी आत्मा की आवाज को अभिव्यक्त करने के लिए उन्हें ‘नवाबराय’ नामाक कल्पित लेखक का चोला ग्रहण करना पड़ा था। और जब इस नवाबराय की वास्तविकता का पर्दाफाश हो गया तो उन्हें प्रेमचंद नाम की शरण लेनी पड़ी थी। ये प्रेमचंद भी पकडे जा सकते थे, पर तरह-तरह की सावधानियाँ बरतते हुए वे धनपतराय के रूप में सरकारी मुलाजिम भी बने रहे और प्रेमचंद के रूप में उनकी जड़ भी खोदते रहे। गाँधीजी के भारतीय राजनीति में प्रवेश के काफी पहले प्रेमचंद ने देश की राजनीतिक, सामाजिक, परिस्थितियों को समझ लिया था। और अपनी कहानी के माध्यम से अपने विचारों को और संवेदनाओं को वाणी देने का अभियान आरम्भ कर दिया था।”[41]

हिंदी कहानी को प्रेमचन्द और प्रसाद जैसे दो रचनात्मक प्रतिभाएँ मिली जिन्होनें हिंदी कहानी में युगांतकारी परिवर्तन किया। एक प्रतिभा जो प्रेमचंद की है वह समाज के व्यापक संदर्भों से जोड़ रही थी और दूसरी प्रतिभा प्रसाद की व्यक्ति की प्रतिष्ठा को स्थापित कर रही थी। प्रेमचन्द की कहानी ही नहीं बल्कि अन्य विचारों में समाज सुधार की आदर्शमुखी दृष्टी, विचारधारा प्रकट होती है। उन्होंने अपनी कहानियों में विधवा समस्या, अनमेल विवाह, जातिभेद, किसानों की समस्याएं, स्थानीयता संघर्ष आदि विषयों को सम्मिलित किया है।

गोपाल राय का हिंदी आलोचना के क्षेत्र में अत्त्यंत महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इसी प्रकार उन्होंने इतिहास ग्रंथों में उपन्यास, कहानी की भी आलोचना करके हिंदी पाठकों को एक नयी दृष्टी दी है। सहित्येतिहास लेखन के रूप में 2002 में प्रकाशित इनका 'हिंदी उपन्यास का इतिहास' अधिक महत्वपूर्ण है। हिंदी कहानी का इतिहास भाग एक 2008 ई. प्रकाशित हुआ इसके बाद दूसरा भाग सन् 1951-1975 तक की कहानियों को ध्यान में रखकर प्रकाशित किया है।

कहानी की आलोचना करते हुए उन्होंने अनेक कहानीकारों का विवेचन किया है। पूनम सिन्हा के अनुसार, "समीक्ष्य पुस्तक में नए पुराने लगभग 125 कहानीकारों का विवेचन तत्कालीन परिस्थितियों के बीच रखकर किया है। जिन कहानीकारों की रचनाएँ उपलब्ध नहीं हो पाई है, उनका भी नामोल्लेख अवश्य हुआ हैं।"[42] गोपाल राय इस किताब के शुरुआत में ही सन् 1951-1975 तक की कहानियों के बारे में लिखते हैं "यदि 1951-1975 की कहानी को हम मशालों के जुलुस के रूप में देखे तो 1951 का दशक निश्चय ही एक उत्साहपूर्ण शुरुआत और 1975 का वर्ष इनके अचानक ही बुझ जाने के वर्ष के रूप में दिखाई देता है।"[43]

इस पुस्तक में 1951-1975 तक लिखी गई कहानियों का विश्लेषण अलग-अलग शीर्षको में विभाजित कर सही मायने में कहानी की आलोचना की है। 'विरासत की नजर' (1951-1960) इस शीर्षक में उन्होंने महत्वपूर्ण बात कही है कि, "साहित्यिक विधाओं में कहानी कदाचित अपने समय के प्रति सबसे अधिक संवेदनशील होती है। अत: उसकी स्थिति के सही आकलन के लिए उसके समय पर विहंगम दृष्टी ड़ाल लेना उपयोगी होगा।"[44] साहित्यिक आलोचना में किसी भी कृति का अध्ययन हम उनके कलात्मक गुण-दोष के आधार पर करते हैं किन्तु जब हम सहित्योतिहास की बात करते हैं तो उस रचना को हम उसके समय और परिवेश की सापेक्षिकता में रखकर आलोचना

करते हैं। गोपाल राय भी यही दृष्टी अपनाकर कहानी के समय और परिवेश के साथ मिलकर आलोचना की है। इस संदर्भ में पूनम सिन्हा लिखते हैं "अत: इस पुस्तक में स्वतंत्रता प्राप्ति के आसन अतीत एवं समकालीन राजनीति, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं शैक्षिक स्थितियों का प्रमाणिक आकलन प्रस्तुत है।"[45]

'हिंदी कहानी का इतिहास' भाग दो में 1951-1975 तक की कहानियों का विश्लेषण कुछ अध्यायों में किया गया है। उनमें 'विरासत पर एक नजर' (1951-1960), नया उन्मेष; परंपरा का विस्तार' (1961-1975), 'नई दिशा का अन्वेषण', नई पीढ़ी', 'कहानी आंदोलन; सवांग भाषाओं में कहानी' और अनुक्रमाणिका एवं संदर्भ ग्रन्थ भी प्रत्येक अध्याय के अंत में दिए गए है।

पूनम सिन्हा लिखते हैं "नया उन्मेषशीर्षक अध्याय में डॉ. राय ने विभिन्न कहानीकारों की चर्चा तत्कालीन परिस्थितियों, वैयक्तिक संदर्भों एवं उनकी कहानियों के कथ्य और शिल्पगत वैशिष्ट्य के विश्लेषण के साथ ही है। डॉ. राय के द्वारा नगर एवं ग्रामीण कथा के विश्लेषण में तद्-विषयक परिस्थितियों एवं प्रवृतियों के साथ वैषम्य भी उभरता है।"[46]

1960 से 1975 के बीच में लिखी गई कहानियों के संदर्भ में गोपाल राय लिखते हैं, "इस प्रकार 1960-1975 का समय आर्थिक, दृष्टी से गहरी निराशा और राजनीतिक, सामाजिक, अराजकता और अस्थिरता का काल था, जिसका प्रभाव साहित्य पर भी पड़ा था।"[47] इस काल के कहानीकारों ने सक्रिय भूमिका निभाई है। इन कहानीकारों में मुख्यत: उपेन्द्रनाथ अश्क, जैनेन्द्र, विष्णु प्रभाकर, यशपाल, अमृतलाल नागर इत्यादि कहानीकारों ने औपनिवेशक शासन से लेकर आजाद भारत के नहेत युग को देखा था।

'परम्परा का विस्तार शीर्षक अध्याय' में राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक परिस्थितियों के विश्लेषण के बिना तो कहानी की विकासधारा को समझना संभव ही नहीं था। इस अवधी में कृषि के स्थान पर औद्योगिक विकास को प्राथमिकता मिलती है। परन्तु ऐसे भी रचनाकार है जिन्होनें किसानों, मजदूरों को कहानी का विषय बनाया है। "इस दशक में ग्रामीण जीवन को अपनी कहानियों का विषय बनाने वाले कहानीकारों की संख्या 10 प्रतिशत से अधिक नहीं है। शिवप्रसाद सिंह, रामदरश मिश्र, मार्कण्डेय, शेखर जोशी, शैलेश मटियानी, मधुकर गंगाधर आदि को छोड़कर अपवाद के रूप में ही कहानीकारों ने ग्रामीण किसानों, कृषि मजदूरों और गाँव कस्बे तथा अन्य हाशिए पर स्थित आंचलिक समाज को अपनी कहानियों का विषय बनाया है।"[48] हिंदी कहानी के विकास को विशेष स्थान पर प्रतिष्ठित करने का श्रेय भीष्म सहानी, हरिशंकर परसाई, कृष्ण सोबती, रांगेय राघव, मुक्तिबोध, मोहन राकेश, राजेंद्र यादव, कमलेश्वर और अन्य कहानीकारों को जाता है।

राजेंद्र यादव ने समाज में व्याप्त हर पहलुओं को कहानी के द्वारा अभिव्यक्त करने की कोशिश की है। अंधश्रद्धा, उच-नीच, असामनता, स्त्री-पुरुष भेद खासकर लड़का-लड़की में भेद को चित्रित किया है। राजेन्द्र यादव के समय के कहानिकरों ने समाज, परिवार, यौन संबंधों, प्रेमसंबंधों आदि को कथ्य के लिए चुना है। गोपाल राय लिखते हैं, "जहाँ लक्ष्मी कैद है' की सत्रह कहानियों में से सात किसी न किसी रूप में स्त्री विमर्श से संबंधित है। एक कमजोर लड़की की कहानी का कथ्य जैनेन्द्र की कहानियों से तुलनीय है। इस कहानी की लड़की पत्नी बन चुकी है। पत्नी धर्म का निर्वाह भी बखूबी कर रही है। पर अपने प्रेमी को भुला नहीं पाई है और उसके प्रति उसका प्रेम अब भी बरकरार है। जातिगत भिन्नता और दूसरे सामाजिक कारणों से प्रेमी-प्रेमिका विवाह

बंधन में नहीं बंध सके थे। उसका पति भी यह बात जानता है और संदेह करने के बावजूद सुधा के साथ स्थिति को स्वीकार करके जीवन जीता है।"[49] इस पर राजेंद्र यादव का मानना है कि, "इस कहानी में आज की लड़की के जीवन की ट्रेजडी व्यक्त होती है। वह खुद किस प्रकार अपने को धोखा दिये चली जा रही है। वह प्रेमिका और पत्नी दोनों की भूमिकाएँ एक साथ ईमानदारी से निभाने ने का ढोंग करती है। जबकि वास्तव में न तो सच्ची प्रेयसी है और न निष्ठामयी पत्नी थी।"[50] कमलेश्वर की कहानी में पढ़े-लिखे युवत्तिओं की प्रेम और विवाह संबंधी सोच में एक स्पष्ट परिवर्तन देखने को मिलता है। 'तीन दिन पहले की रात' (1956) के द्वारा गोपाल राय कहते हैं, "प्रेम और पति के वरण की विड़म्बना की कहानी है। इस कहानी में लेखक अनुभव करता है कि यह नारी स्वतंत्रता हाथी के दांत है, जिन्हें हर घटना खूबसूरती के लिए लगाये हुए है।"[51] अश्लीलता को बड़े सहज शब्दों में गोपाल राय ने स्पष्ट किया है जैसे नग्नता यदि विद्रोह के साथ जुड़ जाए तो वह अश्लील नहीं रह जाती। अश्लीलता नग्नता में नहीं बल्कि उसके सत्य जुडी भावना में होती है। 'नयी दिशा का अन्वेषण' अध्याय में "छठे दसक के कुछ कहानीकारों ने सातवें दशक में पहेले से चली आ रही कहानी परंपरा से नाता जोड़ कर अपने कथ्य और शिल्प में नयापन लाने का प्रयास किया है। कुछ कहानीकार ऐसे भी है जिन्होंने पुर्ववर्ती परंपरा में अपने विकास की संभावना न देख कर नयी शुरुआत की पहल की"[52] पूनम सिन्हा लिखते है, "गोपाल राय कहानियों के सन्दर्भ में अन्य आलोचकों की मंतव्यों को बीच-बीच में प्रकट करते हुए अपने निष्कर्ष तक टिप्पणी देते हैं।"[53] यह बात सही है क्योंकि गोपाल राय अपनी बात को ठोस तरीके से बताने के लिए अन्य आलोचकों की बातें रखते थे। उदाहरण के रूप में देख सकते हैं "अपनी समीक्षा के अंत में मधुरेश लिखते हैं कि इन कहानियों का मूल स्वर आवेग के अस्वीकार का है। इसलिए सबसे और दूसरी संस्कारगत वर्णताओं को वे बड़ी निर्मामता से तोड़ती

दिखायी देती है। चूँकि वे अपने ढंग से जीने के आग्रह को रेखांकित करती है, कुल मिलाकर वे सब की खोज और प्रतीक्षा की कहानियाँ ही अर्थित है।"[54]

'नयी दिशा की अन्वेषण' इस अवधी के प्रथम वर्ष में ही कहानी ने 'उषा प्रियंवदा' को आकाश छूने वाली लोकप्रियता प्रदान की थी वह कहानी थी 'वापसी'। इस कहानी के विषय में गोपाल राय टिप्पणी लिखते हैं, "यह कहानी बाहरी स्तर पर उषा के निकट संबंधी की पारिवारिक स्थितियों पर आधारित थी पर जैसे उन्होंने स्वीकार किया है कहानी लिखते समय मेरे मन में एक प्राणी का अकेलापन और परिवार में अपनी उचित जगह न पाने की पीड़ा ही थी, पर उसमें काल्पना और स्मृति का ऐसा मिश्रण था कि कोई उन्हें पहचान न सका।"[55]

गोपाल राय अपनी आलोचनाओं में कथ्य एवं शिल्प को लेकर किसी-किसी कहानीकार को पीछाटाते भी खूब है। कृष्ण बलदेव वैद की कहानियों पर उनकी टिपण्णी हैं, "वैद के पात्र खाते कम और 'पीते' ज्यादा हैं। उनका कोई भी पात्र ऐसा नहीं जो शराब या सिगरेट न पीता हो। वे कोई शारीरिक काम नहीं करते, अधिक से अधिक भीख मांगते हैं (कुछ पात्र), उनका काम रोना, हँसना (कभी-कभी), उदास होना, खिजना, चिचिड़ाना, उबना, सेक्सी हरकते करना, औरतों को चूमना, आलिंगन करना, किसी को मार ड़ालने की इच्छा करना पर मारना नहीं, सपने देखना, दिवास्वप्न में डूबना, मानसिक रति करना, चलते हुए भी सोचते रहना, पीते हुए भी सोचते रहना, जेहनी बदकारी का लुत्फ़ उठाना....आदि हैं। पात्रो को अपनी माँ और बहन के अलावा (गनीमत हैं) सभी औरते पसंद आती हैं। किसी भी पात्र को अपनी बीबी पंसंद नहीं आती। वे उनसे दूर ही दूर रहते हैं"।[56] पूनम सिन्हा ने गोपाल राय के यशपाल व जैनेन्द्र के विषय में व्यक्त विचारों के बारे में लिखा है, "जब कहानीकार की कथा संवेदना कमजोर होती है तो वह कथन की कारीगरी से उसकी क्षतिपूर्ति का प्रयास करता है"।[57]

गोपाल राय 'हिंदी कहानी का इतिहास' भाग दो में 'नई पीढ़ी एवं कहानी आंदोलन' शीर्षक में हिंदी कहानी का, मुख्यत: साठोत्तर कहानियों का विकास एक तरह विस्फोट के रूप में हुआ ऐसा मानते हैं। इस संदर्भ में उनका कहना है कि, "हिंदी कहानी के इतिहास में सन् 1961 का दशक विस्फोटक के रूप सामने आता है। सन् 1951 के आसपास हिंदी कहानी का एक नया दौर बहुत चुपके से आरम्भ हो गया था। उस समय उभरनेवाले कहानीकारों को 1955 के आसपास ही इस बात का बोध हो गया था कि, उन्होंने हिंदी कहानी के क्षेत्र में कुछ असाधारण कर दिखाया है।"[58] अपनी इस कामयाबी को नई कहानी का नाम देने के लिए उनकों दो वर्ष लगे। 1960 के आसपास से नयी कहानी की अवधारणा ने प्रकर आंदोलन का रूप धारण कर लिया था। जिसमें कहानीकारों के साथ समकालीन आलोचक भी हिस्सा ले रहें थे। गोपाल राय लिखते हैं, "जिन्होंने सन् 60 के कुछ पहले ही कहानी लिखना शुरू कर दिया था पर कहानीकार के रूप में अपनी पहचान 1961 के बाद निर्मित की थी। इन कहानीकारों में श्रीकान्त वर्मा (ज.1931), अवध नारायण, मुदगल (ज.1936), प्रयाग शुक्ल (ज.1940), प्रबोध कुमार आदि के नाम लिए जा सकते हैं। श्रीकान्त वर्मा, उषा प्रियंवदा, मन्नू भण्डारी, कमलेश्वर आदि के समकालीन थे पर कहानी लेखन के क्षेत्र में उन्होंने 1959 के आसपास प्रवेश किया।"[59]

"राजेंद्र यादव के अनुसार जिसे हम नयी कहानी कहते हैं, वह नये मनुष्य के परिवर्तित परिवेश और अनुभूतियों का परिणाम तो है ही, इस परिणाम की अभिव्यक्ति ने शिल्प शास्त्र की दृष्टी से भी उसे पुराणी कहानी से अलग कर दिया है इसके उदाहरण के रूप में कमलेश्वर की 'राजा निरबंसीयां', स्वयं अपनी कहानी 'एक कमजोर लड़की की कहानी', कृष्ण बलदेव वैद की 'मेरा दुश्मन' या 'उसका बचपन' आदि का उदाहरण

देते हैं।"[60] कहानी आंदोलन में पत्र-पत्रिकाओं की भूमिका उल्लेखनीय है। विशेषकर 'कहानी' नई कहानी पत्रिकाओं की हिंदी आंदोलन को प्रस्तुत करने में भी रोचक भूमिका रही है। पूनम सिन्हा ने अपने आलेख में लिखा है, "भैरव प्रसाद गुप्त ने अपने संपादन काल में इन दोनों पत्रिकाओं के माध्यम से कहानी संबंधी महत्वपूर्ण मुद्दे उठाएँ। 1960-61 के कहानिकरों ने अपनी कहानियों के लिए 'साठोत्तरी कहानी', 'सचेतन कहानी' अकहानी; समकालीन कहानी आदि संज्ञायों का प्रयोग किया।"[61] इतना ही नहीं बल्कि अन्य कुछ कहानीकारों ने नई कहानी के नामपर कथ्य को प्रमुख मानकर शिल्पगत विशेषताओं को अधिक महत्व प्रदान किया है।

सवाँग भाषाओं में 'कहानी' शीर्षक अध्याय में हिंदी की सवाँग भाषाओं की कहानियों के इतिहास पर विचार किया गया है। गोपाल राय का कहना है कि, "हिंदी एक भाषा परिवार है, जिसमें खड़ीबोली पर आधारित मानक हिंदी के साथ उर्दू, ब्रजभाषा, अवधी, बुन्देलखंडी, राजस्थानी, भोजपुरी, मैथिली आदि भाषाएँ भी 'सवाँग' भाषाओं के रूप में शामिल है।"[62] कुछ विद्वान् है जो पंजाबी, राजस्थानी, भोजपुरी, मैथिली, अवधी, ब्रज, हरियाणवी आदि को अलग मनाते हैं, खासकर 'और चाहे जो हो पर हिंदी नहीं है' विचार शिवदान सिंह चौहान के हैं। वैसे तो हिंदी-उर्दू का विवाद काफी पुराना हैं। यह विवाद सर सैयद अहमद खां के नेतृत्व में उन्नीसवीं शताब्दी में प्रारंभ हुआ था। आज भी कई लोग है जो प्रांत, भाषा, क्षेत्र के नामपर लोगों में दुरावा निर्माण करते हैं। लेकिन गोपाल राय 'हिंदी कहानी के इतिहास' लेखन में सभी भाषाओं के इतिहास को लेकर चलने की बात करते हैं। "मेरी मान्यता है कि इन भाषाओं के स्वतन्त्र अस्तित्व को चुनौती दिए बिना ही इनके साहित्य को हिंदी साहित्य

के इतिहास में शामिल किया जाना चाहिए। इसके फायदे होंगें। यदि एक तरफ इनके आपसी अलगाव का भाव दूर होगा तो दूसरी तरफ इनके साहित्य के तुलनात्मक अध्ययन से देश की भावनात्मक, वैचारिक और सांस्कृतिक चेतना का पता लगेगा।”[63]

उदाहरण के तौर पर गोपाल राय 'हिंदी कहानी के इतिहास' में हिंदी व भोजपुरी भाषा में लिखी गई कहानियों से प्रस्तुत उस समय की सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, या विकास की परिस्थितियाँ आदि का चित्रण करते हैं। “जहाँ 1951 के दशक में गाँव का यथार्थ चित्रित हिंदी कहानी में नगर के यथार्थ से कन्धे से कन्धा मिलाकर चल रहा था, वही, 1961 के दशक में वह हिंदी कहानी से लगभग गायब हो गया या बिल्कुल हाशिये पर चला गया। इसके समानान्तर भोजपुरी कहानी में 1961-75 की अवधी में भी ग्राम-जीवन के ही चित्रण का बोलबाला है। इस पर विवेकी राय ने थोड़ी निराशा भी व्यक्त की है। पर इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है। 1961 के दशक में हिंदी कहानी गाँवों को छोड़कर नगरों में आ गयी, जबकि भोजपुरी कहानी आज भी गाँव का दामन नहीं छोड़ पायी हैं।”[64] इसका कराण यह है कि भोजपुरी क्षेत्र में कोई शहरी, नगरीय वातावरण कम है।

'हिंदी कहानी का इतिहास' भाग तीन में गोपाल राय ने कई अध्यायों में कहानीकारों का अध्ययन किया हैं। इस पुस्तक में 1976 से लेकर 2000 ई. तक की कहानियाँ शामिल हैं। इसमें भी प्रथम काल की सीमा रेखा सन् 1976 से 1980 तक है। इसका कारण गोपाल राय बताते हैं कि “इसका एक कारण यह भी है कि 1976-1980 तक दोनों आधुनिक भारतीय इतिहास की न भुला देने वाली तिथियाँ है। 25 जून 1975 को आपातकाल की घोषणा हुई थी। 1980 में राजनीतिक स्थिति में बड़ा परिवर्तन घटित हो चुका था। इस बीच 1977 का आम चुनाव हुआ, जिसके फलस्वरूप

कांग्रेस की सरकार सत्ताहिन हुई और नव गठित जनता सरकार सत्तासीन हुई थी। पर जनता दल की सरकार भी अधिक दिनों तक कायम नहीं रह सकी और राजनीतिक उथल-पुथल के बाद पुन: इंदिरा सत्ता में आ गयी थी।"[65] दूसरे काल की समय सीमा 1981-1990 तक थी और तीसरे काल की समय सीमा 1990-2000 ई. तक निर्धारित की है। इस प्रकार गोपाल राय ने राजनीतिक स्थिति को ध्यान में रखकर कहानी को उनकी प्रवृत्तियों व कालक्रम के अनुसार विभाजित किया है।

गोपाल राय ने इसमें कहानी के इतिहास की आलोचना पहले की दो पुस्तकों से अलग की हैं। जो उससे भी अधिक सरल व स्पष्टता के अधिक निकट है। उनके शब्दों में, "पर इसके बाद मैं शुक्ल जी से अलग हो गया हूँ, जो कथा और समय को देखते हुए जरुरी था। मैं सामान्य परिचय के स्थान पर परिवेश और उसके बाद रचनाओं का काल निर्धारण, परिचय और विश्लेषण रख रहा हूँ। इस इतिहास में केवल तीन ही परिच्छेद है, वे भी क्रमश: पाँच और दस वर्ष के। इस सीमित अवधी के हिंदी कहानी के इतिहास को मैंने यथासंभव अपेक्षित विस्तार के साथ प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया।"[66]

'हिंदी कहानी : सन् 1976-1980' इस प्रथम अध्याय में, सन् 1976-80 के बीच की कहानियों को उपशीर्षक में विभाजित कर हिंदी कहानी को उस समय की प्रवृत्तियाँ व परिस्थितियों के साथ जोड़कर विश्लेषण किया गया है। उपशीर्षक है, 'मध्यवर्ग और इस अवधी की हिंदी कहानी', 'गाँव और हिंदी कहानी', 'स्त्री और इस अवधी की हिंदी कहानी', 'दलित वर्ग और इस काल की हिंदी कहानी', 'समकालीन राजनीति और हिंदी कहानी', 'विदेशी परिवेश और हिंदी कहानी', 'आपातकाल और हिंदी कहानी' और कहानीकार और उनकी कहानियों का कालक्रमानुसार विवेचन आदि। जैसे उन्होंने उपशीर्षक दिए है उसी प्रकार शीर्षक के अनुसार समान्तर कहानियों

की प्रवृत्तियों में दिखाया गया है। उस उपशीर्षकों के कुछ उदाहरण देना यहाँ आवश्यक हैं।

'मध्यवर्ग और इस अवधी की हिंदी कहानी' शीर्षक अध्याय में मध्यवर्ग की कहानी की आलोचना की गयी है। इस सन्दर्भ में गोपाल राय लिखते हैं "यद्यपि 1971 के दशक तक इस वर्ग में कोई वृद्धि नहीं हुई, पर उसकी प्रकृति में पर्याप्त फर्क आ गया। जनसंख्या की दृष्टी से मध्यवर्ग का आकार बढ़ गया और वह अधिकतर नगरवासी हो गया। उद्योग-धन्धों में वृद्धि और सफ़ेदपोश नौकरियों के विस्तृत के कारण उनकी पहचान निम्नवर्ग से बिल्कुल भिन्न हो गयी। उसमें की साक्षरता और उच्च शिक्षा में ग्रामीण समाज और निम्नवर्ग की तुलना में अप्रत्यक्षीत वृद्धि हो गयी। उसका रहन-सहन और वेशभूषा भी निम्नवर्ग और ग्रामीण समाज से अलग हो गयी है। उच्च शिक्षा में वृद्धि और पाश्चिमी जीवन-पद्धति के विस्तार के फलस्वरूप उसकी सोच और मानसिकता में भी बदलाव आ गया।"[67] इस प्रकार की कहानी के कहानीकार हैं - अमरकांत, मन्नू भण्डारी, ज्ञानरंजन, स्वयं प्रकाश, अशोक अग्रवाल, रामधारी सिंह 'दिनकर' आदि। गोपाल राय के अनुसार "मध्यवर्ग अमरकांत की कहानियों के केंद्र में रहा हैं। 'सप्ताहान्त', 'पक्षधरता', 'घर', 'दुर्घटना', 'तूफ़ान', 'एक बाढ़ कथा' आदि कहानियाँ इसका प्रमाण पेश करती हैं। 'सप्ताहान्त' दफ्तर के सहायक की जिन्दगी का चित्रण करनेवाली एक तीखे प्रभाव वाली कहानी है। 'पक्षधरता' भी मध्यवर्गीय मानसिकता का अंकन करनेवाली अच्छी कहानी है। घर मध्यवर्गीय परिवारों में आर्थिक तंगी के बीच उत्तरदायित्वशुन्य पिता, पति के शोषण और समता की प्रतीक माँ और पढ़े लिखे बेरोजगार युवक के प्रकाशक द्वारा शोषण तथा युवक के अपने परिवेश के प्रति विद्रोह और समझोते की उल्लेखनीय कहानी मानी जा सकती है।"[68]

'गाँव और हिंदी कहानी' के अन्तर्गत आजादी के तीस वर्ष बाद भी गाँवों की आर्थिक स्थिति में परिवर्तन नहीं होने के कारण इसका चित्रण वह अपने कहानियों में करते दिखते हैं। "ग्राम जीवन की प्रमुख समस्या दहेज़ प्रथा कही जा सकती है, जिसे विवेकी राय की 'बेटी की बिक्री' कहानी बड़े तरीके के साथ प्रस्तुत करती है।"[69] इस तरह की कहानियाँ में मधुकर सिंह भी ग्राम जीवन का प्रमाणिकता के साथ चित्रण करते हैं, "मधुकर सिंह की इस काल की कहानियों में भूमिपतियों और सहुकारों की गरीब किसानों की जमीन हथिया लेने के तिकड़मों, गरीबों के शोषण के लिए धार्मिक पाखंडों के उपयोग आदि का विश्वसनीय चित्रण किया गया है।"[70] अब्दुल बिस्मिलाह, पुनीसिंह, बररोही, पंकज बिट, मिथिलेश्वर आदि ने ग्रामिण जीवन की कहानियाँ लिखी।

'स्त्री और इस अवधी की हिंदी कहानी' शीर्षक में भारतीय स्त्री के जीवन पर आधारित कहानियाँ लिखी गयी। भारतीय संविधान व डॉ. आंबेडकर के कारण समाज में स्त्रियों को उच्च दर्जा प्राप्त हैं। गोपाल राय उस समय की स्त्री को प्रकट करते हुए लिखते हैं, "इस समाज की स्त्री आर्थिक दृष्टी से स्वावलम्बी नहीं थी और पूरी तरह से पति और परिवार पर निर्भर थी।"[71] इसी विषय को लेकर वे मिथिलेश्वर की कहानियों का विश्लेषण करते हुए कहते है कि, "मिथिलेश्वर ने अपनी कहानियों में नारी की नियति का चित्रण सहानुभूति के साथ किया है।"[72] भारत में वेश्या-जीवन की त्रादसी एक यथार्थ समस्या है। "शैलेश मटियानी की कहानी 'भागवन्ती' और 'वृत्ति' वेश्या जीवन पर आधारित कहानियाँ है।"[73] इस अवधी की कहानियाँ स्त्री की सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, शैक्षणिक स्थिति की पहचान कराती।

'दलित वर्ग और इस काल की हिंदी कहानी' उपशीर्षक में गोपाल राय ने तत्कालीन समाज में दलितों की स्थिति पर भी विचार किया है। जैसे की इस अवधी में देखा जाए तो "दलित चेतना का उभार इस काल की एक उल्लेखनीय प्रवृत्ति है। यों तो दलितों का सभी जातियों के भूमिपतियों द्वारा शोषण और दमन सदियों पुरानी परिघटना हैं पर ज्योतिबा फुले, बाबा साहेब अम्बेड़कर आदि के नेतृत्व में हुए आन्दोलनों ने दलितों को संघर्ष की भूमिका में लाकर खड़ा किया। इस काल तक आते आते यद्यपि दलित अभी शोषित-पीड़ित अवस्था में ही थे। पर अब उन्होंने सवर्णों और सामन्तों का विरोध करना आरम्भ कर दिया था।"[74] अगस्त 1977 में बेलछी गाँव (बिहार) की घटना में दलितों के हक्क मांगने से उनके घर जला दिए। गोपाल राय ने लिखा है "कुर्मी सामन्तों ने 11 भूमिहीन दलितों को उचित मजदूरी की माँग करने के कारण, उनकी झोपड़ियों समेत जला दिया था।"[75] इस घटना पर आधारित मन्नू भण्डारी ने 'अ-लगाव' शीर्षक से कहानी लिखी। मणि मधुकर की 'त्वमेव माता' में संकलित अधिकतर कहानियां हाशिए पर स्थित समाज का चित्रण करती हैं। जैसे 'फांसी', 'जख्म के चारों ओर', 'त्वमवेम' आदि। इस काल में अन्य कहानीकार भी अपनी कहानियों के माध्यम से पीड़ित या शोषित वर्ग को अपना विषय बनाकर उस समाज का परिचय देते रहे। जैसे पुन्नीसिंह, संजीव, चित्रा मुद्गल, उदय प्रकाश, मिथेलेश्वर, काशीनाथ सिंह और मन्नू भण्डारी अन्य लेखकों ने दलित आदिवासी समाज का चित्रण अपनी कहानियों में किया हैं। पर कोई दलित और आदिवासी लेखक इस अवधी के कहानी लेखन में शामिल नहीं थे।

'समकालीन राजनीति और हिंदी कहानी' शीर्षक में भ्रष्ट राजनीति की कहानियों के माध्यम से पोल खोली है। 1975 के पूर्व भी हिंदी कहानी इस विषय के प्रति संवेदनशील रही हैं। मिथिलेश्वर की कहानी 'पहली हँसी' में नौकरी पाने के लिए रिश्वत

देने की मज़बूरी का उल्लेख किया हैं। विदेशी परिवेश और हिंदी कहानी व आपातकाल और हिंदी कहानी विषयों को लेकर भी गोपाल राय कहानियों का विश्लेषण करते हैं। इस काल की कहानियों में बच्चे विदेश चले जाने के बाद माँ-बाप की समस्याओं का चित्रण हुआ है। "विष्णु प्रभाकर की 'अँधेरे आंगन वाला मकान' बेटों-बेटियों के विदेश में बस जाने और एक बेटी के अविवाहित स्थिति में ही अलग रहने से अकेले पड़ गये वृद्ध दम्पति की संवेदना की बेजोड़ कहानी हैं।"[76]

आपातकाल की स्थिति में लोगों को शुरुआत में राहत मिली परन्तु सरकारी तंत्र भ्रष्ट से भ्रष्टतर होता चला गया। तब जनता द्वारा इसका विरोध शुरू हुआ साथ-साथ हिंदी कहानीकारों ने इस स्थिति का चित्रण अपनी कहानियों में करना प्रारंभ किया। उसमें काशीनाथ सिंह कृत 'सुधरि घोषाल', पंकज बिष्ट कृत 'खोखल और कवपद' महत्वपूर्ण हैं। इस अध्याय का अंतिम उपशीर्षक 'कहानीकार और उनकी कहानियों का काल क्रमानुसार विवेचन' है। इसमें इस काल के लेखकों की कहानियों का विस्तार से परिचय देते हुए उसका काल क्रम भी दिया गया है।

हिंदी कहानी 1981 से 1990 के दूसरे अध्याय में भी उसी उपशीर्षक के माध्यम से आठवें दशक से नवें दशक की मध्यवर्ग की स्थिति कैसे भिन्न हैं या समान है इसको कहानी के उदाहरण देते हुए स्पष्ट रूप से समझाया गया है। इस विषय के बारे में गोपाल राय लिखते हैं "नवें दशक में मध्यवर्ग की स्थिति आठवें दशक से भिन्न नहीं रही। यद्यपि जनसंख्या में वृद्धि के कारण मध्यवर्ग का विस्तार हुआ पर प्रतिशित लगभग समान ही 10 के आसपास रहा। यह फर्क दिखायी दिया कि निम्नवर्ग के कुछ लोग निम्नमध्यवर्ग की कोटि में और मध्यवर्ग के कुछ लोग उच्चमध्यवर्ग की श्रेणी में पहुँच गये।"[77] इस अवधी में गोपाल राय ने मध्यवर्ग और इस काल की कहानियों का विश्लेषण किया है।

इस दशक में 'स्त्री और इस काल की हिंदी कहानी' शीर्षक अध्याय में गोपाल राय के अनुसार "1971 के दशक में, सारे बदलावों के बावजूद स्त्री की आर्थिक, सामाजिक स्थिति में कोई उत्साह जनक परिवर्तन नहीं हुआ।"[78] लेकिन इस काल में बालिका, भ्रूणहत्या, लिंग भेद, नारी स्वास्थ, स्त्री साक्षरता जैसे विषयों पर नारी आंदोलन सक्रिय हुए। हिंदी कहानी के माध्यम से भी "कृष्णा सोबती, मृदूला गर्ग, चित्रा मृदूल, नासिरा शर्मा, चंद्रकांता, कुसुम आँचल, कृष्णा अग्निहोत्री, सूर्यबाला, राजिशेट, मालती जोशी, कमल कुमार, क्षमा गोस्वामी आदि लगभग 15 कहानी लेखिकाओं नें स्त्री की नियति को अपनी कहानी का विषय बनाया है।"[79]

'गाँव और इस काल की हिंदी कहानी' उपशीर्षक में गोपाल राय ने ग्रामीण जीवन को समझने के लिए उनकी समस्याएँ जानने के लिए उनके द्वारा साहित्य लिखना आवश्यक माना। "दरअसल हुआ यह था कि 1951 के दशक में बड़ी तेजी से नगर जीवन से संबंधित कहानियाँ लिखनेवालों का रेला आया था और उन्होंने ग्राम जीवन के कहानीकारों को हाशिए पर ड़ालने का प्रयास किया था।"[80] इस काल के ग्रामीण जीवन पर कहानियाँ लिखने वाले कहानीकारों में विवेकी राय प्रमुख कहानीकार माने जाते हैं। 'परलू', 'तारीखें', 'अतिथि', 'आप लोग कौन है?', 'खेल', 'नौकर' आदि कहानियाँ ग्रामीण क्षेत्र की कहानियाँ हैं।

1981-1990 के बीच दलित समाज हिंदी कहानियों में लिखने लगा। अमरकांत की 'कुहासा', विवेकी राय की 'पालिस', स्वयं प्रकाश की 'इनका जमावा', काशीनाथ की 'वे तीन घर', दीवाकर की 'नया घर चढ़े', चित्रा मुद्रल की 'लेन' आदि कहानियों में दलित समाज के विविध पात्रों को गढ़ा है। चित्रा मुद्रल की कहानी का उदाहरण प्रस्तुत

करते हुए गोपाल राय लिखते हैं "चित्रा मुद्गल की 'खूख' बम्बई की झुगी-झोपड़ियों में रहनेवाले नितांत गरीब लोगों की कहानी है, जो भूख की पीड़ा झेलने के लिए अपने दूधपीते शिशुओं को, भिखारियों को किराएँ पर दिया करते हैं। चित्रा ने इस पीड़ा और विवशता को बहुत प्रभावी रूप में कहानी का विषय बनाया है।"[81] इस तरह स्त्रियों की समस्या को लेकर अन्य लेखक जैसे अरुण प्रकाश, संजीव, विजय आदि इस समय के कहानीकार थे। इसी प्रकार इस समय में आदिवासियों को और उनकी समस्याओं को भी कहानी का विषय बनाया गया।

'समकालीन राजनीति और हिंदी कहानी' उपशीर्षक में 1981-1990 के मध्य अज्ञात भारत की राजनीति पर भी प्रकाश ड़ाला गया है। इस समय राजनीति में भ्रष्टाचार का भयानक रूप सामने आया था। "इस कथ्य को उजागर करनेवाली पहली मानसिक कहानी विष्णू प्रभाकर की 'धरती अब भी घूम रही है' थी। बाद के दशकों में राजनीतिक, भ्रष्टाचार बढ़ता ही गया पर उसे उजागर करने वाली कहानियाँ कम ही लिखी गयी। विष्णु प्रभाकर वे 'धरती अब भी धूम रही है' की परम्परा को आगे बढ़ाते हुए इस दशक में लिखित 'कितने जेबकतरे' में महानगरीय समाज में व्यात्क मूल्यहिनता, भ्रष्टाचार और लूटखसोट का चित्रण किया गया है।"[82] वस्तुत: आज की सम्पूर्ण व्यवस्था इसी की शिकार है।

इस अवधी में विदेशी परिवेश और हिंदी कहानी तथा आतंकवाद और हिंदी कहानी यह विषय भी अधिक महत्वपूर्ण थे। निर्मल वर्मा, रामदरश मिश्र, मृदुल गर्ग, चंद्रकान्ता, नासिरा शर्मा, राजी सेठ, नरेन्द्र नागदेव आदि कहानीकारों ने विदेश यात्रा करते हुए विविध विषयों को अनुभव कर के उसका विश्लेषण कहानियों द्वारा किया है। 'शेषयात्रा' कहानी में रामदरश मिश्र ने "पात्र माता-पिता की उपेक्षा कर, विदेश चले

जाने और वही, बस जाने पर माता-पिता की पीड़ा का चित्रण किया गया है। बूढ़े माँ-बाप के अकेले पन बढ़ जाने के साथ-साथ अवकाश प्राप्ति के सात वर्ष बाद पत्नी का निधन हो जाने पर पति की पीड़ा और भी द्रावक हो जाती है। पुत्रों द्वारा अपने दैनिक सुख की खोज में माता-पिता को छोड़कर विदेश में बस जाना आज का एक सच हैं।"[83] जिसे वे बड़े ही द्रवक तरीके से दर्शाते है। इसी प्रकार इस अवधी की कहानियों में उस समय की स्थिति और आतंकवादी की समस्याओं को लेकर अधिक चित्रण हुआ है। इन सारी कहानियों को ओर ध्यान देते हुए आलोचक गोपाल राय ने और भी अधिक स्पष्ट रूप से इस इतिहास पुस्तक में इनका विश्लेषण किया है। इस समय आतंकवाद के साथ-साथ सम्प्रदायवाद को भी हिंदी कहानियों ने प्रस्तुत किया है। यह वह समय था जब राजनीतिक स्थिति में हिन्दू-मुस्लिम के बीच सम्प्रदायवाद का विष भरा हुआ था। इस समय में गोपाल राय के अनुसार भीष्म सहानी सम्प्रदायवाद के विरोधी कहानीकार रहें है।

'हिंदी कहानी का इतिहास' भाग तीन में गोपाल राय ने नयी-पुरानी पीढ़ी का टकराव और हिंदी कहानी शीर्षक में लिखा है "भारत में इस टकराव को सीमा के अन्तर्गत रखने के लिए धर्म और निति का सहारा लिया जाता रहा है, जिसके चलते बुढ़ापे में वरिष्ठ नागरिक निस्सहायता, अकेलेपन, अवसाद और विक्षिनता से बचते रहें है। पर आधुनिक युग में पश्चिमी प्रभाव ने इस सन्तुलन को प्रभावित करने की भूमिका निभाई हैं। अब नयी पीढ़ी वरिष्ठ नागरिकों के प्रति, वह प्रेम, श्रद्धा और विश्वास नहीं रखती जो वे काल तक सहज रूप से प्राप्त करते रहे थे। इस सत्य का चित्रण विविध काल के कहानीकारों ने किया है।"[84] शेखर जोशी कृत 'विदूवा', रामदरश मिश्र कृत 'शेषयात्रा', विवेकी राय कृत 'बुढ़िया', मृदूल गर्ग कृत 'रेशम' आदि नयी-पुरानी पीढ़ी को दर्शानेवाली प्रमुख कहानियाँ हैं। उदाहरण के तौर पर गोपाल राय नें 'पराये लोग'

कहानी को लिया हैं “पराये लोग में एक बूढी स्त्री के जिनके तीन बेटे शहरों में उच्च पदों पर अवस्थित है, बेटों के साथ शहर में न रहकर गाँव में ही रहने के विकल्प का चित्रण किया गया है। वह स्थिति गाँव के लिए कोई अजूबा नहीं हैं। वस्तुत: गाँव में जन्मी, पली बूढी पीढ़ी के वहाँ की जिंदगी इतनी लगावपूर्ण होती है कि नगर में रहने में उनका दम घुटने लगता है।”[85] आज भी इसी विषय को लेकर नई-पुरानी पीढ़ियों में टकराव देखने को मिलता है।

‘आर्थिक उदारवाद और हिंदी कहानी’ शीर्षक द्वारा गोपाल राय ने यह बताने की कोशिश की है कि “1980 के आपातकालीन गनादेश के बावजूद इंदिरा गाँधी के नेतृत्व में कांग्रेस (आई) देश की सामाजिक, आर्थिक, स्थिति में कोई उल्लेखनिय बदलाव लाने में सफल नहीं हुई। छठी पंचवर्षीय योजना 1 अप्रैल 1980 को आरम्भ की गयी और 1985 तक चली पर वह गनाकांक्षाओं की अपेक्षा पर खरी नहीं उतरी। यहाँ तक की अनुसूचित जातियाँ और अनुसूचित जन-जाति पर शाक्तिशाली वर्ग द्वारा दिए जानेवाले अत्याचारों में भी कोई कमी नहीं हुई। ‘संजय-तत्त्व’ ने उन्हें और भी अप्रभावित बना दिया। वस्तुत: संस्थानिक विकास पर श्रीमती गाँधी ने कुछ भी ध्यान नहीं दिया। पार्टी और राजनीति में बड़े पैमाने पर काला धन और अपराधी तत्वों का प्रवेश भी उन्हीं के समय हुआ।”[86] अंत में इस अवधी की सभी कहानियों के कालक्रम का अध्ययन और विशेषण गोपाल राय ने किया हैं।

तीसरे अध्याय में भी 1991 से 2000 ई. तक की मध्यवर्ग स्त्री, गाँव, संप्रदायिकता और समकालीन राजनीति, आर्थिक, उदारीकरण में तथा दलित वर्ग में कैसी-कैसी भिन्नताएँ जन्म ले चुकी है इसका चित्रण किया गया है। विशेष बात यह है कि इस अवधी में दलित वर्ग के स्वयं ओमप्रकाश वाल्मीकि जैसे लेखक पैदा हुए और

हिंदी कहानियों के विकास में योगदान दिया। दलित आलोचकों का मानना था कि दलित जीवन को सवर्ण लेखक कैसे समझ सकता जो की उसने उसे कभी भोगा ही नहीं। और यह बात गोपाल राय ने उचित मानी है, "दलित आलोचकों की यह शिकायत उचित ही मानी जायेगी कि लेखक ने गैर दलित की आँखों से दलित समाज का अंकन किया हैं।"[87] गोपाल राय ने ओमप्रकाश वाल्मीकि को ऐसा ही कहानीकार माना है, "ओमप्रकाश वाल्मीकि हिंदी के प्रथम ऐसे कहानीकार हैं, जिन्होंने दलित समाज के जीवन के हर पहलुओं को गहरी संवेदना, अनुभव की ईमानदारी और सहानुभूति के साथ प्रस्तुत किया हैं। वाल्मीकि की सारी कहानियाँ दलित समाज के चित्रण से संबंधित हैं।"[88] 'बैलकी खाल', 'सलाम', 'पच्चीसों का डेढ़ सों', 'सपना' आदि कहानियाँ दलित समाज के जीवन को प्रस्तुत करती है और इनकी दलित कहानियाँ कथित लेखकों से भिन्न इसलिए हैं क्योंकि वाल्मीकि के पात्र विद्रोह और परिवर्तन की बात करते हैं। वे दलितों पर हुए अन्याय और अत्याचार को नष्ट करना चाहते हैं। 'सलाम' कहानी को विश्लेषित करते हुए गोपाल राय कहते हैं, "सलाम में गाँवों में सामाजिक विषमता का गहरा एहसास कराया गया है। आज भी हिन्दू समाज में दलित समाज के प्रति सवर्ण जातियों का व्यवहार घोर घृणा और विरोध का है। जिसे यह कहानी बड़े प्रभावी ढंग से प्रस्तुत करती है। कहानी दलित समाज के प्रति सवर्णों की घृणा की भावना को ही नहीं, दलित आदन विद्रोह को भी गहराई के साथ प्रस्तुत करती हैं।"[89]

इस तरह इस अवधी में दलितों की कहानी के साथ-साथ आदिवासी व सवर्ण समाज से संबंध कहानियाँ भी लिखी गई है। जैसे 'जंगल की रानी', 'ग्रहण', 'जिनावर' और अन्य कहानियाँ आदिवासी और सवर्ण समाज से जुडी हुई है। जिनमें पुरुष समाज द्वारा स्त्री का यौन शोषण किया गया हैं। इस पर गोपाल राय ने बताया है "दूसरी

कहानी 'ग्रहण' में एक स्त्री बाँझ घोषित कर दी गयी, जबकि उसका पति ही सन्तान पैदा करने में असमर्थ है। परिवार द्वारा बहिष्कार और पति द्वारा त्याग दिये जाने का चित्रण किया गया है। 'जिनावर' में भी पुरुष द्वारा स्त्री के शोषण का बहुत मार्मिक अंकन किया गया है। वाल्मीकि नारी को भी दलित मानते हैं और उनकी यह सोच गलत नहीं है।"[९०] स्त्री को धर्मशास्त्रों में सबसे निचला दर्जा दिया है जिसकारण ओमप्रकाश वाल्मीकि की तरह ही गोपाल राय भी स्त्री को दलित ही मानते हैं।

कहा जा सकता है कि गोपाल राय की कहानी संबंधी आलोचना एक स्पष्ट दर्पण ही है। उन्होंने इस कहानी के इतिहास के कालक्रम को ध्यान में रखकर कर उसी काल में संबंधित परिस्थियों के अनुसार कहानियों की आलोचना की है। उस काल की स्त्री विषयक कहानियाँ मध्यवर्ग विषयक कहानियाँ, विदेशी परिवेश से संबंधित कहानियाँ, राजनीति से संबंधित कहानियाँ, आर्थिक परिस्थिति की कहानियाँ, दलित वर्ग से संबंधित और नयी-पुरानी पीढ़ियों के टकराव की कहानियाँ आदि विषय को अलग-अलग प्रवृत्तियों को उस अवधी में कालक्रम से विश्लेषण करने का महत्वपूर्ण कार्य गोपाल राय ने किया है जो उनकी प्रमुख विशेषता है। गोपाल राय ने इस कहानी का इतिहास में कहानी व कहानी संग्रह के प्रकाशन वर्ष को भी ध्यान में रखकर उनका बड़ी बारिकी से विश्लेषण किया हैं।

गोपाल राय के इस 'कहानी का इतिहास' में स्पष्टता और भाषा के रूप में मानकीकरण का प्रयास उनके पूर्ण आलोचनात्मक साहित्य के केंद्र में देखा जा सकता है, इस से इतिहास ग्रन्थ भी अछूता नहीं रहता। गोपाल राय के अन्य तथ्यों की तरह भाषा के संबंध में भी कुछ मौलिक विचार रहे हैं। भाषा संबंधी अपने विचारों में वे इतने आग्रही थे कि कई बार उनका यह आग्रह दूसरों को दुराग्रह जान पड़ता था। गोपाल राय नें अपने इतिहास में जिस तरह समष्ठीमूलक दृष्टिकोण को अपनाया था वह एक

इतिहासकार के रूप में उन्हें संतुष्ट नहीं होने देता। इसलिए वे कहते हैं कि 'इस पुस्तक में जिस अवधी के कहानी साहित्य का इतिहास प्रस्तुत किया गया है, उस अवधी में अहिंदी भाषियों और प्रवासी भारतीयों द्वारा लिखित कहानी साहित्य का कोई सुनियोजित विवरण उपलब्ध नहीं है। इस कारण उस विशाल और कदाचित् मूल्यवान साहित्य को इस इतिहास में स्थान देना सम्भव नहीं हो सका है।' उनके कथन इतिहासकार के रूप में उनके दृष्टिकोण को तो नहीं पर उनकी निष्ठा को अवश्य प्रदर्शित करता है। यह निष्ठा जो आज बहुत कम होती जा रही है, उसके सहारे गोपाल राय जिस तरह के इतिहास की परिकल्पना करते थे, वह अपने चरित्र में केवल समावेशी ही नहीं हैं अपितु विराट और संपूर्णतावादी है। परन्तु संपूर्णता तो कभी पायी नहीं जा सकती और उपर्युक्त उद्धरण इतिहास की सीमा से ज्यादा दार्शनिक अर्थों में व्यक्ति की क्षमताओं की ओर इशारा करते हैं। इसी से ज्ञात होता है इतिहासकार के रूप में गोपाल राय में सिद्ध और सार्थकता है।

गोपाल राय ने कहानियों के कथ्य, शिल्प और भाषा पक्ष का भी विश्लेषण अपने ढंग किया है और अपनी मौलिक स्थापनाएं सामने रखी हैं। मूल्यांकन के लिए उन्हें वही, भाषा उचित लगी है जो कहानी की यथार्थवादी प्रकृति से मेल खाती हो। उन्हें जयशंकर प्रसाद की कहानियों की संस्कृतनिष्ट आलंकारिक भाषा पसंद नहीं हैं, क्योंकि वह "कहानी की यथार्थवादी प्रकृति से मेल नहीं खाती।"[91] इस लिए उन्हें प्रसाद जी की अपेक्षा प्रेमचंद, चंद्रधर शर्मा गुलेरी और जैनेन्द्र जैसे कहानीकारों की भाषा ही पसंद हैं। वे किसी कहानी या कहानीकार पर चलती हुई टिप्पणी नहीं करते, बल्कि उन्होंने उनकी कहानी और कहानियों का बाकायदा विश्लेषण करके उदाहरण के लिए अपनी बात कहते हैं। इसका उदाहरण पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र की कहानी 'दोजख की आग' का विश्लेषण करते हुए प्रमाण स्वरूप देख सकते हैं "बेचन शर्मा उग्र की 'दोजख की आग' में कहनी की प्रस्तुति या प्रविधि का ऐसा नयापन हैं, जो इसे कहानी की जानी-पहचानी

शक्ल से अलग कर देता है। इसे कहानी में शिल्प के एक प्रयोग की दृष्टी से देखा जा सकता है। कहानी एक मृत व्यक्ति के आत्मकथ्य के रूप में प्रस्तुत की गई है। यहा फंतासी शिल्प का विवरण कहानी में ताजगी ला देने में समर्थ हुआ हैं। इस विवरण के बीच में ही एक छायाचित्र नाटक भी उपस्थित हो जाता है। उसके बाद उसकी बीवी के साथ घटित होने वाला दृश्य सामने आता है। इस प्रकार यह कहानी उग्र की ही नहीं हिंदी की समकालीन कहानी में भी विशिष्ट बन जाती है।"[92] उन्होंने जिस प्रकार 'हिंदी कहानी का इतिहास' लिखा है उसके लिए प्रत्येक कहानीकार की कहानियां स्वयं पढ़ी हैं और अपनी विवेचनाएँ और अपनी स्थापनाएं मौलिक रूप में प्रस्तुत की हैं। इतना ही नहीं उन्होंने खड़ीबोली हिंदी के अतिरिक्त उर्दू, मैथिली, भोजपुरी और राजस्थानी हिंदी के कहानीकारों की कहानियों को अपने 'हिंदी कहानी के इतिहास' में विवेचित एवं विश्लेषित किया है।

3. 3 उपन्यासों से संबंधित आलोचना :

उपन्यास मूलतः एक आधुनिक यूरोपीय विधा है। यह साहित्य की प्रमुख विधाओं में से एक आधुनिक विधा है। यह यथार्थ पर आधारित मानव जीवन को उसकी समग्रता में प्रस्तुत करता है। सम्पूर्ण मानव जीवन को प्रसारित करना ही उपन्यास को कहानी विधा से अलग करता है। उपन्यास में कथा आवश्यक ही होती है परन्तु मुख्य कथा के साथ-साथ कई घटनाएँ उपन्यास में सम्मिलित होती है। कहानी विधा में एक ही घटना शुरुआत से अंत तक चलती है परन्तु उपन्यास में एक मुख्य कथा होती है और इसके इर्द-गिर्द दूसरी अनेक घटनाएँ घटित होती है। यह ऊपरी तौर पर हम कह सकते हैं लेकिन उपन्यास में अनेक शिल्पगत, शैलीगत और भाषागत विशेषताएँ होती है उसे जानने से पहले उपन्यास शब्द की निर्मिती व विकास यात्रा पर ध्यान देना आवश्यक है। वैसे तो उपन्यास को अनेक विद्वानों ने परिभाषित करने की कोशिश की है। उपन्यास को भारत की प्रांतीय भाषाओं में अलग-अलग नाम (शब्द) से जानते हैं।

इसका अर्थ भी अलग-अलग निकलता है "जैसे दक्षिण की भाषाओं (तेलुगु आदि) में यह शब्द उस अर्थ में प्रयुक्त होता जिस अर्थ में हिंदी के 'व्याख्यान' 'वक्तृता' आदि शब्द प्रचिलित है।"[93] किस भाषा में उपन्यास के लिए कौन-सा पद प्रयोग हुआ है और कब हुआ है इस के विकास एवं विस्तार पर गोपाल राय ने बड़े अच्छे ढंग से बताने की कोशिश की। लेकिन उससे पहले हमें उपन्यास का अर्थ एवं परिभाषाएं जान लेना आवश्यक है।

जहाँ तक उपन्यास आलोचना की बात है "बालकृष्ण भट्ट से लेकर आचार्य रामचंद्र शुक्ल तक प्राय: सभी आलोचकों ने उपन्यास पर भी लिखा था। भले ही अनुपात की दृष्टी से बहुत कम हो या फिर उपन्यास की आलोचना के संदर्भ में उसका वैसा ऐतिहासिक मूल्य न हो जैसे मराठी में विश्वनाथ काशीनाथ राजवाड़े (1863-1926) के उपन्यास शीर्षक से लिखित एक लम्बे निबंध में है। जिसमें यूरोपीय उपन्यास के संदर्भ में से 'मान्टिक' और यथार्थवादी उपन्यासों की 'मिम्मास' की गंभीर चर्चा की है।"[94] इसी तरह का लेखन कार्य भी गोपाल राय ने प्रस्तुत किया है।

गोपाल राय ने उपन्यासों की आलोचना कर अनेक उपन्यासों को हिंदी आलोचना में महत्वपूर्ण स्थान दिलाया है। मैंनेजर पाण्डेय का कहना है कि "गोपाल राय के 'हिंदी उपन्यास का इतिहास' में समग्र इतिहास लेखन की चिंता है। असहमति के कारण किसी का बहिष्कार नहीं है। अगर असहमति है तो उसका उल्लेख जरुर है। इसमें ऐसे अनेक उपन्यासकारों और उनके उपन्यासों का विवेचन है जो हिंदी उपन्यास पाठकों के लिए अपरिचित और अज्ञान है। गोपाल राय ने हिंदी उपन्यास की सभी प्रवृत्तियों, धाराओं और दृष्टियों के उपन्यासों का समावेश अपने इतिहास में किया है। और उनका समुचित विवेचन और मूल्यांकन भी किया।"[95] गोपाल राय के विवेचन से किसी की असहमति हो सकती है। पर ध्यान रहे किसी भी आलोचक या इतिहासकार

की अपनी समझ दृष्टी और विचारधारा होती है जिसके कारण अर्थों की सहमती-असहमति की संभावना स्वाभाविक है। गोपाल राय के बारे में मैंनेजर पाण्डेय का विचार विशेष इस प्रकार है "गोपाल राय पिछली सदी के साठ के दशक से हिंदी उपन्यास पर सोचते और लिखते रहे हैं। उनके हिंदी उपन्यास से संबंधित अनुसन्धान और आलोचनात्मक लेखन में विविधता है। और व्यापकता भी।"[96]

गोपाल राय का कहना है कि..."अत: उपन्यास के अंकुरण और पल्लवन के लिए जरुरी बुनियादी संरचना के रूप में गद्य का विकास और मुद्रण यंत्र का आविष्कार आवश्यक था। यूरोप में तेरहवीं शताब्दी में मुद्रण यंत्र का आविष्कार हुआ जिससे गद्य के विकास में अभूतपूर्व तेजी आयी। समाजवाद के स्थान पर पूंजीवाद के उदय का भी समय लगभग यही है। पूंजीवाद के साथ मध्यवर्ग का भी विकास हुआ जिससे अपनी विशालता और बौद्धिक जागरूकता के कारण विशाल पाठक वर्ग का भी रूप ले लिया। चौदहवीं-पंद्रहवीं शताब्दी में यूरोप में मध्यवर्गीय पाठक वर्ग पैदा हो गया था। जिससे उपन्यास के उदय के लिए बुनियादी संरचना के निर्माण में योग दिया। फलस्वरूप सत्रहवीं शताब्दी के पूर्व ही यूरोप में 'उपन्यास' अस्तित्व में आ गया।"[97] इसी का परिणाम स्वरूप गोपाल राय की सदृश्य मौलिक आलोचना से आज की हिंदी आलोचना इतनी विकसित व बिल्कुल अलग है। वे हिंदी कथा साहित्य पर एक लम्बे समय तक विचार करते रहे और हिंदी आलोचना के विकास को भी आगे ले जाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उन्होंने हिंदी साहित्य की कहानी और उपन्यास विधा को लेकर इतना अच्छा काम कर दिखाया है। इससे पहले हमने कहानी आलोचना के संदर्भ में बात की है अब यहाँ उपन्यास के विषय से संबंधित गोपाल राय की आलोचना दृष्टी देखना संगत है। वैसे उन्होंने उपन्यासों को लेकर 'साहित्याब्द कोश' रचा और 'उपन्यास कोश' भी तैयार किया। इतना ही नहीं बल्कि 'उपन्यास की संरचना', 'हिंदी उपन्यास का इतिहास' और उपन्यासों से संबंधित स्वतंत्र आलोचनात्मक पुस्तकें लिखकर हिंदी कथा

आलोचना में उल्लेखनीय योगदान दिया। ऐसी उनकी कार्यशीलता पर हरदयाल लिखते हैं, "उनकी कर्मठता का सबसे महत्वपूर्ण रूप उनके शोध कार्य उनके आलोचना कर्म उनके समीक्षा पत्रिका के प्रकाशन और एक प्रकाशन संस्था 'ग्रन्थ निकेतन' की स्थापना के रूप में हमारे सामने आता है। उनकों 1957 में शोध प्रबंध लिखने के लिए विषय मिला 'उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में हिंदी उपन्यास के उद्भव और विकास के परस्पर संबंध का अध्ययन विषय लीक से हटा हुआ और अत्यंत दुष्वार था। चाहते तो वे इस विषय पर उल्टा-सीधा सुलभ सामग्री पर आधारित शोध प्रबंध लिखकर उपाधी प्राप्त कर सकते थे किन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया। उन्होंने अपने शोध कार्य की प्रमाणिक सामग्री एकत्र करने के लिए बड़े पापड़ बेले और अनेक पुस्तकालयों की धूल छानी।"[98] इस कथन से गोपाल राय की प्रमाणिकता सिद्ध होती हैं। अत: गोपाल राय के उपन्यास संबंधित आलोचना को विश्लेषण करने से पहले 'उपन्यास' शब्द व उपन्यास विधा के बारे में जान लेना आवश्यक है। इसलिए उसकी परिभाषाएँ देखना अनिवार्य है।

उपन्यास का अर्थ एवं परिभाषाएँ :

उपन्यास विधा साहित्य की प्रमुख विधाओं में से एक है। जैसे कहा गया है कि यह विधा आधुनिक काल की प्रमुख विधा मानी जाती है। इसका उदय यूरोपीयन मध्यवर्ग की परिस्थितियों से हुआ है। भारत में इसका उदय व विकास उन्नीसवीं सदी में हुआ है। खैर यहाँ हम उपन्यास शब्द पर विचार करेंगे, "सर मोनियर ने अपने संस्कृत-अंग्रेजी शब्दकोश में उपन्यास के कुछ अर्थ दिए है। उल्लेख (mention), अभिकथन (statement), सहमति (suggession), उद्धरण (quotation), संदर्भ (reference)।"[99]

अर्नेस्ट ए. बेकार के अनुसार - "गद्यबद्ध कथानक के माध्यम द्वारा जीवन तथा समाज की व्याख्या का सर्वोत्तम साधन बताया है"[100]

ओंकारनाथ के अनुसार “उपन्यास का अर्थ है - अध्यायों या प्रकरणों में लिखी हुई ऐसी कथित और बड़ी आख्यायिका जिसमें अनेक पात्र और विस्तृत तथा सुसंबंध घटनाएँ हो।”[101]

प्रेमचंद के अनुसार “मैं उपन्यास को मानव चरित्र का चित्र मात्र मानता हूँ। मानव चरित्र पर प्रकाश ड़ालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्त्व है।”[102]

न्यू इंग्लिश डिक्शनरी के अनुसार “उपन्यास एक काल्पनिक गद्य कथा अथवा इतिर्वृत्त है जो पर्याप्त दीर्ध होता है और जिसके कथानक में उन चरित्रों और कार्य व्यापारों का चित्रण होता है जो वास्तविक जीवन के चरित्रों और कार्यव्यापारों को निरूपित करने का प्रयास करते हैं।”[103]

जार्ज लुकाच ने उपन्यास के ऐतिहासिक पक्ष को सामने रखते हुए ऐतिहासिक उपन्यासों को व्याख्यायित करते हुए लिखा है “ऐतिहासिक उपन्यास का उदय उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में नेपोलिएन के पतन के साथ हुआ (स्कांट का वैवली 1814 में प्रकाशित हुआ) ऐतिहासिक थीम के उपन्यास हमें सत्रहवीं तथा अठारहवीं शताब्दी में भी मिलते हैं यदि कोई चाहे तो क्लासिकल इतिहास या मिथं को ऐतिहासिक उपन्यास के पूर्वज मान सकता है और पीछे जाए तो भारत तथा चीन में और पहले से इसे खोजा जा सकता है। लेकिन इस सबसे ऐतिहासिक उपन्यास को समझना मुश्किल है। उनमें सत्रहवीं सदी के तथाकथित ऐतिहासिक उपन्यास (शुडेरी कालप्रानेड़ इत्यादि) को उनकी थीम तथा परिधानों के आधार पर ही ऐतिहासिक उपन्यास कहा जा सकता है।”[104]

साहित्य की आधुनिक विधाओं में उपन्यास एक ऐसी विधा है जिसमें जीवन से अपने जुड़ाव के कारण बहुत शीध्र लोकप्रियता प्राप्त कर ली। इसके द्वारा मनुष्य और

समाज से जुडी हुई विभिन्न घटनाओं को इस रूप में प्रस्तुत किया जाने लगा कि जिससे जीवन के विविध पक्ष एक साथ जीवन्त हो उठे। डॉ. भगीरथ मिश्र ने माना है कि "युग की गतिशील पुष्ठभूमि पर सहज शैली में स्वाभाविक जीवन की एक पूर्ण व्यापक झाँकी प्रस्तुत करने वाला गद्य-काव्य उपन्यास कहलाता है। नाटक, महाकाव्य और उपन्यास जीवन एवं चिंताओं से युक्त जीवन को सम्पूर्ण रूप में व्यक्त करते हैं। परन्तु इन तीनों में सुखद और प्राकृतिक रूप उपन्यास का ही है। इसमें लेखक अत्यंत स्वच्छंद होकर अपने ह्लदय पटल पर पड़े हुए जीवन के जीते-जागते चित्रों को प्रस्तुत करता है।"[105] किसी भी साहित्यांग को नियम-निष्ठ रूप में परिभाषित कर देना कठिन काम है। और उपन्यास को परिभाषित करना और भी कठिन है। कारण यह विधा सर्वाधिक रूपान्तरणीय रूप धारण करती है। अतएव जिस किसी ने भी उपन्यास की व्याख्या देने की हिम्मत जुटाई वह हारा है। हिंदी भाषा में ही देखे तो उपन्यास के अनेक प्रकार है और उसके विकासोतिहास के विभिन्न युगों में उपन्यास की रचनशीलता में बदलाव आते गए। उसी प्रकार उपन्यासकारों द्वारा दी गई परिभाषाओं में बदलाव आते गए। वैसे उपन्यासकारों द्वारा दी गई परिभाषाओं के स्वरूप में भी अंतर आता रहा है जो युगानुरूप उपन्यास की परिवर्तनशीलता का परिचयक है। इसी प्रकार गोपाल राय ने भी इन सारी बदलती हुई परिस्थितियों को ध्यान में रखकर अपने आलोचना कर्म को आगे बढ़ाया है।

उपन्यास साहित्य की महत्वपूर्ण विधाओं में से एक है। इस विधा को महत्वपूर्ण बनाने का श्रेय उपन्यासकार व उपन्यास संबंधित लिखित आलोचना का होता है। साथ ही पाठक वर्ग भी उतना ही महत्वपूर्व हैं, जितना की उपन्यास लेखक। वैसे हिंदी साहित्य में उपन्यास की एक लम्बी परंपरा चली आ रही हैं। गोपाल राय ने 'हिंदी उपन्यास का इतिहास' पुस्तक में 'देवरानी जेठानी की कहानी' को हिंदी का प्रथम उपन्यास स्वीकारते हुए 1870 ई. से लेकर 2000 ई. तक की समयावधि में लिखित उपन्यास के ऐतिहासिक विकास यात्रा को समझाने का प्रयास किया है। वह मानते हैं कि "इतिहास में घटनाओं और तिथियों का महत्व निर्विवाद है। साहित्य के इतिहास की

घटनाएँ पुस्तकें होती हैं जिनकी रचना और प्रकाशन की तिथियाँ उसके विकास को समझाने की कुंजी होती है।"[106]

इतिहास लेखन में पुस्तकों की प्रकाशन समय की प्रामाणिकता के साथ-साथ यह भी आवश्यक है कि सम्बंधित रचना की धारा की सही पहचान की जाएं, इसलिए गोपाल राय इतिहास लेखन के कार्य को कठिन मानते हुए लिखते हैं कि, "इतिहास की किताब में सबसे मुश्किल काम उसे कालखंडों में बाँटना और उनका नामकरण करना होता है।"[107] 'हिंदी उपन्यास का इतिहास' में गोपाल राय ने प्रत्येक दशक में लिखित उपन्यास का आरम्भ व उनके कालक्रम को सामने रखकर सभी उपन्यास व उपन्यासकार की समस्त रचनाओं का विवेचन कालक्रम में किया गया हैं। उदाहरण के लिए "1947 में अमृतलाल नागर का पहला उपन्यास 'महाकाल' और 1990 में उनका अंतिम उपन्यास 'पीढ़ियाँ प्रकाशित हुआ। अत: उनके समस्त उपन्यास-साहित्य का विवेचन 1947 से आरम्भ किया गया है। प्रवृत्तियाँ के सपष्टीकरण के लिए प्रत्येक अध्याय के अंत में 'सिंहावलोकन' और विधान किया गया है।"[108] इस इतिहास पुस्तक को कुल सात आध्याय में उपन्यास और उपन्यासकारों को विभाजित किया गया है।

गोपाल राय ने 'हिंदी उपन्यास का इतिहास' के प्रथम अध्याय में उपन्यास का अर्थ, परिभाषा तथा उपन्यास कहानी और कथा में दिखने वाले अंतर को समझाने की कोशिश की है, साथ ही हिंदी उपन्यास का विकास किस प्रकार हुआ यह बताने की कोशिश भी हुई है। उपन्यास के विकास के सन्दर्भ उन्होंने यह कहा, "इसके लगभग 15 वर्ष पूर्व बँगला और मराठी में उपन्यास का जन्म हो चुका था। बंगला और हिंदी में 'उपन्यास', उर्दू में 'नाविल', मराठी में 'कादंबरी', तथा गुजरती में 'नवल कथा' की संज्ञा प्राप्त हुई।"[109] इस प्रकार उपन्यास के नामों को लेकर भी विविध भाषा में प्रचलन है। इस अध्याय में हिंदी के शुरुआती दौर के उपन्यासों पर बात की गयी है।

'नवजागरण और हिंदी उपन्यास' शीर्षक अध्याय में 1870 से 1890 ई.तक लिखे गए उपन्यासों पर चर्चा की गयी है। जिनका संबंध नवजागरण से बहुत ही गहरा था। वैसे कहा जाय तो हिंदी उपन्यास का नवजागरण से गहरा संबंध है इसमें कोई दोराय नहीं हैं। इसलिए तो हिंदी में उपन्यास का आरम्भ भी बँगला और मराठी की अपेक्षा बाद में हुआ। 1857 से पुनर्जागिरण का आरम्भ माना जाता है। और इसका प्रचार प्रसार 1860 के आसपास हिंदी क्षेत्र में तेजी से शुरू हुआ हैं। इस काल के उपन्यास का सिंहावलोकन करते हुए गोपाल राय लिखते हैं "इस काल के उपन्यासों में जिस समाज का अंकन हुआ हैं। वह उच्च मध्यवर्गीय समाज हैं। समाज का निचला वर्ग, यहाँ तक निम्न और सामान्य को भी इसमें अनुपस्थित हैं। 'देवरानी जेठानी की कहानी', 'वामा शिक्षक' और भाग्यवती तीनों में अपेक्षाकृत समृद्ध वैश्य, कायस्थ और ब्राह्मण परिवारों की जिन्दगी का अंकन किया गया है। केशवराम भट्ट, राधाकृष्ण दास, बालकृष्ण भट्ट और लाला श्रीनिवासदास के उपन्यास भी हिन्दू समाज के उच्च वर्ग का ही चित्रण करते हैं।"[110] वस्तुत: यह कह सकते हैं कि ये सभी लेखक उच्च और उच्च मध्य वर्ग के रहे और अपनी ही समझ से वे 'राष्ट्र की तलाश' का प्रयत्न अपनी ही रचनाओं के माध्यम से कर रहे थे।

इस समय के सभी उपन्यासों की प्रमुख धारा 'राष्ट्रीय चेतना' रही है। आलोचक के अनुसार "परीक्षा गुरु का तो यही केंद्रीय विषय ही है, जबकि अन्य उपन्यासकारों ने भी इसका किसी न किसी रूप में अंकन किया है। अंग्रेजों द्वारा भारत के धन की लूट इनकी चिन्ता का प्रमुख कारण है, जिससे बचने के लिए ये 'कारीगरी की निरर्थक चीजों पर धन के अपव्यय का विरोध करते हैं"।[111]

'रोमांस पाठक और उपन्यास' 1891 से 1917 तक की समय सीमा में लिखे उपन्यास की प्रवृत्तियों पर भी गोपाल राय ने बात की है। इस काल का महत्वपूर्ण उपन्यास है 'चंद्रकांता' इसके प्रकाशन से ही हिंदी उपन्यास के इतिहास में ऐसा परिवर्तन आया कि मानो एक नदी, पहाड़ और मैदान में उतर आए हो। 'चंद्रकांता' के

पहले हिंदी उपन्यासों की प्रसिद्धि कम थी। इसका कारण यह था की पाठक वर्ग का न होना। लेकिन इस उपन्यास को पढ़ने के लिए नया पाठक वर्ग निर्माण हुआ। इस काल के सबसे अधिक महत्वपूर्ण उपन्यासकार देवकीनंदन खत्री है, जिन्होंने हिंदी उपन्यास के विकास में रोमांस और रहस्य के उपन्यासों को अधिक महत्व दिया था। उनका सबसे बड़ा योगदान यह है कि उन्होंने हिंदी उपन्यास के असंख्य पाठक पैदा किए। इतना ही नहीं बल्कि आने वाले प्रेमचंद के उपन्यासों के लिए भी पाठक पैदा किए। इस सन्दर्भ में गोपाल राय ने यह लिखा कि, "यह मानना असंगत न होगा कि प्रेमचंद को हिंदी में लाने का श्रेय, परोक्ष रूप से देवकीनंदन खत्री को ही है। खत्री जी ने पाठक वर्ग के निर्माण के रूप में आवश्यक उपजाऊ जमीन तैयार कर दी जिस पर प्रेमचंद ने उपन्यास की समृद्ध फसल उगाने में सफलता प्राप्त की।"[112] गोपाल राय ने देवकीनंदन खत्री की विचारधारा, कथ्य-शिल्प, कथा-भाषा का भी संतुलित विवेचन किया है।

गोपाल राय ने 1891-1917 के बीच लिखे गए उपन्यासों का सिंहावलोकन किया है। वे कहते है कि, "इस अवधी के उपन्यासों पर नजर ड़ालने पर पहला तथ्य यह सामने आता है कि इसी अवधी में हिंदी उपन्यास को अपने पैरों पर खड़ा होने के लिए जमीन मिली। इसके पहले हिंदी उपन्यास हिंदी साहित्य के उत्थानकर्ताओं के उत्साह पर निर्भर था। उसके पाठक न के बराबर थे।"[113] इस प्रकार इस काल में पाठक वर्ग का निर्माण हुआ, इतना ही नहीं गोपाल राय ने देवकीनंदन खत्री के साथ गोपाल राम गहमरी, किशोरीलाल गोस्वामी और अन्य उपन्यासकारों का विस्तृत विवेचन किया है।

'यथार्थ के नऐ स्वर' में प्रमुख रूप से आलोचक ने प्रेमचंद की बात की है जिन्होंने उपन्यास विधा को यथार्थ की धरातल पर लाया। सन् 1918 में लिखा गया उपन्यास 'सेवासदन' से प्रेमचंद का हिंदी उपन्यास लेखन में प्रवेश हुआ। प्रेमचंद ने अपने पूर्व लिखे गए उपन्यास को पीछे छोड़कर यथार्थवादी दृष्टी से उपन्यास का स्वागत किया है। उन्होंने अपने उपन्यासों में भाषा, शिल्प, कथा, प्रस्तुति से नयी प्रणाली अपनायी है।

अपने उपन्यासों को उन्होंने अपने समाज और समय का महाकाव्य बनाया। इसीलिए वे हिंदी उपन्यास के प्रतिमान हैं और हिंदी उपन्यास की आलोचना की कसौटी भी खरे उतरते हैं। गोपाल राय ने प्रेमचंद के उपन्यासों का सूझबूझ के साथ मूल्यांकन किया है। उन्होंने लिखा है, "यद्यपि उनका प्रमुख लक्ष्य समकालीन जीवन को, उसकी समस्याओं और संघर्षों के साथ प्रस्तुत करना है, पर जिस मानव समूह को वे अपने कथ्य का माध्यम बनाते हैं, उसे उसकी पूरी वास्तविकता और अन्तरंगत के साथ प्रस्तुत करने का प्रयास भी करते हैं। प्रेमचंद के कथासंसार में नाना प्रकार के पात्र हैं जो वास्तविक व्यक्तियों की तरह जीते, महसूसते, सोचते और आचरण करते हैं। 'असाधारण' शक्तिसंपन्न पात्रों का प्रेमचंद के कथासंसार में एकदम अभाव नहीं है, पर उनकी संख्या अधिक भी नहीं है और वे अधिकतर उनके आरंभिक उपन्यासों में हैं। प्रेमचंद के कथासंसार की एक उल्लेखनीय विशेषता यह हैं कि उसमें से 'नायक' निरंतर अपदस्थ होता गया हैं। 'रंगभूमि' और 'गोदान' इसके उदाहारण हैं। रंगभूमि का केंद्रीय पात्र सूरदास अन्धा, अनपढ़, भिखारी और दलित वर्ग का हैं। उसमें परंपरागत नायक की छवि नहीं तलाशी जा सकती। गोदान का होरी तो एक कदम और आगे बढ़ जाता है। सूरदास जन्मना नहीं तो कर्माण अवश्य 'महान्' हैं, पर होरी तो जन्मना और कर्माणा दोनों दृष्टियों से अति साधारण हैं। उपन्यास में नायक के टूटने या उसे तोड़ने का आरम्भ प्रेमचंद से ही होता है।"[114] प्रेमचंद ने समाज की सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, आर्थिक, परिस्थितियों को अपने उपन्यासों से दिखाने का सफल प्रयास किया। साथ ही सामाजिक समस्याओं, बुराईयों पर भी अपनी लेखनी चलायी जिसके कारण विधवा, सती, दहेज़ आदि प्रथाओं को समाज से दूर करने में प्रेरणा मिली। गोपाल राय इस काल का सिंहावलोकन इस प्रकार करते हैं कि, "प्रेमचंद इस काल के (1918-1936) ही नहीं हिंदी उपन्यास के भी शिखर लेखक हैं। जैसा हम देख चुके है, वस्तु, शिल्प और भाषा, सभी दृष्टियों से उनके उपन्यास अपनी विशिष्ट पहचान निर्मित करते हैं और हिंदी उपन्यास को प्रौढ़ता के वय में पहुँचा देते हैं।"[115]

इसी काल के अन्तर्गत 'नयी दिशाओं की तलाश' उपशीर्षक में गोपाल राय 1937-1947 तक के उपन्यास और उपन्यासकारों को लेकर चर्चा करते हैं। यह काल प्रेमचंद के बाद का है। इस काल के महत्वपूर्ण उपन्यासकार जैसे वृन्दावनलाल वर्मा, जैनेन्द्र कुमार आदि के उपन्यासों की भी विशेषताओं का विस्तार के साथ विश्लेषण किया हैं। इस के साथ ही आलोचक ने अज्ञेय के औपन्यासिक शिल्प के महत्व की पहचान कराई है जिसे हम इस पुस्तक में देख सकते हैं। औपन्यासिक प्रवृतियों का पूरा विकास प्रेमचंद के बाद होता दिखाई देता है। जैसे कि "जैनेन्द्र कुमार 'सुनीता' की रचना के साथ ही उपन्यासकार के रूप में प्रतिष्टित और हिंदी उपन्यास में एक नये मोड़ के निर्माता के रूप में स्वीकृति प्राप्त कर चुके थे। 1937 ई. में उनका 'त्यागपत्र' और उसके दो वर्ष बाद 1939 ई. में 'कल्याणी' नामक उपन्यास प्रकाशित हुए। पुरुषसत्ता प्रधान समाज में स्त्री का अनेकमुखी शोषण हिंदी उपन्यासकरों की चिंता का विषय शुरू से ही रहा। जैनेन्द्र ने इस चिंता को 'त्यागपत्र' और 'कल्याणी' में नया आयाम दिया।"[116] कथ्य, शिल्प और भाषा की दृष्टी से प्रेमचंद ने हिंदी उपन्यास को उच्च शिखर तक पहुचाया हैं। प्रेमचंद के साथ-साथ इसमें जैनेन्द्र, अज्ञेय, इलाचंद्र जोशी, राहुल सांस्कृत्यायन, हजारी प्रसाद द्विवेदी, यशपाल अन्य उपन्यासकारों ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की हैं। "जैनेन्द्र, अज्ञेय और इलाचंद्र जोशी ने हिंदी उपन्यास के कथ्य को मनोवैज्ञानिक आयाम प्रदान किया, जबकि राहुल सांस्कृत्यायन, यशपाल और हजारी प्रसाद द्विवेदी ने ऐतिहासिक उपन्यास को नविन संभावनाओं से संपन्न किया। नारी-नियति का चित्रण इस अवधी के उपन्यासकरों की भी मुख्या चिंता रही।"[117] इस अवधी में लिखे गए उपन्यासों की प्रमुख विशेषता यह रही कि कथ्य, शिल्प और भाषा के साथ-साथ स्त्रियों को लेकर चिंता और उनके जीवन की अनेक घटित घटनाएँ थी।

'विमर्श के नए क्षितिज' 1948-1980 यह समय भारत में कई नए क्षितिज को जन्म देनेवाला रहा है। जैसे राजनीतिक में बड़ा बदलाव और भारत की स्वतंत्रता का जश्न। गोपाल राय का मत है कि साहित्य के इतिहास को राजनीतिक घटनाओं के सन्दर्भ

में देखना कहाँ तक सांगत या लाभप्रद है। यह प्रश्न विवादस्पद हैं, राजनीतिक घटनाओं का भी उस देश के इतिहास पर तुरंत या बाद में, प्रत्येक्ष या परोक्ष प्रभाव पड़ता ही है। इस काल के उपन्यासकार ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक आदि विषयों पर अपने उपन्यास लिख रहे थे। जैसे की 'वैशाली की नगरवधू' उपन्यास में बौद्ध साहित्य के सुप्रसिद्ध पात्र आंब्रपाली के चरित्र को केंद्र में रखकर उस काल की ब्रह्मण, बौद्ध और जैन संस्कृतियों के टकराव की कहानी बनायी। इस के साथ ही मगध, काशी, कोशल और गणराज्य वैशाली के राजनीतिक संघर्षों का अंकन किया गया है। इस प्रकार गोपाल राय ने विमर्श के नए क्षितिज के अंतर्गत राहुल सांस्कृत्यायन, यशपाल, रांगेय राघव, भैरवप्रसाद गुप्त और नागार्जुन के उपन्यासों का विवेचन किया है। साथ ही उन्होंने इन उपन्यासकारों की माक्सर्वादी दृष्टी से अपनी असहमति भी व्यक्त की है। गोपाल राय ने इस काल के उपन्यासकार अमृतलाल नागर के औपन्यासिक विजन, शिल्प और भाषा की प्रयोगशीलता की बेहद तारीफ की है।

गोपाल राय के मतानुसारका फणीश्वरनाथ रेणु स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद के दशक में सर्वश्रेष्ठ उपन्यासकार है। उन्होंने 'मैला आँचल' की सामाजिक, राजनीतिक दृष्टी से और कथा-भाषा में मौजूद बिंबधर्मिता को ही महत्वपूर्ण माना हैं। इस दशक में रेणु के अतिरिक्त नरेश मेहता, उदयशंकर भट्ट, कमलेश्वर, कृष्ण बलदेव वैद और श्रीलाल शुक्ल आदि के उपन्यासों का विवेचन हैं। गोपाल राय ने अपने इतिहास में कभी-कभी अपनी असहमति तीखी भाषा में भी व्यक्त किया है। गोपाल राय ने श्रीलाल शुक्ल के उपन्यास 'राग दरबारी' के सन्दर्भ में लिखा हैं कि उपन्यास के रूप में 'राग दरबारी' एक असफल कृति है। उनके अनुसार "इसका कारण उपन्यास और व्यंग जैसे दो परस्पर विरोधी अनुशासनों को एक दूसरे से जोड़ने का प्रयास है। व्यंग्य के लिए 'कथा' का उपयोग लाभदायक होता है। पर उसके लिए 'उपन्यास' का ढाँचा भारी पड़ता है। उपन्यास में व्यंग्य का उपयोग उसके प्रभाव को धारदार बनता है, पर पूरे उपन्यास को व्यंग्य के साँचे में फिट करना रचनाशीलता के लिए घातक बनता है। व्यंग्यकार की सीमा यह

होती है कि वह विषय के साथ अपने को एकाकार नहीं कर पाता। वह स्रष्टा से अधिक आलोचक बन जाता है। स्रष्टा अपने विषय से अनुभूति के स्तर पर जुड़ा होता है, जबकि व्यंग्यकार जिस वस्तु पर व्यंग्य करता है, उसके प्रति निर्मम होता है।"[118] इस तरह 1947 से लेकर 1980 तक हिंदी में अलग-अलग विषयों को लेकर उपन्यासों की रचना हुई हैं।

गोपाल राय ने 'समकालीन परिदृश्य' शीर्षक में 1981 से 2000 तक की रचनाओं का विवेचन किया है। उन्होंने समकालीनता पर बात करते हुए कहा हैं, "1981-2000 की अवधी को 'समकालीन परिदृश्य' मानना विवादास्पद हो सकता है, पर विवेचन की सुविधा की दृष्टी से इसका कोई विकल्प भी नहीं है। इस परिच्छेद में हमने उन उपन्यासकारों का विवेचन करने का निर्णय किया है जिनका पहला उपन्यास 1981 ई. में या उसके बाद प्रकाशित हुआ। यद्यपि इस वर्ष को समकालीनता का आरम्भ मानने का कोई निर्विवाद औचित्य नहीं है।"[119] यह शीर्षक समय की सीमा तय करने के लिए दिया हुआ है। इस अवधी में संजीव, रामकृष्ण मिश्र, शरद पाण्डेय, राजी सेठ, नासिरा शर्मा, प्रभा केतन, वीरेन्द्र सक्सेना, मैत्रीय पुष्पा और अन्य उपन्यासकारों के उपन्यास का विवेचन किया गया हैं।

गोपाल राय के 'हिंदी उपन्यास के इतिहास' में समग्र इतिहास लेखन की चिंता है, परन्तु असहमति के कारण किसी का बहिष्कार भी नहीं हैं। अगर असहमति हैं, तो उसका उल्लेख जरुर है। इसमें ऐसे अनेक उपन्यासकारों और उपन्यासों का विवेचन है, जो हिंदी उपन्यास के पाठकों के लिए अपरिचित और अज्ञात है। लेकिन गोपाल राय ने हिंदी उपन्यास की सभी प्रवृतियों, धाराओं और दृष्टियों के उपन्यासों का परिचय अपने इतिहास में दिया है और उनका समुचित विवेचन और मूल्यांकन भी किया है। गोपाल राय के विवेचन और मूल्यांकन से किसी की असहमति हो सकती है, लेकिन यह भी ध्यान में रखने की बात हैं कि किसी भी इतिहास लेखन में इतिहासकार की अपनी समझ, दृष्टी और संवेदना के अनुसार ही रचनाओं का विश्लेषण और मूल्यांकन किया

जाता है। जिससे अन्यों की असहमति की सदा संभावना रहती है। इस प्रकार गोपाल राय ने 'हिंदी उपन्यास का इतिहास' में नये और पुराने उपन्यासकार और उनके उपन्यासों का विवेचन कर उनकी सटीक पहचान बनायी है।

गोपाल राय उपन्यास का उदय यूरोप से मानते हैं। और इसी दौर में हिंदी में 'देवरानी जेठानी की कहानी' 1870 उपन्यास प्रकट हुआ। परन्तु इसके पहले ही भारतीय भाषाओं में उपन्यास शब्द का अलग-अलग प्रांतीय भाषा के शब्दों में प्रवेश हो चुका था। इस संदर्भ में हजारी प्रसाद द्विवेदी कहते है, "..... सभी प्रांतीय भाषाओं में उपन्यास लिखे गए थे। कहीं-कहीं तो उपन्यास का पर्यायवाची शब्द ही कादम्बरी है।"[120] मराठी और बंगला में उपन्यास की शुरुआत हिंदी से पहले मानी जाती है जहाँ उसे 'नॉवेल' और 'कादम्बरी' नाम से संबोधित किया गया।

भारतीय साहित्य में आख्यान के जो विविध स्वरूप थे उसमें से उपन्यास विधा का रूप भिन्न था। इसलिए सही नाम की खोज करना कठिन लगने लगा। परन्तु इस समस्या के समाधान के लिए कई प्रयोग हुए है। जैसे कहीं परम्परा से तो कहीं आविष्कार की प्रवृत्ति से। उपरोक्त कथन के अनुसार मराठी में उपन्यास को 'कादंबरी' कहा जाता है। गुजराती में 'नवल कथा' जिससे उपन्यास की नवीनता की प्रवृत्तियों की ओर संकेत होता है और कथा से भारतीय परम्परा का बोध होता है। हिंदी में लोकप्रिय 'उपन्यास' नाम बंगला भाषा से आया जिसे अंग्रेजी में 'नावेल' कहा जाता है।

गोपाल राय लिखते हैं कि "हिंदी उपन्यास का भारतीय नवजागरण से गहरा संबंध है। बंगला और महाराष्ट्र की तुलना में हिंदी क्षेत्र में नवजागरण की प्रक्रिया कुछ बाद में आरम्भ हुई इसलिए हिंदी में उपन्यास का आरम्भ भी बंगला और मराठी की अपेक्षा तनिक बाद में हुआ।"[121] बंगला में भूदेव मुखर्जी उपाध्याय की पुस्तक

‘ऐतिहासिक उपन्यास’ 1862 में सबसे पहले इस शब्द का प्रयोग हुआ। बाद में बंकिमचंद्र ने अपनी रचनाओं को उपन्यास कहा तो उनके उपन्यासों की लोकप्रियता के साथ यह नाम भी लोकप्रिय हुआ। हिंदी में उपन्यास नाम ही नहीं उसका रूप भी आरम्भ में बंगला से आया। इधर जब से हिंदी नवजागरण की चर्चा का शोर बढ़ा, तब से हिंदी की अनन्यता सिद्ध करने पर सारा जोर लगाया जा रहा था। इस प्रयत्न में भारतीय नवजागरण की अनेक सच्चाइयों को झुठलाने की कोशिश हो रही थी। ऐसी स्थिति में कुछ लोगों को यह बात स्वीकार करने में कठिनाई हुई कि ‘उपन्यास’ बंगला से हिंदी में आया। लेकिन यह एक ऐतिहासिक सच्चाई है। इसका प्रमाण गोपाल राय की रचना ‘हिंदी उपन्यास का इतिहास’ देती है। “हिंदी में नावेल के अर्थ में उपन्यास पद का प्रथम प्रयोग 1875 ई में हुआ। बंगला में नावेल के अर्थ में उपन्यास पद का प्रयोग 1862 ई में भूदेव मुखोपाध्याय ने किया था जिसे बंकिमचंद्र चटर्जी ने अपनी रचना के द्वारा लोकप्रिय बनाया।”[122] इसके साथ ही माधवप्रसाद मिश्र ने भी लिखा है कि “हिंदी में उपन्यास शब्द बंगला से आया है और अनुकरण प्रिय रचना चतुर बंगाली ग्रंथकारों ने आधुनिक लक्षण से इसे अंग्रेजी के नावेल शब्द का पर्याय बना दिया है।”[123]

इस प्रकार गोपाल राय ने ‘हिंदी उपन्यास’ को लेकर कई विषयों पर अपनी बात रखी है। उपन्यास का अध्ययन करना हिंदी उपन्यासों की रचना धार्मिकता को न्याय देना है। गोपाल राय के उपन्यासों से संबंधित सोच व विचारों पर बात करने से यह सामने आता है कि उनके अनुसंधान और आलोचना लेखन में विविधता, व्यापकता और तर्क के साथ उपन्यास लेखन की आलोचना सामने आती है। गोपाल राय के उपन्यासों से संबंधित आलोचना का अध्ययन करने के लिए पहले उनके द्वारा रचित उपन्यासों से संबंधित रचनाओं का अध्ययन करना जरुरी है। इसलिए उनकी रचनाओं से परिचित होना आवश्यक है। अत: उनकी हिंदी उपन्यास की आलोचना से संबंधित पुस्तकें

निम्नलिखित रूप में हैं - 'हिंदी कथा साहित्य और उसके विकास पर पाठकों की रुचि का प्रभाव' (1965), 'गोदान : अध्ययन की समस्याएँ '(1966), 'हिंदी का प्रथम उपन्यास 'देवरानी जेठानी की कहानी' (1966), 'हिंदी उपन्यास कोश : दो खण्डों में (1968-1969), 'अज्ञेय और उनके उपन्यास' (1975), 'शेखर : एक जीवनी' (1975), 'रंगभूमि : पुनर्मुल्यांकन (1983), 'मैला आँचल' (2000), 'दिव्या और हिंदी उपन्यास का इतिहास' आदि। इन आलोचनात्मक पुस्तकों द्वारा गोपाल राय ने उपन्यास के उदय से लेकर समकालीन उपन्यास की स्थिति तक पाठकों को परिचित कराया है।

हिंदी उपन्यास संबंधित आलोचना दृष्टि शुरूआती दौर में विकसित नहीं हुई। इस संदर्भ में गोपाल राय ने लिखा है कि "गोदान अध्ययन की समस्याएँ' (1966) नामक पुस्तक में किया था। तब से लेकर आज तक 'गोदान' पर कई पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी है। पर इसमें अधिकांश संकलन के रूप में हैं। जो थोड़ी सी 'गोदान' पर स्वतंत्र आलोचना पुस्तकें हैं उनमें गंभीर अध्ययन तथा वैज्ञानिक दृष्टी का अभाव है। स्वयं मेरी पहली पुस्तक मुझे अपर्याप्त और दोषपूर्ण प्रतीत होती है।"[124] गोपाल राय की पुस्तक 'हिंदी कथा साहित्य और उसके विकास पर पाठकों की रुचि का प्रभाव' और 'गोदान : अध्ययन की समस्याएँ' आदि ने बाद की रचनाओं में उपन्यास से संबंधित आलोचना में योगदान दिया है।

गोपाल राय ने कई सारे उपन्यासों का अध्ययन कर हिंदी का प्रथम उपन्यास किसे माना जाए इस बात पर भी ध्यान आकर्षित किया है। 'देवरानी जेठानी की कहानी' पंडित गौरीदत की कृति है जिसे सन् 1966 में गोपाल राय ने संपादित किया। यह एक आलोचनात्मक पुस्तक है। कुछ आलोचकों ने इसे हिंदी का प्रथम उपन्यास कहा

है। किन्तु बहुत सारे लेखक और आलोचक लाला श्रीनिवासदास के उपन्यास ‘परीक्षा गुरु’ (1882) को हिंदी का पहला उपन्यास मानते हैं। रामचंद्र शुक्ल ने भी ‘परीक्षा गुरु’ व श्रद्धाराम फुलौरी कृत ‘भाग्यवती’ (1877) को प्रथम उपन्यास माना है। इसी संदर्भ में गोपाल राय लिखते हैं “शुक्ल जी की इस मान्यता को तो ज्यो का त्यों स्वीकार कर लिया है। पर इस समस्या पर गंभीरतापूर्वक विचार करने का कष्ट नहीं उठाया है किसी भी आलोचक या शोध कर्ता ने। ‘परीक्षा गुरु’ के पूर्व लिखित कथा पुस्तकों पर विचार नहीं किया है। यह कारण है कि आज तक हिंदी के प्रथम उपन्यास के संबंध में एक गलत धारणा प्रचलित है।”[125] सही मायने में ऐसी धारणाओं को और प्रश्नों को गोपाल राय ने समाप्त करने का प्रयास किया है। उन्होंने अपनी कृतियों के माध्यम से हिंदी उपन्यासों की सही आलोचना कर अब-तक चली आ रही धारणा को सुधारा है। “इस मत या धारणा का निराकरण पंडित गौरीदत्त लिखित ‘देवरानी जेठानी की कहानी’ के प्रकाशन से होगा ऐसा मुझे विश्वास है। यह पुस्तक प्रथम बार सन् 1870 ई. में प्रकाशित हुई थी जिसकी सुचना इसके मुख पृष्ठ से प्राप्त होती है। इसके पहले हिंदी में केवल एक ही और मौलिक गद्य कथा पुस्तक मिलती है। वह है सैयद इंशाल्ला खां द्वारा रचित ‘रानी केतकी की कहानी’ जिसकी रचना 1800 ई. के आस पास हुई थी। ‘भाग्यवती’ और ‘परीक्षा गुरु’ दोनों ही इसके बाद की रचनाएँ है। ‘रानी केतकी की कहानी’ से लेकर ‘परीक्षा गुरु’ के बीच रचित मौलिक कथा निम्नलिखित है - ‘रानी केतकी की कहानी’ (1800 ई. के लगभग) ‘देवरानी जेठानी की कहानी’ (1870) ‘वामा शिक्षक’ (1872) ‘भाग्यवती’ (1877) ‘अमृत चरित्र’(1880) ‘नि:सहाय हिन्दू’ (1881) और ‘परीक्षा गुरु’1882”[126] इसी को क्रमवार रूप देकर आगे उन्होंने उपन्यास संबंधी विशेषताओं की

चर्चा की है। गोपाल राय ने 'रानी केतकी की कहनी' को उपन्यास की संज्ञा नहीं दी। इसका विश्लेषण करते हुए वे कहते हैं, "यह पर्याप्त आकार में गद्य कथा तो है इसमें चित्रित संसार काल्पनिक भी है पर उपन्यास लेखक विशिष्ट गुण यथार्थता और नवीनता का इसमें सर्वथा अभाव है - गद्य कथा सूफी प्रेमाख्यान है। हम इसमें जीवन की झलक नहीं पाते। इसके पात्र हमारे संसार के व्यक्ति न होकर रूमानी काव्य लोक के असामान्य और अति लौकिक प्राणी है। इसकी भाषा गद्य होने के बावजूद सभी प्रकार की साहित्यिक रूढ़ियों, अलंकृत वर्जनों, तुकों और अनुप्रासों से पूर्ण कृत्रिम भाषा है। अत: 'रानी केतकी की कहानी' को हिंदी का पहला उपन्यास नहीं माना जा सकता। यद्यपि वह हिंदी की पहली मौलिक गद्य कथा अवश्य हैं।"[127]

हिंदी का प्रथम उपन्यास मानते हुए 'देवरानी जेठानी की कहानी' की कुछ विशेषताओं को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। "इसमें पहली बार परंपरा से हटकर कथा कहने का प्रयास किया गया है। कथाकार पुराने आख्यान लेखकों की तरह किसी राजा सेठ सामंत या शूरवीर की कहानी नहीं कहकर साधारण निम्नवर्गीय परिवार की 'देवरानी जेठानी की कहानी' कहता है।"[128] 'देवरानी जेठानी की कहानी' में तत्कालीन वैश्य समाज की सांस्कृतिक और पारिवारिक स्थिति उनके आचार-विचार, पर्व-त्यौहार, रीती-रिवाज तथा घरेलु वातावरण का इस कथा-वस्तु में यथार्थ चित्रित हुआ है। इसका प्रथमत: हिंदी में प्रयोग हुआ है। इस उपन्यास में स्थान व पात्रों की वास्तविकता दिखायी गयी है। "उदाहरणार्थ मेरठ, दिल्ली, पुड़, पुर्जा, गुड़गाँव आदि जितने स्थानों के नाम इस कथापुस्तक में आये उनकी वास्तविक भौगोलिक स्थिति है। पात्रों के नाम भी पार्वती, दौलतराम, छोटे आदि वास्तविक व्यक्तियों के नाम है।

.....पात्रों और स्थानों के नामों की वास्तविकता के कारण कथा में यथार्थता और विशिष्टता का गुण आ जाता है जो उपन्यास के लिए अनिवार्य है।"[129]

गोपाल राय ने आलोचक का धर्म निभाते हुए 'देवरानी जेठानी की कहानी' उपन्यास के गुणों के साथ-साथ उसमें किस प्रकार के दोष पाये गए है इस पर भी तटस्थ होकर विचार किया है। "इसमें उस जटिल वस्तुविन्यास नाटकीय शिल्प और मनोवैज्ञानिक तथा विश्वासोत्पादक चरित्र चित्रण का अभाव है।"[130] आगे वे कहते हैं, "कथानक शिल्प, घटनाएँ व पात्रों के चरित्र चित्रण का सफल प्रयोग नहीं कर पाये और उनका कोई स्वतंत्र आस्तित्व निर्माण न कर सके। यहाँ तक कि देवरानी का चरित्र भी विश्वासोत्पादक नहीं बन पाया है।"[131]

गोपाल राय द्वारा इस उपन्यास की भाषा का उदहारण प्रस्तुत हैं "मेरठ में सर्वसुख नाम का एक अग्रवाल बनिया था। मंडी में आढ़त की दुकान थी। आसपास के गाँवो से सौदा लाते इसकी दुकान पर बेच जाते। पैसा रूपया तुलाई का इनके साथ भी लग जाता और जब कभी भी भाव चढ़ा देखता हजार दो हजार का चाय पान लेकर दुकान में ड़ाल देता फायदा देख उसे बेच ड़ालता।"[132] इस में प्रस्तुत भाषा और कथ्य शिल्प का प्रयोग इसके पहले किसी कृति में नहीं मिलता। अत: हिंदी के पहले उपन्यास के रूप में 'देवरानी जेठानी की कहानी' को स्वीकार किया जा सकता है।

'गोदान' प्रेमचंद द्वारा रचित हिंदी का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है। प्रेमचंद पहले उर्दू में लिखते थे बाद में उन्होंने हिंदी में 'सेवासदन' (1918) उपन्यास से लिखना शुरू किया। इस प्रकार प्रेमचंद ने हिंदी में अनेक उपन्यास लिखे। जैसे - 'प्रेमाश्रम' (1921), 'वरदान' (1921), 'रंगभूमि' (1925), 'कायाकल्प' (1926), 'निर्मला' (1927), 'गबन'

(1931), 'कर्मभूमि' (1932), 'गोदान' (1936), 'मंगलसूत्र' (अपूर्ण 1936) आदि। इन उपन्यासों की गोपाल राय ने 'हिंदी उपन्यास का इतिहास' में अन्य उपन्यासों के साथ तुलना की है।

प्रेमचंद को उपन्यास का सम्राट कहा जाता है क्योंकि उनके उपन्यासों के विषय विस्तरित और समाज के निकट है। 'गोदान' भारत के एक साधारण गाँव की कहानी हैं। ऐसा गाँव जिसे उपन्यास में पढ़ने के बाद हमें अपने गाँव की याद अनायास आ जाती है। गोदान के गाँव का वर्णन करते हुए बच्चन सिंह लिखते हैं कि, "गाँव में खेते हैं। खेतों में गाँव हैं। खेतों की मेढ़े हैं। जिन पर होकर गुजरनेवाले पशु भी है, आदमी भी है। किसान है, चरगाहे है जहाँ गाएँ चरती है। खपरैल और फूस के मकान है, द्वार पर चरनी है। उसमें नांदे है, वहां बंधे हुएं जानवर सानी खाते हैं, ओसारे में तखत है। खूंटी पर ठोलक टंगी हैं, ताख पर बेठन में बंधी रामायण की पुस्तक हैं। घर के कोने में तुलसी का चबूतरा है। खपरैलो पर लौकी बेले चढ़ी है। कहीं गाय बंधी है कहीं बैल। कहीं चूल्हा है, कहीं चक्की है। कहीं पुआल है कहीं चारपाई, कहीं होली का हुड़दंग है तो कहीं आम की ड़ालों पर अलापती कोयल और चहकते मैना।"[133] 'गोदान' उपन्यास में ऐसे बहुत दृश्य मिलेंगे जो गाँव के संदर्भ में सुन्दर बिम्ब पाठक के सामने प्रस्तुत करते हैं। दूसरी तरफ उपन्यासकार ने ऐसे गाँव का चित्रण किया है जहाँ चारों दिशाओं में लूट-पाट हैं, गरीबी है, लोक बेवस है, लाचारी है, वहाँ भ्रष्टाचार भी खिला हुआ है।

'गोदान ; नया परिप्रेक्ष्य' पुस्तक की चर्चा करना अनिवार्य हो जाता है क्योंकि यह पुस्तक गोपाल राय द्वारा रचित आलोचनात्मक पुस्तकों में सबसे महत्वपूर्ण है। इस पुस्तक को उन्होंने ग्यारह अध्यायों में विभाजित किया है। कुछ अध्यायों का शीर्षक हमें अलग से आकर्षित करता है, जैसे एक अध्याय का शीर्षक है 'एक रोमांच रहित त्रासदी' और अन्य अध्याय का शीर्षक है 'भारतीय दाम्पत्य जीवन का शोकगीत'। इस

आलोचनात्मक रचना में गोपाल राय ने स्वयं ऐसा काम किया है जहाँ उनकी गहरी अंतर्दृष्टि को देखा जा सकता है। इस पुस्तक के पहले अध्याय में गोपाल राय ने प्रेमचंद के व्यक्तित्व और कृतित्व पर गंभीरता से विचार करते हैं।

'गोदान ; नया परिप्रेक्ष्य' की भूमिका में स्वयं गोपाल राय नें लिखा है कि "मैं मानता हूँ कि गोदान का विवेचन प्रेमचंद की उपन्यास कला के मूल्यांकन के लिए एकमात्र आधार है। गोदान के विस्तृत अध्याय के बिना प्रेमचंद की उपन्यास कला के महत्व को नहीं समझा जा सकता। दूसरे गोदान हिंदी उपन्यास में उस शिखर के समान है जिसके दोनों ओर पर्वत के दो भागों के उतार चढ़ाव है। इसके सविस्तार अध्याय के बिना हिंदी उपन्यास के स्वरूप की सम्यक् पहचान सम्भव नहीं है। तीसरे यह कि हिंदी की श्रेण्य और शिखर औपन्यासिक कृति होने के कारण 'गोदान' अपने देश के अधिकांश विश्वविद्यालयों में स्नातकोत्तर कक्षाओं में विशेष अध्ययन का विषय हैं।"[134]

खगेन्द्र ठाकुर का कहना हैं कि "गोदान केवल किसान वर्ग की नहीं, पूरे भारतीय समाज की कथा हैं। भारतीय समाज में आज भी यानी प्रेमचंद के बाद छह दशक से अधिक का समय बीत जाने पर भी समाज का प्राय: सत्तर प्रतिशत हिस्सा खेती पर निर्भर करता है और गाँव में रहता है। हालांकि भूमि संबंध खेती के तरीके और गाँव की हालत में काफी परिवर्तन आ गया हैं।"[135] भारतीय समाज में किसान का जो स्थान हैं, वही स्थान 'गोदान' के नायक होरी का भी हैं। गोदान की मुख्य कथा किसानों की समस्या पर आधारित है। वह आज के समय में प्रासंगिक लगती है, कारण यहा है कि दिन-ब-दिन किसानों की आत्माहत्या की घटनाएँ बढ़ती ही जा रही है। सामान्य किसान का प्रतिनिधित्व करते हुए गोदान का होरी किसान की हर समस्या का संघर्षात्मक सामना करता है। परन्तु वह समकालीन योग के किसानों की तरह आत्माहत्या नहीं करता। जिसका वर्णन आलोचक गोपाल राय 'गोदान नया: परिप्रेक्ष्य' में प्रासंगिक दृष्टिकोण से ही किया है।

'उपन्यासकार प्रेमचंद' शीर्षक अध्याय में हिंदी में प्रेमचंद व उनके उपन्यासों का स्थान क्या है यह बताने का प्रयास आलोचक द्वारा किया गया है। "प्रेमचंद हिंदी के प्रथम उपन्यासकार है जिनकी रचनाएँ उपन्यास की कसौटी पर पूरी तरह से खरी उतरती है। इसके पूर्व हिंदी में ऐसा कोई उपन्यासकार नहीं हुआ था।"[136] प्रेमचंद के उपन्यासों की प्रमुख विशेषता यह रहीं कि उन्होंने उपन्यास में तत्कालीन समाज का यथार्थ चित्रण कलात्मक ढंग से कथा साहित्य में प्रस्तुत किया है। प्रेमचंद ने ब्रिटिश शोषण के परिणाम स्वरूप किसानों की निर्धनता, उनकी दयनीय जीवन स्थिति असहनीय पीड़ा आदि स्थितियों का चित्रण किया है। 'प्रेमाश्रम' में भी इसी प्रकार की स्थितियाँ दृष्टिगत होती है। ध्यान देने की बात है कि प्रेमचंद ने किसान, स्त्री शोषण, अछूतों की सामाजिक स्थिति सांप्रदायिकता हिन्दू-मुस्लिम संबंध आदि समकालीन परिस्थितियों की मूल समस्याओं को लेकर कलम चलाई और यह समस्याएँ तत्कालीन समय में सही भी साबित भी होती गयी। गोपाल राय प्रेमचंद की दृष्टि से नारी विषय की स्थिति को दर्शाते हुए कहते हैं कि "प्रेमचंद के नारी पात्र अपनी सामाजिक स्थिति के प्रति विद्रोहशील तो है पर निर्जीव प्रतिमा बना देते हैं। सुमन (सेवासदन) आरम्भ में कितनी बेजबान है पर पूरे समाज के खिलाफ विद्रोह करती हैं। पर अंत में प्रेमचंद के आदर्श की बलि हो जाती है।"[137] यह कहना आवश्यक न होगा कि आलोचक की हर बात से सहमत होना ही चाहिए। प्रेमचंद को लेकर गोपाल राय की कुछ बातों से पूरी तरह सहमत होना संभव नहीं हैं लेकिन इस बात के लिए उनकी प्रशंसा की जानी चाहिए कि 1966 में उन्होंने इस पुस्तक पर एक आलोचनात्मक दृष्टीकोण बनाने की कोशिश की है।

'गोदान ग्राम जीवन और कृषि संस्कृति का महाकाव्य' शीर्षक में महाकाव्य और उपन्यास को परिभाषित करते हुए दोनों की चेतना किस प्रकार अभिव्यक्त होती है

इसका चित्रण किया है। 'गोदान' ग्राम जीवन व कृषि जीवन को उसकी सम्पूर्णता में प्रस्तुत करने वाला अद्वितीय उपन्यास है। भारतीय गाँव और कृषि का संबंध अटूट है। आज भी भारतीय जनसंख्या के लगभग 85 प्रतिशत लोग गाँव में ही निवास करते हैं और सभी कृषि जीवन पर ही अपना जीवन निर्भर करते हैं। गोपाल राय का कहना है कि "प्रेमचंद ने गोदान में ग्रामीण जीवन को यथार्थ रूप में प्रस्तुत करने के लिए उसके सभी पक्षों का स्पष्ट ब्योरे वार और विशिष्टीकृत वर्णन किया है। ग्राम जीवन के यथार्थ को रूपायित करने के लिए उन्होंने निन्मलिखित पक्षों का चित्रण है,

- गाँवों की भौगोलिक स्थिति उनकी बनावट और प्राकृतिक परिवेश।
- पात्रों का नामकरण वेशभूषा और शारीरिक बनावट।
- पात्रों की आर्थिक सामाजिक स्थिति।
- पात्रों के कार्य एवं वार्तालाप के विषय।
- पात्रों की भाषा।"[138]

डॉ. रामदरश मिश्र गोपाल राय के विचार से अपनी सहमति दर्शाते हैं। वे कहते है, "मैं मानता हूँ वह विशेषता है, उनकी यथार्थ की पकड़ है यथार्थ सतह पर फैली हुए गंदगी नहीं है बल्कि मानव जीवन के बुनयादी प्रश्न। उसके अनेक-अनेक बाहरी भीतर स्वरूपों को बनाने वाली बदलने वाली परिस्थितियाँ, समस्याएँ अपसी संबंध और मनाव मन के भीतर के अनेक गहन रहस्यमय सत्य यथार्थ है।"[139]

जो व्यक्ति सामाजिक जीवन के यथार्थ को लक्ष्य बनाकर चले है वह व्यक्ति ही सामाजिक जीवन को परिवेश में रखकर चलता है। 'गोदान' उपन्यास में कुछ ग्रामीण पात्रों के नाम जैसे होरी, गोबर, शोभा, हीरा, भोला, तंगी, बंसी, मातादीन, कोदई, मथुरा, रामसेवक, दुलारी, धनिया, सोना, रूपा, झुनिया, पुनिया, कालिया इत्यादि

अपना महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। इन पात्रों के नाम परिवेश को ध्यान में रखकर ही दिये गये है जिस पर आलोचक गोपाल राय ने अपनी पुस्तक में विस्तार से चर्चा की है।

'गोदान' को महाकाव्य माना जाए या नहीं। इस संबंध में कई आलोचक नकारात्मक सोच रखते हैं। इसका विवरण गोपाल राय ने अपनी आलोचनात्मक पुस्तक में दिया है। 'गोदान' ग्राम जीवन और कृषि संस्कृति का महाकाव्य है। वे अपनी कृति में इस पर एक पूरा अध्याय लिखते है। गोपाल राय की आलोचना का सबसे महत्वपूर्ण अंग यह है कि वह हर बात को ठोंक बजाकर कहते हैं। वे बिना प्रमाण के कोई बात नहीं कहते। आचार्य नंददुलारे वाजपेयी 'गोदान' को महाकाव्यात्मक उपन्यास मनाने के पक्ष में नहीं थे। उन्होंने अपने तर्क भी दिए थे। गोपाल राय ने उनको उद्धृत करते हुए उनका जो खण्डन किया है वह पुन: उनकी गहरी अंतर्दृष्टि का संकेतक है।

गोपाल राय कहते हैं कि वाजपेयी की गोदान के बारे में लिखी आलोचना पूर्वगृह से ग्रस्त है। उपन्यास का प्रकार ऐसा भी होता है जो अपनी व्यापकता गहराई और विवेचन में महाकाव्य साबित होता है। इस आलोचन दृष्टी से कह सकते हैं कि गोदान में ग्रामीण जीवन और कृषि संस्कृतिक का यथार्थ चित्रण हुआ है। इसी लिए 'गोदान' को देश की ग्रामीण समाज की भाग्यगाथा प्रस्तुत करनेवाला अतुलनीय उपन्यास कहा जाता है। जिसमें कृषक जीवन की अभावपूर्ण जीवन पद्धति व आंसुओं की दर्द भरी पुकार है।

'एक रोमांच रहित त्रासदी' शीर्षक में गोपाल राय ने गोदान के महाकाव्य की व्यापकता और गंभीरता चित्रित करने के साथ-साथ होरी की त्रासदी पूर्ण जीवन पद्धति को भी दिखाने का प्रयास किया है। "ये घटनाएँ होरी को किसान से मजदूर बना देती है यह भी होरी के जीवन की बहुत बड़ी ट्रेजडी है। वह जिन्दगी भर मजदूरी को हेय कर्म समझता रहा है। मजदूर बनना किसान की मर्यादा के प्रतिकूल है और होरी के मन में यह मर्यादा भावना कूट-कूट कर भरी हुई है। पर उसका कोई वश नहीं चलता। वह बैलों

की जोड़ी खरीद नहीं पाता।"[140] इस प्रकार गोदान एक त्रासदी के प्रभाव से युक्त रचना है। होरी की छोटी सी इच्छा गाय खरीदने की पूरी नहीं होती। संघर्ष करने के बावजूद वह पराजित होता है। जिसके कारण यह त्रादसी पूर्ण प्रभाव से युक्त रचना साबित होती है।

भारतीय दांपत्य जीवन के शोकगीत के रूप में भी 'गोदान' उपन्यास हमारे समक्ष है। गोपाल राय इस में निम्नवर्गीय किसान दंपति के जीवन को देखते हैं। जैसे "होरीराम ने दोनों बैलों को सानी-पानी देकर अपनी स्त्री धनिया से कहा - गोबर को उख गाड़ने भेज देना। मैं न जाने कब लौटू। जरा मेरी लाठी दे दे। धनिया के दोनों हाथ गोबर से भरे थे। उपले पाथ कर आई थी। बोली - अरे कुछ रस पानी तों कर लों। ऐसी जल्दी क्या है?"[141] इस तरह के पति-पत्नी के बीच के संवादों से प्रेमचंद ने निम्नवर्गीय पति-पत्नी का दम्पत्य जीवन प्रस्तुत किया है। इस तरह भारतीय दम्पत्य जीवन का और एक उदहारण हम स्पष्ट देखते हैं।

"धनिया ने कुदाल देकर कहा क्या अभी सबेरा है जो उख गाड़ने चले? सूरज देवता माथे पर आ गया। नहाने धोने जाव-रोटी तयार है।

होरी ने धुन्ना कर कहा मुझो भूख नहीं है।

धनिया ने जले पर नोन छिड़का - हाँ काहे को भूख लगेगी। भाई ने बड़े-बड़े लड्डू खिला दिए है न। भगवान ऐसे सपूत भाई सबको दे।

होरी बिगड़ा। और क्रोध अब रस्सियाँ तुड़ा रहा था - तू आज मार खाने पर लगी हुई है।

धनिया ने नकली विनय का नाटक करके कहा - क्या करू तुम दुलार ही इतना करते हो कि मेरा सिर फिर गया है।

तू घर में रहने देगी कि नहीं?

घर तुम्हारा मालिक तुम मैं भला कौन होती हूँ तुम्हें घर से निकालने वाली?"[142]

इस व्यंग्यात्मक संवाद में जो तिक्तता और साथ-साथ में मिठास है वह सरल ग्रामीण दांपत्य में ही सम्भव है। यहाँ स्पष्ट होता है कि 'गोदान' उपन्यास भारतीय दांपत्य का शोकगीत ही है। जिसके माध्यम से समाज में पति-पत्नी की प्रवृत्तियाँ सामने आती है।

'गोदान की ग्रामेतर कथा' शीर्षक अध्याय में गोपाल राय ग्रामीण जीवन की कथा के साथ-साथ तत्कालीन तालुकेदार अभिजात वर्ग का जीवन भी दिखाते हैं। गोदान में नगरी जीवन के प्रमुख पात्र है रायसाहब, मेहता, मिर्जा और ओंकानाथ आदि। "गोदान' की ग्रामेतर कथा की प्रमुख स्त्री पात्रों में मालती और गोविंदी है। गोबर और झुनिया भी इस कथा में अपनी भूमिका अदा करते हैं। मालती, बश्न सरोज रायसाहब की लड़की मीनाक्षी के पति कुंवर दिग्विजय सिंह और राय साहब के प्रतिद्वंदी राजा सूर्यप्रताप सिंह इस कथा के गौण पात्र हैं।"143

उपर्युक्त सभी पात्र शहरी वातावरण से प्रभावित है। इन पात्रों में आदर्शवाद कमोवेश झलकता है। कहना होगा कि इन पात्रों की कथनी और करनी में बहुत अंतर है। प्रेमचंद ने ओंकारनाथ के चारित्रिक अंतर्विरोधों का चित्रण करके अपने समय के संपादकों के चरित्र की झांकी पेश की है। "ओंकारनाथ बातें तो बहुत उंची करते हैं देश भक्ति समाजवाद और नारी जागरण के पक्ष में जोरदार लेख लिखते हैं और बहस करते हैं। पर उनका चरित्र बेदाग नहीं है। वे स्वदेशी आंदोलन के हिमायती है पर अपने पत्र में विदेशी वस्तुओं के विज्ञापन छपाते हैं। पत्र चलाने के लिए ओंकारनाथ यह समझौता करने को बाध्य है। अपने पत्र की ग्राहक संख्या बढ़ाने के लिए वे श्रीमती खन्ना की खुशामती करते हैं तथा रायसाहब से आर्थिक सहायता लेते हैं जिसके फलस्वरूप रायसाहब के विरुद्ध कजनिकली सच्ची खबर को भी वे अपने पत्र में प्रकाशित नहीं कर पाते। ओंकारनाथ के चरित्र की कमजोरी खुलकर सामने आती है जब वे मालती के बहकावे में आकर शराब पी लेते हैं। मालती उन्हें जिस सहजता से उल्लू बनाती है उससे

रायसाहब की यह उक्ति बिल्कुल सही मालूम पड़ती है ऐसा भला आदमी कैसे इतना अच्छा लिखता है।"[144]

ग्रामेतर कथा के अंतिम मुख्य पात्र हैं खुर्शाद। उनके रंग, रूप, वेश-भूषा आदि का वर्णन करने के बाद प्रेमचंद उनके स्वभाव और अनुभावों का विवरण पेश करते हैं। वे वोटिंग के समय चौंक पड़ते थे और नेश्नालिस्टों की तरफ वोट देते थे। वे सूफी मुसलमान थे। दो बार हज कर आये थे। मगर शराब खुब पीते थे। कहते थे 'जब हम खुदा का एक हुक्म भी नहीं मानते तो दी के लिए क्यूं जान दें।' उसी प्रकार मिर्जा साहब भी ग्रामेतर जीवन शैली के जीव थे। मिर्जा साहब भाषण देने की कला में, मसलिस ज़माने के काम में माहिर है। जिस ढंग से बातों-बातों में वे पं. ओंकारनाथ को शराब पिलाने के लिए मालती की फ़ीस के एक हजार रुपये वसूल लेते हैं वह उनकी व्यवहार चतुरी का परिचायक है।

गोबर भी एक गाँव का लड़का है। परन्तु वह जीविका की तलाश में गाँव से भाग कर लखनऊ पहुंचता है। तो वह भी ग्रामेतर कथा का हिस्सा बन जाता है। पहले वह मजदूर के रूप में लखनऊ आता है। उसे मिर्जा साहब के सहयोग से 15 रुपये महीने की नौकरी मिलती है। उसके जीवन में भारी परिवर्तन आ जाता है। गाँव का युवक शहर में आकर कैसे परिवर्त्तित होता है इसका सही चित्रण एक उपन्यासकार करता है।

गोपाल राय का कहना है कि "गोबर की कहानी के द्वारा प्रेमचंद ने शहर के निम्नवर्ग की जिंदगी का चित्र प्रस्तुत किया है। जीने के लिए चलनेवाली प्रतियोगिता, खुली जगह का अभाव, नालियों से आनेवाली बदबू, अकेलेपन का बोझ आदि मिलकर जीवन को कितना असहनीय बना देते हैं इसका अच्छा चित्र गोबर की कहानी प्रस्तुत करती हैं।"[145]

'गोदान : नया परिप्रेक्ष्य' पुस्तक के 'मात्र सत्य का वाहक' शीर्षक अध्याय में गोपाल राय ने यह बताने की कोशिश की हैं कि उपन्यास विधा का संबंध यथार्थ व सत्य की परिधि में आता है। साहित्य की अन्य कोई विधा इस यथार्थवाद से उतनी गहराई के साथ नहीं जुड़ी हुई है जितना यह उपन्यास जुड़ा है। वैसे हिंदी उपन्यास का भी यथार्थ से अत्यंत घनिष्ठता का संबंध है। हिंदी के प्रारंभिक उपन्यास मनोरंजन को ही सर्वथा मानते हैं। गोपाल राय 'गोदान' को मात्र सत्य पर आधारित उपन्यास मानते हैं। "गोदान प्रेमचंद का अंतिम पूर्ण उपन्यास है। गोदान का मुख्य या केंद्रीय विषय है जमींदार महाजनों और सरकारी अमलों के शोषण के फलस्वरूप दयनीय जिंदगी जीने वाला भारतीय किसान जिसका प्रतिनिधित्व होरी और उसका परिवार करता है। ग्रामीण जीवन का ऐसा यथार्थवादी और विशद चित्रण शायद ही किसी भारतीय उपन्यास में मिले, हिंदी की तो बात ही अलग है। 'गोदान' भारतीय कृषक जीवन की आंसू भरी कहानी का विषद गीत है। ग्रामीण जीवन का शायद ही कोई पहलु हो जिस पर उपन्यासकार ने अपनी सहानुभूति पूर्ण दृष्टी न ड़ाली हो।"[146] इस प्रकार गोदान यथार्थवादी उपन्यास है जिसमें सत्य की मात्रा अधिक है। गोदान के यथार्थवाद पर खगेन्द्र ठाकुर ने दृष्टी ड़ालकर यह स्पष्ट किया हैं, "गोदान की परिप्रेक्ष्य की दृष्टी से देखने पर स्पष्ट होता है कि प्रेमचंद का यथार्थवाद जीवन के गतीशील यथार्थ की अगली अवस्था की परिकल्पना करना हैं। अत: उनका यथार्थवाद कहने वाले यह समझ पाते कि यथार्थ की अगली अवस्था की परिकल्पना करना जीवन के आदर्शों के बिना सम्भव नहीं हो सकता।"[147] इस लिए प्रेमचंद के उपन्यासों में यथार्थवाद का आदर्शोन्मुख भाव दिखाई देता है।

'गोदान का शिल्प' अध्याय में गोपाल राय ने गोदान के शिल्प वैशिष्ट को उद्घाटित किया है। शिल्प को लेकर गोपाल राय लिखते हैं, "हिंदी आलोचना में

उपन्यास शिल्प की अवधारणा को लेकर बहुत अस्पष्टता है। कुछ अलोचक शिल्प प्रयोग 'कला' के अर्थ में करते हैं और कुछ शैली के अर्थ में कुछ दोनों को मिला देते हैं। इसके फलस्वरूप उपन्यास शिल्प का विवेचन उलझ जाता है और उपन्यासकार के शिल्प वैशिष्ट्य का उद्घाटन नहीं हो पाता है। वस्तुत: शैली और कला दोनों से संबंध होने पर भी शिल्प अपनी प्रकृति में उनसे भिन्न और विशिष्ट होती है।"[148] शिल्प से उपन्यास की कथा में चातुर्य या कौशल आता है। गोपाल राय 'गोदान' उपन्यास के माध्यम से शिल्प को लेकर अनेक विशेषताएँ सामने लाते हैं उनका कहना है कि "प्रेमचंद उन उपन्यासकारों में है जिनकी कला निरंतर विकासमान होती है। गोदान में प्रेमचंद की कला संवेदना यथार्थ की पहचान और प्रस्तुति, शिल्प तथा भाषा शैली सभी दृष्टियों से अपने उत्कर्ष पर अवस्थित है। अत: प्रकारांतर से गोदान के शिल्प का विवेचन प्रेमचंद के औपन्यासिक शिल्प के विवेचन का पर्याय बन जाता है।"[149] गोपाल राय की तरह 'गोदान' के शिल्प पर भी हिंदी के आलोचकों ने अपने-अपने राय दी जिसका उदाहरण देना यहाँ आवश्यक होगा। "गोदान के शिल्प पर प्रेमचंद के आलोचकों ने बहुत ध्यान दिया हैं, जैसे नन्ददुलारे वाजपेयी, डॉ. नागेन्द्र, नलिन विलोचन शर्मा आदि। इन सबकी राय इस संबंध में प्राय: समान है कि गोदान टीले-टीले गणन वाला उपन्यास है। सेवासदन, गबन आदि का शिल्प सुगठित है, कसा हुआ है, यह बात एकदम गलत हैं, ऐसा नहीं। 'गोदान के कथानक में तीलापन हैं। इस मामले में प्रेमचंद का बचाव करने की भी जरुरत नहीं हैं। और भी उपन्यास हिंदी में हैं जिसका शिल्प बहुत कसा हुआ हैं।"[150] गोदान के शिल्प पर टीके होने के कारण को बताते हुए खगेन्द्र ठाकुर ने लिखा, "असल में गोदान का बुनियादी महत्व उसके ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य के कारण है। और उस परिप्रेक्ष्य के लिए पूरी सामाजिक प्रक्रिया को कथा में समेटना जरुरी था। और पूरी सामाजिक प्रक्रिया को समेटने के लिए अनेक कथाएं एक साथ चल रहीं हैं। टीलेपन का स्वाभाविक कारण यही है और यही गोदान के सौन्दर्य का मुख्य आधार भी हैं।"[151]

गोपाल राय प्रेमचंद व अन्य उपन्यासकारों को ध्यान में रखकर विवेचन करते हैं। "प्रेमचंद की अपने कथा संसार की प्रस्तुति या रचना की यही पद्धति है जिसका तर्कसंगत निर्वाह गोदान में सर्वत्र हुआ है। प्रेमचंद के पूर्ववृत्ति उपन्यासों और गोदान में फर्क यह है कि जहाँ पूर्ववर्त्ति उपन्यासों में किस्सागों अधिक प्रमुख हैं वहाँ गोदान में उसकी भूमिका काफी कम हो गयी है। गोदान में प्रेमचंद या तो पाठक को किसी दृश्य के समक्ष अथवा किसी पात्र के मनोदेश में अवस्थित कर देते हैं। या उसे किसी उंचे स्थान पर करके अपने वर्णन की दूरबीन थाम देते हैं। कथाकार के रूप में हस्तक्षेप वे नहीं करते हैं। जहाँ उन्हें कोई अपनी बात कहनी होती है परिवेश का वर्णन करना होता है अथवा किसी पात्र का चरित्र विश्लेषण या उसके मनोभावों का उद्घाटन करना होता है।"[152]

'गोदान के पात्र' शीर्षक उपन्यास में गोपाल राय उपन्यास की कथा संसार के प्रमुख निर्णायक व स्वरूप निर्धारक उपन्यास के पात्र ही मानते हैं। 'गोदान' उपन्यास के पात्रों को प्रेमचंद ने अत्यंत सजीव रूप दिया है। अलग-अलग वर्गों के व मानसिकता के पात्र गोदान में चित्रित हुए है। साथ ही उनके संघर्ष को भी प्रेमचंद ने चित्रित किया है। पात्रों की विशिष्टता ही 'गोदान' उपन्यास का वैशिष्ट है। "गोदान में यदि एक ओर ठेठ ग्रामीण पात्र है तो दूसरी ओर आधुनिक मानसिकता वाले नागरिक पात्र भी है। ग्रामीण पात्रों में भी विभिन्न आर्थिक स्थितियों के किसान, किसान-मजदूर, पटवारी, पुरोहित, जमींदार का कारिन्दा, धनी किसान, साहूकार आदि अनेक वर्गों के पात्र है। नागरिक या अर्थनागरिक पात्रों जमींदार, प्रोफ़ेसर, संपादक, डॉक्टर, बैंकर, दलाल, दुकानदार आदि के साथ-साथ मजदूर, लंगेवाले, छोटे दूकानदार आदि अनेक तबकों के पात्र है। इस पात्र समुदाय में पुरुषों और स्त्रिया, बच्चे और बूढ़े, सवर्ण और अवर्ण, पंडित और अनपढ़ अनेक प्रकार के लोग है। कहना न होगा कि पात्रों का यह वैविध्य ही गोदान को

महाकाव्यात्मक स्वरूप प्रधान करता है।"[153] इस प्रकार कहे सकते हैं कि उपन्यास के पात्र और उसकी विषय, वस्तु, शिल्प भाषा आदि के माध्यम से उस उपन्यास को एक विशिष्ट स्थान मिलता है। गोदान उपन्यास में होरी एक पात्र है जो सच्चा किसान है। वह कामचोर नहीं है। मरते दम तक वह भूमि, कुदाल और फाके से अपना संबंध बनाये रखता है। इस प्रकार के अन्य पात्र भी समाज के सच्चे चित्र अंकित करते हैं। गोदान में पुरुष पात्रों के साथ-साथ नारी पात्र भी सक्रिय भूमिका में दिखाये गए है। गोपाल राय स्त्री पात्रों की आलोचना करते हुए कहते हैं कि "प्रेमचन्द का नारी विषयक आदर्श मालती में पूर्णत: प्रतिफलित हुआ है। प्रेमचंद चाहते थे कि भारत की शिक्षित स्त्रियाँ पारिवारिक बंधन में न पड़ कर पुरषों कों देश-सेवा के लिए प्रेरणा दें और स्वयं भी मैंदान में आकर समाज की सेवा करें। मालती उनकी उस आकांक्षा को रूपायित करती है। मालती नवयुग की आधुनिक नारी का प्रतिनिधित्व तों करती ही है वह प्रेमचंद के इच्छित विश्वास विशफुल थिंकिंग या आदर्श का सजीव विग्रह भी है।"[154]

गोपाल राय ने 'गोदान की भाषा' शीर्षक अध्याय में 'गोदान' की भाषा पर ध्यान आकर्षित किया है। आलोचक ने उपन्यास की भाषा के विशिष्ट पक्ष को सामने रखकर उपन्यास की आलोचना की है। उन्होंने लिखा है "1957 से 1965 तक मैं कॉलेज में था। उस समय आचार्य देवेन्द्रनाथ शर्मा, प्रोफ़ेसर. नलिन विलोचन शर्मा और प्रोफ़ेसर जगनाथराय शर्मा थे। वे पढ़ाते भी थे और शोध भी कराते थे छात्रों कों पढ़ाने के लिए वे गहन अध्ययन करते थे वही, परंपरा मुझे मिली बहुत महेनत से छात्रों को पढ़ाया उसे लिखकर सामग्री के रूप में संगृहीत किया। उपन्यास एवं भाषा वगैरह पर मेरी जो किताब हैं वे उसी अध्यापन का प्रतिफल है।"[155] प्रेमचंद की भाषा शैली को डॉ. गोपाल राय ने बहुत सरल शब्दों में व्यक्त किया है "गोदान के कथा संसार में दिखाई

पड़नेवाले वैविध्य के अनुरूप ही उसकी भाषा में विविधता है। गोदान में दो बहुत स्पष्ट कथा संसार है एक गाँव का और दूसरी नगर की। प्रेमचंद गाँव और नगर की कहानी एक जैसी भाषा में नहीं करते। किस्सागो के रूप में प्रेमचंद बहुत साल अभिधात्मक भाषा का प्रयोग करते हैं। वे तत्सम शब्दों का प्रयोग बहुत कम करते हैं। तद्भव शब्दों के अतिरिक्त संस्कृत और अरबी फारसी के उन्हीं शब्दों का प्रयोग करते हैं जो सामान्य बोलचाल में घुलमिल गये है।"[156] गोपाल राय के अनुसार 'गोदान' की भाषा को सर्जनात्मक बनाने के लिए लेखक शब्द चयन वाक्य गठन और पैराग्राफ निर्माण से लेकर शब्द शक्तियों, अलंकारों, गुणों, अनेक प्रकार की प्रयोग वक्रताओं, मुहावरों, लोकोक्तियों आदि शैलियाँ उपकरणों का प्रयोग करते हैं। गोपाल राय नारी पात्रों की भाषा पर विचार करते हैं। "गोदान के स्त्री पात्र पुरुष पात्रों की तुलना में अपभ्रष्ट और ठेठ तद्भव शब्दों का ही प्रयोग अधिक किया है। तत्सम शब्दों को बिगड़ने की प्रवृत्ति भी उसमें पुरुषों की अपेक्षा अधिक दिखती है। पुरुष पात्र अधिक से अधिक 'शिक्षा' को 'शिच्छा' 'जन्म' को 'जनम' 'नीलाम' को 'निलाम' बोलते हैं। पर स्त्री पात्र इन्हें अपनी उच्चारण सुविधा के अनुसार चिच्छा (पृ. 48) अलम और छिल्लम (पृ. 434) में परिणत कर देते हैं। ग्रामीण स्त्रियों में व्याप्त निरक्षरता को देखते हुए प्रेमचंद का यह भाषा बोध अद्भुत रूप से सुक्ष्म और सटीक है।"[157] प्रेमचंद ने हिंदी कथा साहित्य के लिए एक आदर्श भाषा-शैली का निर्माण किया था। जिसके कारण गद्य शैली निर्माता के रूप में भी उनका स्थान उभरकर हिंदी साहित्य में सदा बना रहेगा। भाषा के संबंध में प्रेमचंद ने सरलता, सहज स्वच्छन्दता, मुहावरा-लोकोक्ति प्रयोग, स्वाभाविक, लाक्षाणीकता आदि को जो अपनाया हैं वह आज तक सर्वमान्य हैं।

संस्कृत उर्दू अंग्रेजी आदि भाषा के शब्दों के अपभ्रष्ट रूप उपन्यास में प्रयोग हुए है। इसका उदाहरण सहित व पृष्ठों की संख्या देकर अपनी प्रमाणिकता को अधिक सुस्पष्ट करते हैं। गोपाल राय कहते हैं "गोदान की भाषा के इस किंचित विस्तृत विवेचन

का निष्कर्ष यह है कि प्रेमचंद ने अपने औपन्यासिक संसार के निर्माण में भाषा के माध्यम से बहुत कुशल और रचनात्मक प्रयोग किया है। यह भाषा प्रेमचंद के रचना संसार को न केवल उसके सम्पूर्ण यथार्थता में प्रस्तुत करती है वरन् अपनी सर्जनात्मकता से उसे विशिष्ट स्वरूप भी प्रदान करती है। गोदान की भाषा में वर्णन की सटीकता और बिंबधर्मिकता, नाटक की तीव्रता और सहजता, भावांकन की सुक्ष्मपरकता और मूर्त क्षमता मनोविज्ञानिक विश्लेषण की स्पष्टता तथा कविता का संकेन्द्रण है।"[158]

'प्रेमचंद की उपन्यास कला' अध्याय में गोपाल राय ने उपन्यास विधा की विकसित कला यात्रा पर विचार किया है। उपन्यास की कला पर वे लिखते हैं कि "विश्व साहित्य में उपन्यास अपने विकास के उस सोपान पर पहुंच चुका है जहां कला की सारी मांगे और अपेक्षाएं उसकी भी मांगें और अपेक्षाएं बन गयी है। कुछ समय पूर्व (यूरोप में लगभग 200 वर्ष पूर्व और भारत में 100 वर्ष पूर्व) उपन्यास अनिवार्यत: मनोरंजन का सामान माना जाता था। यद्यपि आज भी उपन्यास अपने ढंग से पाठकों का मनोरंजन करता है। जिस प्रकार अन्य कोई कला अपने सदस्यों का मनोरंजन करती है पर मनोरंजन या मनबहलाव उपन्यास का लक्ष्य नहीं रह गया है। उपन्यास अब अपने को कला रूप में पूर्णत: प्रतिष्टित कर चुका है।"[159] 'प्रेमचंद की उपन्यास कला' विकास के विवेचन के प्रसंग में एक और बात का स्पष्ट कर देना आवश्यक है, प्रेमचंद ने 1900 ई. के लगभग उपन्यास लिखना आरम्भ किया और उनका अंतिम उपन्यास 'गोदान' 1936 में प्रकाशित हुआ। इस बीच की रचनाओं में प्रेमचंद की उपन्यास कला का समय विकास दिखाई देता है। 'गोदान' में प्रेमचंद उपन्यास कला अपने उत्कर्ष पर है।

'रंगभूमि' सन् 1924 ई. प्रेमचंद का सबसे बड़ा उपन्यास हैं। कुछ लोग इस उपन्यास को 'गोदान' से भी ऊँची रचना मानते हैं, परन्तु हम समझते हैं कि 'रंगभूमि' में 'गोदान' जैसी संवेदना की समानता नहीं पाई जाती। उनका बड़ा लकेवर ही उसके प्रभाव को बोखरा रहा हैं। इसमें संदेह नहीं कि प्रेमचंद की दृष्टी इस रचना में बहुत व्यापकता ली हुई हैं। इस उपन्यास में प्रेमचंद ने पहली बार देशी रियासतों की बिगड़ी स्थिति राजाओं के अत्याचार और अन्याय को प्रस्तुत करके इस ओर देश का ध्यान आकर्षित किया। देशी रियासतों में बेचारे किसानों की और भी बुरी अवस्था है। प्रेमचंद ने इस उपन्यास में पीड़ित प्रजा के साथ अपनी सच्ची सहानुभूति दिखाया हैं।

नामवर सिंह 'रंगभूमि' उपन्यास पर टीप्पणी करते हुए एक बड़ी महत्वपूर्ण बात कहीं है -"रंगभूमि उस दौर का आजादी की लड़ाई के उस दौर का इतिहास है, जब आजादी की लड़ाई प्रत्येक्षा रूप से नहीं चल रही थी। आंदोलन जी समय परती में था, सूरदास प्रेमचंद का सबसे लड़ाकू नायक हैं और कदाचित साहित्य में उसके जोड़ का को दूसरा होरी नहीं हैं। यही होरी तब सामने आया, जब राष्ट्रीय आंदोलन उतार पर था।"[160]

रंगभूमि पर आधारित आलोचनात्मक रचना 'रंगभूमि : पुनर्मुल्यांकन' यह गोपाल राय की महत्वपूर्ण पुस्तक है। प्रेमचंद द्वारा रचित उपन्यास 'रंगभूमि' रंगभूमि का महत्व स्पष्ट करते हुए अपने काल की सर्वश्रेष्ठ रचना मानी जाती है। गोपाल राय के शब्दों में देखें तो "रंगभूमि अपने काल के समस्त भारतीय कथा साहित्य में अद्विितियक है। अपने समय का जैसा व्यापक और यथार्थ चित्रण 'रंगभूमि' में हुआ है वैसा प्रेमचंद के अन्य किसी उपन्यास में नहीं मिलता वह मुझे कहने में तनिक भी संकोच नहीं भारतीय भाषा के किसी भी उपन्यास में दुर्लभ है 'रंगभूमि' सहीं अर्थों में अपने युग का दर्पण है। यों 'गोदान' को भी हम 'महाकाव्यात्मक' उपन्यास ही मानते हैं पर 'रंगभूमि' जितना महाकाव्य के निकट है उतना 'गोदान' नहीं।"[161] इस पुस्तक में कुल मिलाकर चार

अध्याय है। पहले अध्याय में लेखक ने 'रंगभूमि' को एक राजनीतिक उपन्यास के रूप में देखा है। दूसरे अध्याय का शीर्षक है 'उपन्यास में नायक की समस्या और रंगभूमि का सूरदास'। तीसरा अध्याय 'रंगभूमि' के कथाशिल्प पर है। और अंत के अध्याय में बहुत सटीक तरीके से 'रंगभूमि' का समग्र मूल्यांकन किया गया है। पूरी किताब में गोपाल जी एक सीधे अलोचक की तरह हमें नजर आते हैं। क्योंकि यह उल्लेखनीय है कि आलोचनात्मक किताब के लेखक के रूप में सिर्फ 'गोपाल' छपा है। इस नाम के साथ 'राय' नहीं है।

इस पुस्तक (रंगभूमि) में 1920-1930 की समय की सच्ची कहानी है। 'रंगभूमि' में चित्रित 1920-1930 का भारतीय जीवन राष्ट्रीय संघर्ष और जीवन दर्शन बिल्कुल आकार हो गया है। गोपाल राय के अनुसार 'रंगभूमि' भी पहले उर्दू में 'चौगाने हस्ती' शीर्षक से लिखा गया पर प्रकाशित हुआ पहले हिंदी में। गोपाल राय का कहते हैं कि जहाँ तक मेरी जानकारी है प्रेमचंद विषयक आलोचना और शोध-ग्रंथों में 'रंगभूमि' का विवेचन तो हुआ है पर 'रंगभूमि' पर पहली स्वतन्त्र पुस्तक दो वर्ष पूर्व (1981) में प्रकाशित डॉ. कमलकिशोर गोयनका कृत 'रंगभूमि : नये आयाम' ही है। रंगभूमि : नये आयाम को पढ़कर गोपाल राय ने अपनी ओर से 'रंगभूमि का मूल्यांकन' करने की ठान ली और वह उन्होंने 'रंगभूमि: पुनर्मुल्यांकन' के माध्यम से बहुत सही व सटीक दृष्टी से विवेचन कर दिखाया है। उसका निम्नलिखित रूप से विवेचन किया जा सकता है।

'रंगभूमि: पुनर्मुल्यानक' कुल मिलाकर 60 पुष्टों की पुस्तक है। और उसमें चार अध्यायों में अलग-अलग बिन्दुओं को लेकर मूल्यांकन किया गया है। 'रंगभूमि: एक राजनीतिक उपन्यास', 'उपन्यास में नायक की समस्या और रंगभूमि का सूरदास',

‘रंगभूमि का कथ्य एवं शिल्प’, ‘रंगभूमि मूल्यांकन’ आदि बातों गोपाल राय ने पर विचार किया है। वह इस प्रकार है।

‘रंगभूमि : एक राजनीतिक उपन्यास’ शीर्षक में भारत की 1920-1930 में राजनीतिक आंदोलन व स्वाधीनता संग्राम का चित्रण हुआ है। गोपाल राय ने ‘रंगभूमी’ उपन्यास को राजनीतिक उपन्यास मानकर उस समय की राजनीतिक घटनाओं का समाज पर किस प्रकार का प्रभाव दिखाई दिया है उसका चित्रण करते हैं। “1920 ई. में ही गांधी जी ने मोतीलाल नेहरु, देशबंधु, चितरंजनदास और लाला लजपत राय के सहयोग से सत्याग्रह आंदोलन आरम्भ कर दिया था। इस आंदोलन के कुछ महत्वपूर्ण मुद्दे थे स्वदेशी का प्रचार विदेशी वस्तुओं तथा सरकारी स्कूलों-कॉलेजों और सरकारी नौकरियों का परित्याग, अदालतों तथा कौंसिल का बहिष्कार, राष्ट्रीय विद्यालयों महाविद्यालयों की स्थापना, अस्पृश्यता निवारण, सांप्रदायिक एकता कार्य करना आदि।”[162]

यह समय गांधी जी का समय था जिसकारण राजनीतिक घटनाओं में बहुत सी गंभीरता भी आयी। गांधी जी ने देश में आंदोलन चलाये और एकता कायम रखने की कोशिश की। परन्तु कुछ कारणों से राजनीतिक में कई गठ निर्माण हुए जैसे - “गांधी जी ने फरवरी 1922 में वारदोली में सविनय अवज्ञा आंदोलन आरम्भ करने की घोषणा की। पर इसी बीच 2 फरवरी को ‘चौरा चौरी कांड़’ हो गया और गांधी जी ने आंदोलन वापस ले लिया। आंदोलन के अचानक वापस ले लिये जाने के फलस्वरूप राष्ट्रीय मुक्ति संग्राम में कर्तव्य विमूढ़ता की स्थिति पैदा हो गयी। कांग्रेस के नेता दो दलों में बट गए। एक दल उन लोगों का था जो असहयोग और बहिष्कार के कार्यक्रम को जारी रखना चाहते थे। दूसरा दल उन नेताओं का था जो काउन्सिलों का चुनाव लड़ने के पक्ष में थे।”[163] इस कारण प्रेमचंद ने राजनीतिक पक्षों में आपसी गुट निर्माण करके देश में

अराजकता सांप्रदायिकता का माहौल पैदा करने वाले पक्षों का विरोध तो नहीं किया परन्तु उसका चित्रण जरुर किया है। 'रंगभूमि' का रचना-काल 1922-24 ई. है और प्रेमचंद ने इस समय की राजनीतिक स्थिति को उपन्यास में दिखाने का प्रयास किया है।

प्रेमचंद ने अपने समय के राजनीतिक यथार्थ का चित्रण उसकी समस्त जटिलता, गहराई और व्यापकता में किया है। उल्लेखनीय है कि प्रेमचंद खुल्लम-खुल्ला अंग्रेजी सरकार के खिलाफ बगावत नहीं करते कदाचित उनकी पारिवारिक परिस्थितियाँ और मानसिकता उसके अनुकूल नहीं थी। सामाजिक संस्था में किस राजनीतिक संस्था में इसका चित्रण प्रभु सेवक और अन्य पात्रों के द्वारा करते हैं। "सेवा समिति का नायक बनते ही प्रभू सेवक उसे राजनीतिक संस्था बना देता है। कथाकार के अनुसार 'अब तक इस संस्था का कार्य क्षेत्र सामाजिक या मेलों टलों में यात्रियों की सहायता बाढ़ बुडे में पीडितो का उद्धार, सूखे क्षुरे में विपत्ति के मारे दुओं का कष्ट निवारण ये ही उसके मुख्या विषय थे। प्रभू सेवक ने इसका कार्यक्षेत्र विस्तृत कर दिया। इसकों राजनीतिक रूप दे दिया। यद्यपि उन्होंने कोई नया प्रस्ताव न किया किसी परिवर्तन की चर्चा तक न की पर धीरे-धीरे उनके असर से नये भावों का संचार होने लगा'।"[164] प्रेमचंद के राजनीतिक समझ और राजनीतिक यथार्थ के विश्लेषण की क्षमता उस काल के अधिकांश नेताओं की तुलना में कहीं अधिक प्रखर थी। इसी कारण रंगभूमि एक सफल राजनीतिक उपन्यास के रूप में सामने आता है।

'उपन्यास में नायक की समस्या और रंगभूमि का सूरदास' अध्याय में रचना में नायक की स्थिति व समस्या को लेकर विचार किया गया है। वैसे तो नायक को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखना आवश्यक है। भारत में बहुत प्राचीन काल से संस्कृत महाकाव्यों और नाटकों में नायक का शीर्ष स्थान रहता है। "आदि कवि वाल्मीकि से लेकर मध्यकालीन कवि गोस्वामी तुलसीदास तक के संस्कृत-हिंदी साहित्य में नायक

अपने गौरवपूर्ण पद पर प्रतिष्ठित रहा है इस बीच काव्यशास्त्रियों ने भी नायक को परिभाषित करने के अनेक प्रयास किये।"[165] इसे और अधिक स्पष्ट करने के लिए गोपाल राय के विचारों को देखना होगा। "पाश्चात्य साहित्य में भी प्राक् आधुनिक युगीन साहित्य में नायक (होरी) की लगभग यही स्थिति थी। होमर के महाकाव्यों के नायक अमानवीय शक्ति साहस और क्षमता से युक्त देवताओं के प्रिय मनुष्य है परवर्ती महाकाव्यों और नाटकों के नायक भी असाधारण वीर, योद्धा, त्यागी, साहसी, देशभक्त, विवेकशील आदि अनेक मानवीय गुणों से युक्त प्रस्तुत किये गये है। और अंग्रेजी शब्द कोशों तथा आलोचना-ग्रंथों में होरी की परिभाषा इन्हीं मानवेतर गुणों के सजीव विग्रह के रूप में की गयी है।"[166]

उपर्युक्त 'नायक' (होरी) संबंधी धारणा प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल के पूर्व तक सारे संसार में एक ही समान रूप में प्रचलित रही। लेकिन आधुनिक काल के आगमन से ही नायक विषयक प्राचीन कालीन धारणा में गहरा परिवर्तन हो गया। आधुनिक काल में समाज का सामंती ढांचा पहले ढीला हुआ और बाद में बिखर गया। यद्यपि समाज के भिन्न-भिन्न भागों में सामंतवादी व्यवस्था के पतन के भिन्न-भिन्न अवस्थाएँ रही। कहीं इसका पतन जल्दी हुआ तो कहीं बाद में, कहीं इसका स्थान पूँजीवाद ने लिया, कहीं साम्रज्यवाद ने और कहीं समाजवाद ने। पर देर सबेर संसार के अधिकांश भागों से सामंतवादी व्यवस्था का खात्मा हो गया। इसका असर नायक विषयक परिकल्पना पर स्वाभाविक रूप से पड़ा। सामंती व्यवस्था में राजा या सामंत ही साहित्य का संरक्षक या पोषक था। अत: साहित्य में प्राय: वही, नायक भी हुआ करता था। सामंत ही समाज का नेता और आदर्श थे और नायक भी सामंत का होता था। उस समय का साहित्य जनता के सुख: दु:ख का साहित्य नहीं सामंती रूचि और संवेदना का साहित्य था। अत: साहित्य में नायक की परिकल्पना सामंती रूचि और

संवेदना के अनुरूप ही होती थी। बाद में मध्यवर्ग के आते ही नायक की भूमिका में मध्यवर्ग सामने आया। गोपाल राय बताते हैं "परिणामस्वरूप वे प्रमाणिकता के साथ इस वर्ग से अपने उपन्यासों के नायकों का चुनाव करने में समर्थ हुए। धीरे-धीरे समाजवादी धारा का प्रसार हुआ और तब उपन्यास लेखकों ने निम्नवर्गीय जीवन को भी अपने उपन्यासों का विषय बनाना शुरू किया और आम आदमी भी अपनी सारी कमजोरियों और साधारणताओं के साथ उपन्यास का नायक बनने लगा। इसी बीच कुछ मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों ने असामान्य चरित्र वाले व्यक्तियों को अपने उपन्यासों का नायक बनाकर उनके मनोविश्लेषण का भी प्रयास किया।"[167]

गोपाल राय ने आश्चर्य व्यक्त करते हुए कहा "नायक के चुनाव में हिंदी कथाकारों ने बिल्कुल शुरू में ही मौलिक क्रांतिकारी दृष्टिकोण का परिचय दिया है। प्राचीन का प्रबंध काव्यों नाटकों और गद्य काव्यों में स्त्री को नायक का पद नहीं प्राप्त होता था। पर हिंदी के पहले ही उपन्यास पं. गौरीदत्त कृत 'देवरानी जेठानी की कहानी' 1870 ई. में ही एक मध्यवर्गीय नारी को प्रमुख पात्र बनाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। हिंदी के दूसरे उपन्यास 'भाग्यवती' 1877 ई. में भी प्रमुख पात्र का स्थान स्त्री को ही मिला बाद में प्रेमचंद जैनेन्द्र अज्ञेय यशपाल अन्य अनेक उपन्यासकारों ने स्त्री को उपन्यास का प्रमुख पात्र बनाया जो नायक विषयक असाधारण को बदलने में सहायक हुआ।"[168]

पर निम्न वर्ग के अत्यंत साधारण आदमी को अपने कथानायक के रूप में चुनने का पूरा श्रेय मुंशी प्रेमचंद को ही जाता है। इस प्रसंग में 'रंगभूमि' के सूरदास और 'गोदान' के होरी का विशेष उल्लेख आवश्यक है। इसके पहले हिंदी के किसी भी उपन्यासकार ने इस प्रकार के तुच्छ उपेक्षीय अतिसाधारण आदमी को उपन्यास का नायक नहीं बनाया था। गोपाल राय ने बताया कि "प्रेमचंद ने अपने कथानायक सूरदास को विशेष चरित्र प्रदान करने का प्रयास किया है। वह जातिगत शारीरिक और

आर्थिक दृष्टी से साधारण होने पर भी चरित्र की दृष्टी असाधारण और महान है। ऐसा लगता ही कि प्रेमचंद की नायक विषयक धारणा मूल रूप से नहीं बदली है वे जैसे यह मानते प्रतीत होते हैं कि नायक को जाति और वर्ग की दृष्टि से नहीं तो चरित्र की दृष्टी से तो महान होना चाहिए। पर अपने अभिन्न उपन्यास 'गोदान' में वे अपनी नायक विषयक अवधारणा में क्रांतिकारी परिवर्तन लाते हुए दिखाई पड़ते हैं। गोदान का होरी सूरदास जितना साधारण तो नहीं हैं। है वह भी साधारण ही जाति का महतो अनपढ़ केवल तीन बीघे जमीन का किसान पर प्रेमचंद ने उसके चरित्र को सूरदास की तरह महान या उदात्त बनाने की कोशिश नहीं की है। वह अपनी समूची साधारण में ही उपन्यास का नायक बनने में समर्थ हुआ है।"[169] इस प्रकार 'रंगभूमि' उपन्यास के सूरदास नायक को नायक विषयक दृष्टी से देखना आवश्यक है।

सूरदास 'रंगभूमि' उपन्यास का नायक है जिसे हम केंद्रीय पात्र भी कह सकते हैं। लेकिन गोपाल राय ने उसे शास्त्रीय दृष्टी से नायक कहना कदाचित सहीं नहीं समझा है। परन्तु वह उपन्यास का मुख्य या केंद्रीय पात्र एचआई है। केंद्रीय पात्र इसलिए है कि उस रचना की कथा केंद्रीय पात्र के हमेशा समिप्त होती है। प्रेमचंद ने यह अच्छी तरह समझ लिया था कि यह सामंतों का वह युग था जब साहित्य के नायक राजकुमार या उसके समकक्ष सामंत ही हुआ करते थे। उपन्यास आधुनिक युग की साहित्य विधा है जिसमें आदमी, निम्न और मध्यवर्ग की जिन्दगी सामंत वर्ग या उच्चवर्ग से किसी भी कदर से महत्व की नहीं मानी जाती। प्रेमचंद ने रंगभूमि में एक अति साधारण आदमी को उपन्यास के नायक का दर्जा दिया है। वह आदमी सूरदास है। सूरदास जाति से समाज के सबसे उपेक्षित वर्ग हरिजन से है। शरीर से अपंग, अँधा, शैक्षिक दृष्टी से निरक्षर और आर्थिक दृष्टी से भिखमंगा है। प्रेमचंद ने सूरदास जैसे सर्वसाधारण पात्र को महाकाव्यात्मक उपन्यास का नायक बनाकर आधुनिक प्रगतिशील परिवर्तनशील दृष्टिकोण का परिचय दिया है। गोपाल राय का मानना है कि "सूरदास की पृष्ठभूमि

जितनी साधारण है उसका चरित्र उतना ही विशिष्ट है। कदाचित प्रेमचंद अब तक यह मानते थे कि पात्र चाहे जिस वर्ग का हो नायक बनने के लिए अपने चरित्र का महान होना आवश्यक है। इस कारण सूरदास आर्थिक, सामाजिक, शैक्षिक, शारीरिक दृष्टी से अति साधारण होने पर भी चरित्र की दृष्टी से महान है।"[170] कहा जाता है कि दृढ संकल्प और आत्मविश्वास साधारण व्यक्ति को भी महान बना देता है। इस चरित्र में सूरदास का व्यक्तित्व सम्मिलित है।

गोपाल राय के अनुसार "सूरदास के चरित्र में दोनों गुण भरपूर मात्रा में विद्यामान है। मि. जान सेवक सूरदास की जमीन सिगरेट का कारखाना लगाने के लिए लेना चाहते हैं। सूरदास अपनी जमीन बेचने के लिए तैयार नहीं है। उसका संकल्प है- मेरे जीते जी तों जमीन नहीं मिलेंगी। हाँ मर जाऊ तो भले ही मिल जाए। सूरदास इस संकल्प से कभी डिगता नहीं। एक बार अपने पड़ोसियों द्वारा अपमानित होने पर वह जमीन बेच देने की बात सोचता है पर तुरंत ही उसे अपनी कमजोरी का भान हो जाता है और वह अपने निश्चाय पर ड़ट जाता है। एक बार पुन: हम उसे कहते पाते हैं - अगर जमीन जाएगी तो उसके साथ मेरी जान भी जाएगी।"[171] ऐसे सूरदास दृढ़ संकल्प रखनेवाला धन का लोभी नहीं है साथ ही वह साधन की पवित्रता में विश्वास रखता है। इतना ही नहीं बल्कि सूरदास दुश्मन से भी प्यार करने की क्षमता रखता है। सूरदास के चरित्र का विकास उपन्यास के ही पात्र मि. गांगुली करते हुए नजर आते हैं। वे कहते हैं कि, "सूरदास अभी नहीं मरेगा बहुत दिनों तक नहीं मरेगा! हम सब मर जायेंगे, कोई काल कोई परसों पर सूरदास अमर हो गया। उसने तो काल को जित लिया। उसका जीवन पंचभूतों को संस्कार से सिमित था। अब वह प्रसादित होगा समस्त प्रान्त को समस्त देश को जागृति प्रधान करेंगा हमें कर्मव्यता का वीरता का आदर्श बनाएगा। यह सूरदास की मृत्यु नहीं है। सिर्फ उसकी जीवन ज्योति का विकास है।"[172] सूरदास न

केवल प्रेमचंद द्वारा रचित हिंदी कथा साहित्य का ही नहीं बल्कि समस्त भारतीय कथा साहित्य का एक अविस्तार्निय पात्र है।

'रंगभूमि' का कथा शिल्प' अध्याय में रंगभूमि की कथावस्तु को लेकर बात की है। इस उपन्यास का केंद्रीय विषय क्या है? इसका उद्देश समाज में क्या है? और इस कृति द्वारा समाज को क्या सन्देश मिलना चाहिए? यह कथा वस्तु की विशेषताओं से पता चलता है। 'रंगभूमि' में चित्रित उपर्युक्त विषय से संबंधित कथा गोपाल राय के अनुसार इस प्रकार है "जहाँ तक 'रंगभूमि' का चित्रण है यद्यपि समसामाजिक परिस्थितियों और अपनी व्यक्तिगत सीमाओं के चलते प्रेमचंद ने इस विषय को थोड़ा मंद/डंकहीन कर दिया है। पर जैसा हम पहले अध्याय में देख चुके है उनका मुख्य उद्देश स्वाधीनता संग्राम का चित्रण ही है। इसके लिए उपन्यास में सूरदास और जान सेवक के संघर्ष को प्रमुख कथा के रूप में प्रस्तुत किया है। ऊपर से देखने पर सूरदास और जान सेवक का संघर्ष शुद्ध आर्थिक संघर्ष जान पड़ता है। पर इस संघर्ष में सूरदास के खिलाफ जो भारत की आम जनता का प्रतीक बन गया है। पूंजीवादी सामंतवादी और साम्रज्यवादी शक्तिया एकजुट हो जाती है और उनसे टक्कर लेने के लिए सूरदास के साथ भी जनता और उसके नेता प्रतिबद्ध हो जाते हैं। इस प्रकार यह संघर्ष राष्ट्रीय संग्राम की शक्ल ले लेता है। इस संग्राम में सूरदास और जान सेवक के साथ देर सबेर उपन्यास के सभी प्रमुख पात्र और सैकड़ों गौण पात्र जनमें अधिकांश बिना नाम के है शामिल हो जाते हैं।"[173]

'रंगभूमि : पुनर्मुल्यांकन', पुस्तक में गोपाल राय ने एक-एक पात्र की कथा को दर्शया है जो रंगभूमि उपन्यास में महत्व रखते हैं। उपन्यास में चित्रित कथा को पृष्ठों के साथ उदहारण देते हुए कथा को बताने की कोशिश की है। इस सन्दर्भ में गोपाल राय का लिखते हैं "सूरदास और जान सेवक की यह संघर्ष कथा प्रथम परिच्छेद से 46 वे

परिच्छेद तक लगभग 33 परिच्छेदों में प्रस्तुत की गई है। उपन्यास में कुल 66 प्रतिशत अंश में फैली हुई है।"[174] मुख्य कथा के साथ-साथ गोपाल राय ने अन्य पृष्ठ संख्याओं की भी आलोचना की है। "प्रथम दो परिच्छेदों में (पृ.1-20) सूरदास और ज्ञान सेवक की संघर्ष कथा जन्म लेती है। तीसरे परिच्छेद में जान सेवक में परिवार की कथा आरम्भ होती है और उसी में राकी, जानध्वी, कुंवर भारत सिंह, डॉ. गांगुली, विनय आदि द्वारा स्थापित सेवक दल की कथा आरम्भ हो जाति है। परिच्छेद 9.7 में सूरदास - जान सेवक की संघर्ष कथा है। परिच्छेद 8.9 में मुख्यत: सेवक दल की कथा है। जिनमें सोफिया विनय की प्रेमकथा भी जन्म लेती है।"[175]

अंतिम अध्याय 'रंगभूमि : मूल्यांकन' में उपन्यास 'रंगभूमि' के विविध पहलुओं को लेकर मूल्यांकन किया गया है। कथा, महाकाव्य, पात्र, चरित्र, उपन्यास शिल्प आदि बातों पर आलोचनात्मक दृष्टी से मूल्यांकन किया गया है। उपन्यास की कथा को लेकर कोई संदेह नहीं है। एक मुख्य कथा है और इसके साथ ही कई ओर अनेक कथाएं चलती रहती है। रंगभूमि को गोदान की तरह महाकाव्यात्मक व्यवस्था मानते हुए गोपाल राय ने मूल्यांकन किया है "गोदान की तरह यह भी महाकाव्यात्मक उपन्यास है। बल्कि यह कहना कहीं ज्यादा संगत होगा कि महाकाव्य संबंधी परंपरागत कसौटी पर 'रंगभूमि' 'गोदान' की तुलना में महाकाव्य के अधिक निकट है।"[176]

'रंगभूमि' अपने समय की सर्वाधिक समस्याओं और व्यापक प्रश्नों को लेकर गोदान से कहीं अधिक गहराइयों तक जाकर जुड़ता है। प्रेमचंद ने स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व की भारतीय जीवन की सबसे बड़ी समस्या स्वतंत्रता प्राप्ति की थी। उसी समस्या को उपन्यास में उठाकर तत्कालीन युग की धड़कनों की आवाज सुनने व चित्रित करने का महत्वपूर्ण प्रयास किया है। 'रंगभूमि' का मूल्यांकन करके आलोचक ने हिंदी आलोचना

के लिए महत्वपूर्ण योगदान दिया है। महाकाव्यात्मकता, नायक, पात्र और शिल्प को लेकर नई दृष्टी निर्माण की है जो हिंदी पाठकों के लिए दिशा प्रदान करती है।

'शेखर: एक जीवनी मूल्यांकन' यह पुस्तक गोपाल राय द्वारा रचित आलोचनात्मक पुस्तक है। इस पुस्तक का प्रकाशन सन् 1975 में 'अनुपम प्रकाशन' पटना से हुआ। इस पुस्तक का मूल उद्देश यह है कि इसमें अज्ञेय के जीवन का परिचय और 'शेखर एक जीवनी' उपन्यास के पहलुओं को महत्व देते हुए उनका विश्लेषण किया गया है। 'शेखर एक जीवनी' 1940 भाग एक और 1944 में भाग दो अज्ञेय द्वारा रचित उपन्यास है। अगर अज्ञेय के रचनात्मक विकास को देखा जाएँ तो उन्होंने साहित्य के सभी विधाओं में रचनाएँ की है।

इस पुस्तक में 'अज्ञेय का जीवन और परिचय' प्रथम अध्याय में दिया गया है और उसके बाद 'शेखर : एक जीवनी' उपन्यास का आलोचनात्मक विवेचन किया गया है। "मध्य वित्तीय संस्कृतज्ञ परिवार में अज्ञेय का जन्म 7 मार्च 1911 में उत्तर प्रदेश के देवरिया जिले के कसिया नामक स्थान पर हुआ।"[177] अज्ञेय का पूरा नाम सच्चिदानंद हीरानंद वात्सायन है। उनका परिवार सम्पन्नता पूर्ण था। उनके पिता पुरातत्व विभाग में नौकरी करते थे। अज्ञेय की शिक्षा-दीक्षा पूरी परंपरानुसार और पद्धति से हुई जिसमें बच्चों को विभिन्न प्रकार के मंत्र, श्लोक व्याकरण आदि जबानी याद कराये जाते थे।

गोपाल राय से लेकर इस उपन्यास पर कई आलोचक ने लेखनी चलायी है। फिर भी साहित्य में सर्वाधिक विवादित उपन्यास यही रहा है। इसका कारण बताते हुए ए. अरविन्दाक्षण लिखते हैं कि "इसमें प्रेम संकल्प का एक नया सन्दर्भ विवृत होता है। शेखर के व्यक्तित्व को रूपायित करने में उपन्यास में उल्लेखित प्रेम संबंधों का योगदान हैं। याने शेखर ने किस प्रकार अलग-अलग प्रेम व्यापारों को देखा है। जो भी हों उसमें एक खुलापन है या सहजता है या तीक्ष्णता है। परम्परावादी आलोचकों को यह

खुलापन रुचा नहीं और उनकी दृष्टी में वह प्रकृतिवादी चित्रण है। प्रेम का यह खुलापन कहना यह बेहतर होगा भारतीय उपन्यास के लिए नया है।"[178] इस तरह परम्परावादी आलोचकों ने प्रेम सम्बंधित हिंदी उपन्यासों को हमेशा ही विवादों के घेरे में रखा हैं। अत: शेखर एक जीवनी इसका अपवाद है।

'शेखर: एक अधूरी कृति' अध्याय में इस उपन्यास को पूर्ण नहीं माना गया कारण 'आत्मानेपद' में लेखक ने स्वयं लिखा है "शेखर के तीसरे भाग में चित्र पूरा हो जाता है पर वह अभी तक प्रकाशित नहीं हुआ है।"[179] सही बात है अभी तक तीसरा भाग प्रकाशित नहीं हुआ है। उपन्यास के दूसरे भाग के अंत तक जाने जाते शेखर आतंकवादियों के दल में शामिल हो जाता है जिसकी परिनिति प्राणदेय के रूप में स्वाभाविक है। पर यहाँ उपन्यासकार के लिए कला के रूप में सबसे बड़ी चुनौती उपस्थित है। पहले और दूसरे भागों में उन कारणों, परिस्थितियों, मन:स्थितियों का विश्लेषण है जिन्होंने शेखर को विद्रोही, क्रांतिकारी बनाया। पर वह कैसे क्रन्तिकारी बना यह जानना हमारे लिए बाकि ही रह जाता है। प्रथम दो भागों में उसकी कोई स्पष्ट और प्रभावी मूर्ति हमारे समक्ष उपस्थित नहीं हो पाती है।

'शेखर: एक जीवनी या उपन्यास' शीर्षक अध्याय में इस रचना को जीवनी कहें या उपन्यास यह प्रश्न हमारे सामने आता है। लेकिन इसका जवाब गोपाल राय दे देते हैं। उन्होंने कई सन्दर्भ देकर आलोचना की है। यह प्रश्न इसलिए उपस्थित होता है कि शेखर व अज्ञेय के बीच समानता दिखाती है। "नाम को ही ले, शेखर पूरा नाम चंद्रशेखर हरिदत्त पंडित है और अज्ञेय पूरा नाम सच्चिदानंद हीरानंद वास्त्यायन है। शेखर के पिता पुरातत्वज्ञ थे और अज्ञेय के पिता भी पुरातत्वज्ञ और पुरालेखों के विशेषज्ञ थे। अज्ञेय के पिता के नौकरी के सिलसिले में देशभ्रमण करना पड़ता था। शेखर के पिता का भी तबादला कश्मीर, लाहौर, लखनऊ, सारनाथ, पटना आदि स्थानों पर होता रहता

यद्ध्यपी प्रस्तुत पंक्तियों के लेखक को अज्ञेय के सम्बन्ध में विशेष जानकारी नहीं है पर जो भी थोड़ी बहुत परकीय या सेकंडरी जानकारी है। उसके अनुसार शेखर और अज्ञेय के पोशाख की विवरणिका काफी मेल खाती है। अज्ञेय भी सशस्त्र क्रांति में हिस्सा लेते हैं और शेखर भी जेल जाते हैं। दोनों का डीलडौल और चरित्र बहुत कुछ सामान है।”[180]

ऐसी बहुत कुछ समानताएँ है परन्तु जीवनी और उपन्यास में अंतर होता है। इस रचना में उपन्यास के तत्त्व अधिक स्पष्ट रूप से सामने आते हैं। इसलिए इस रचना को गोपाल राय उपन्यास मानकर चलते हैं। “शेखर बचपन से ही अंतर्मुखी है चिन्तलशील है। अपने चारों ओर के वातावरण से निराश होकर वह और भी स्वनिष्ठ होता जाता है। वह अनुभव करता है कि वह अकेला है। मैं अकेला इसलिए हूँ कि मैं उस प्रकार का नहीं हूँ, जिसे लोग अच्छा कहते हैं, मैं पढ़ता नहीं हूँ, ढीठ हूँ, लड़ाकू हूँ, शैतान हूँ। इस प्रकार बाहरी जगत सहानुभूति बचाकर वह स्वकेंद्रित है एक जीता जागता औपन्यासिक पात्र है। इसी कारण ‘शेखर : एक जीवनी’ को जीवनी न मानकर उपन्यास मानना संगत हैं।”[181]

‘शेखर: एक जीवनी’ का प्रतिपाद्य यह है कि शशि और शेखर के प्रेम प्रसंग को आलोचकों ने अश्लील व अनैतिक माना है। इस पर गोपाल राय टिप्पणी देते है, ‘प्रथम तो नैतिकता के जो मापदंड़ है वे समय काल और परिस्थिति सापेक्ष हैं। शेखर शशि के बीमार होने के बावजूद चूमता है यह घनिष्ठ प्रेम का द्योतक है वासना का नहीं’। ऐसे प्रेम को अश्लीलता कहने वाले आलोचकों को गोपाल राय पूर्वाग्रह से ग्रस्त मानते हैं।

इस के साथ ही आलोचक गोपाल राय ने इस उपन्यास के शिल्प को लेकर कई बातें रखी है। मोटे तौर पर इसे फ्लैशबॅक (पूर्वदीप्ति) शैली का उपन्यास कहा गया है। इसमें शिल्प की दृष्टी से अनेक कमियाँ है फिर भी गोपाल राय का यह मत उनकी रचनाधर्मिता को स्पष्ट करता है। वे कहते हैं, “सामान्य मनोविज्ञान और मनोविश्लेषण

शास्त्र के गंभीर अध्ययन तथा पाश्च्यात्य मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की शिल्प प्रविधि से प्रेरणा और दिशा ग्रहण कर अज्ञेय ने 'शेखर : एक जीवनी' की रचना की जो कई दृष्टियों से अपूर्ण और त्रुटिपूर्ण होने पर भी अपनी विशिष्टता में अपने स्थान पर ज्यों का त्यों अवस्थित है और कोई दूसरी कृति उसका स्थान अब तक नहीं ले पायी है। उससे आगे जाने की बात तो दूर रही। हिंदी उपन्यास के इतिहास में अज्ञेय का नाम केवल 'शेखर : एक जीवनी' को लेकर ही अमर रहेगा।"[182]

हिंदी में मनोवैज्ञानिक उपन्यासों को प्रौढ़ रूप देने का श्रेय भी अज्ञेय को ही है। अज्ञेय में कई बातें एक साथ दिखाई पड़ती है जो मिल-जुलकर एक अलग सौष्ठव का निर्माण करती है। अज्ञेय में मनोविश्लेषण की गहन क्षमता है। जागृत और सुक्ष्म सौन्दर्यबोध है। कला के प्रति ईमानदारी की चेतना है और अनुकूल शिल्प-सृष्टि करने की शक्ति है। मानना होगा कि वे मनोवैज्ञानिक सत्यों को प्रतीति कराने के लिए ही गढ़े गए है। लेखक ने पात्रों के अंतरसत्यों का विश्लेषण करने के लिए मनोविज्ञान की दृष्टी को स्वीकारा है जीवन की अनुभूतियाँ जीवन से ही ली गई है।

अंत में आलोचक ने इस उपन्यास की भाषा पर भी विचार किया गया है। इस उपन्यास की भाषा सर्वत्र व्याकरण, अर्थविज्ञान और काव्यशास्त्र आदि विशेषताओं लेकर उभरी है। जो काव्य के निकट जाती है।

'मैला आँचल' उपन्यास फणीश्वरनाथ रेणु द्वारा रचित है यह उपन्यास आंचलिक उपन्यासों की शुरुआत करने वाला उपन्यास साबित होता है। यह ऐसा विशिष्ट प्रारंभ माना जायेगा जिसने एक तो नयी विधा का नामकरण किया और दूसरी तरफ उसी विधा में ऐसी कृति साहित्य को दी जिसने अछूती दुनिया का हर कोना उजागर किया। साथ ही नये प्रश्नों संभावनाएं और नई दिशा प्रदान की है। डॉ. मुफख्खर एहतिशाम जुबैरी ने 'मैला आँचल' को लेकर लिखा है "स्वातंत्रोत्तर साहित्यिक प्रवृत्ति के रूप में आंचलिकता एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। आंचलिक साहित्य में आँचल जीवन अपने

सजीव एवं नैसर्गिक रूप में सम्पूर्ण सौंदर्य और कुरुपुता के साथ प्रकट हो जाता है। उसमें अनुभव की सघनता एवं प्रमाणिकता सामाजिकता का संस्पर्श करके लोक जीवन की साक्षी बन जाती है। आंचलिक उपन्यास आँचल विशेष के समग्र जीवन को रूपायित करता है। उसमें सम्पूर्ण परिवेश के उल्लास दुख-सुख व्यथा एवं आशा की महागाथा साकार होती है।"[183] ठीक उसी प्रकार गोपाल राय ने 'मैला आँचल' का ऐतिहासिक महत्व सिद्ध किया है। "हिंदी उपन्यास के इतिहास' में आंचलिक उपन्यास की अवधारणा 'मैला आँचल' के प्रकाशन के बाद ही विकसित हुई! इस पद का प्रयोग भी प्रथम बार संभवत: रेणु ने ही 'मैला आँचल' की भूमिका में किया है।"[184] "यह है मैला आँचल एक आंचलिक उपन्यास। कथांचल है पूर्णिया। पूर्णिया बिहार राज्य का एक जिला है।....मैंने इसके एक हिस्से के एक ही गाँव को-पिछड़े गाँवों का प्रतीक मानकर इस किताब का कथाक्षेत्र बनाया है।"[185] इस उद्धरण पर गोपाल राय अपनी दो बातें रखते हैं। एक कथाक्षेत्र का पिछड़ापन और दो गाँव से उसका अनिवार्य संबंध। ऐसी कई बाते हैं जो 'मैला आँचल' उपन्यास के बारे में सामने रखी है जिसे देखने की आवश्यकता है।

'उपन्यास की पहचान मैला आँचल' गोपाल राय द्वारा लिखित एक समीक्षात्मक किताब है। इस में 'मैला आँचल', उपन्यास की आंचलिक, आवधारण हिंदी उपन्यास विधा की योगदान प्रणाली के सामने रखी है। इस रचना में आंचलिक उपन्यास की विविध विशेषताएँ स्पष्ट की गयी है। नायक, पात्र, भाषा और कथा को आंचलिकता में जोड़कर देखा गया है। जिसको आगे स्पष्ट रूप से देखा जायेगा। गोपाल राय ने 'मैला आँचल' उपन्यास की आलोचना कई अध्यायों में की है। वह है 'प्राथमिकी', 'आंचलिक उपन्यास की आवधारणा और हिंदी उपन्यास', 'रेणु की उपन्यास यात्रा', 'कथ्य और

शिल्प', 'पात्र योजना - भाषा', 'रेणु के उपन्यासों का प्रकाशन काल' 'संदर्भ ग्रन्थ' आदि। इस तरह से 'मैला आँचल' उपन्यास को सभी प्रकार के आयामों के द्वारा हमारे सामने प्रस्तुत किया है।

'प्राथमिकी' में उन्होंने अपनी पुस्तक 'उपन्यास की पहचान मैला आँचल' को किस तरह सजाया है आदि पक्षों को हमारे सामने रखा है इसका दो-ढाई पन्नों में स्वयं के विचार व्यक्त किये है।

दूसरा अध्याय 'आंचलिक उपन्यास की अवधारणा और हिंदी उपन्यास' में गोपाल राय 'मैला आँचल' से ही आंचलिक उपन्यास की अवधारणा का विकास या प्रारंभ मानते हैं। रेणु के पहले हिंदी में गाँव का चित्रण बहुत सारे उपन्यासों में देखने को मिलता है पर वह आंचलिक उपन्यास नहीं माने जा सकते। तो फिर आंचलिक उपन्यास किसे माने और उसे कैसे पहचाने? यहाँ गोपाल राय आंचलिक उपन्यास की पहचान के कई आधार प्रस्तुत करते हैं, "आंचलिक उपन्यास की पहचान के कई आधार हो सकते हैं। एक पहचान नायक की स्थिति से बनती है। उपन्यास ने नायक की अवधारणा महाकाव्य और नायक से ली थी। पर विकास का प्रक्रिया में नायक उपन्यास से धीरे-धीरे निष्कासित होता गया और उसके स्थान पर सामान्य स्तर के पात्र केंद्र में अवस्थित होते हैं। हिंदी में प्रेमचंद के ही उपन्यासों से ही नायक संबंधी अवधारणा में भारी परिवर्तन होता दिखाई देने लगता है। 'सेवासदन' और 'निर्मला' में स्त्री-पात्रों ने केंद्रीयता प्राप्त की पुराने महाकाव्यों और नाटकों में नायिका-नायक की पत्नी या प्रेयसी ही हो सकती थी। 'सेवासदन' और 'निर्मला' में उन्हें स्वतंत्र स्थान प्राप्त हुआ। 'रंगभूमि' और 'गोदान' में अत्यंत साधारण स्तर के पात्र उपन्यास के केंद्र में आये और 'गबन' तथा 'कर्मभूमि' में एक साथ एकाधिक पात्रों ने केन्द्रीयता प्राप्त की। रेणु हिंदी के पहले

उपन्यासकार है जिन्होंने उपन्यास से नायक को लगभग निष्कासित कर दिया और उसके स्थान पर पूरे गाँव को ही बिठा दिया। 'मैला आँचल' की यह विशेषता आंचलिक उपन्यास की प्रमुख विशेषता के रूप में स्वीकार कर ली गयी है।"[186] हिंदी साहित्य में 'मैला आँचल' सर्वप्रथम आंचलिक उपन्यास हैं। इससे पहले के जिन उपन्यासों को आंचलिक कह दिया गया उनका परिवेश मात्र आंचलिक हैं, उस परिवेश के भीतर बहती हुई जीवनधारा और समाज केन्द्रित न होने से वे मूलतः आंचलिक नहीं है। लेकिन 'मैला आँचल' में आंचलिक परिवेश के अतिरिक्त समाज केंद्रीय आंचलिक जन-जीवन को सबसे पहले अपना विषय बनाया। इतना ही नहीं आंचलिक उपन्यास विशिष्ट समाज का अखंड़ चित्रण करने के लिए समाज जीवन की समस्त दिशाओं को स्पर्श करने वाली अनेक खण्ड-खण्ड उपकथाओं, परीकथाओं और स्थितियों का सहारा लेता है।

हिंदी के अनेक उपन्यासों में भौगोलिक-प्राकृतिक और भाषिक संस्कृतिक विशेषताएँ विशिष्ट है। बालकृष्ण भट्ट से लेकर अज्ञेय, नागार्जुन ने इसका चित्रण किया है। परन्तु उसके पूरे व्यक्तित्व का निर्माण करने की ओर ध्यान नहीं दिया। हिंदी के इतर उपन्यासकार ग्रामीण आँचल को किस प्रकार से देखते हैं उसका विश्लेषण गोपाल राय करते हैं "प्रेमचंद के प्रेमाश्रम कर्मभूमि गोदान आदि उपन्यासों में कथा की पृष्ठभूमि अवध क्षेत्र है पर वह पृष्ठभूमि मात्र है। जिस ग्रामीण समाज का अंकन प्रेमचंद ने अपने उपन्यासों में किया है वह अपनी प्रकृति में भारतीय और संवेदनशीलता में वैश्विक है। इस क्षेत्र की सांस्कृतिक पहचान प्रस्तुत करने में भी प्रेमचंद की विशेष रूचि नहीं दिखायी। अपवाद रूप में शिवपूजन सहाय अपने उपन्यास 'देहाती दुनिया' (1926) में भोजपुर आँचल के एक गाँव को उसकी समस्त सांस्कृतिक और भाषिक विशेषताओं के साथ प्रस्तुत करते हैं। पर वह एक अलग-थलग पड़ा हुआ प्रयास प्रतीत होता है। नागार्जुन प्रेमचंद की तुलना में अपने क्षेत्र विशेष आर्थिक मिथिलांचल के भूगोल और

प्रकृति को अधिक प्रमुखता के साथ प्रस्तुत करते हैं। और उनके उपन्यासों में मिथिलांचल की रीति रिवाजों के अंकन पर भी कुछ जोर है पर नागार्जुन भी मिथिलांचल की गरीबी, अशिक्षा, जमींदारों द्वारा दलित वर्ग के शोषण, दलित समाज में उभरती विद्रोह की चेतना आदि का ही चित्रण प्रमुखता के साथ प्रस्तुत करते हैं।"[187] साथ ही बहुविवाह, वृद्ध विवाह, बाल विवाह, विधवा समस्या तथा रूढ़ि-परंपरा का चित्रण अनेक उपकथाओं में हुआ है। परन्तु आंचलिकता की कसौटी में कोई भी उपन्यास आता नहीं। 'मैला आँचल' ही आंचलिक उपन्यास है इसकी चर्चा डॉ. गोपाल राय करते हैं और इस उपन्यास की मौलिकता व विशेषता पर लिखते हैं "वस्तुत: रेणु ने ही पहली बार बिहार के पूर्णिया जिल्ले के एक बड़े गाँव मेरिगंज को सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक और राजनीतिक दृष्टी से पिछड़े आँचल का प्रतीक बनाकर पूरे अंच को उसकी सम्पूर्णता में कलाकारोचित संवेदनशील के साथ प्रस्तुत किया। यह उल्लेखनीय कथ्य है कि पूरा उपन्यास मेरीगंज में ही केन्द्रित है। यदि कथा मेरीगंज के बाहर निकलती भी है तो उसी प्रकार जैसे सुबह गाँव से शहर जानेवाला ग्रामीण शाम या रात को गाँव वापस लौट जाता है। 'मैला आँचल' में लगभग तीन सौ पात्र है जिनमें लगभग एक सौ चालीस मेरीगंज के निवासी है और पच्चीस जन्मना बाहर के होते हुए भी कार्यक्षेत्र की दृष्टी से मेरीगंज के ही है। लगभग एक सौ पैंतीस मात्र मेरीगंज के बाहर के होते हुए भी मेरीगंज को अपने आसपास अथवा पूरे देश की जिंदगी से जोड़ते हैं। 'मैला आँचल' में एक भी ऐसा पात्र नहीं है जिसे केंद्रीय पात्र कहा जा सके नायक कहा जाने लायक पात्र तो इसमें कोई है नहीं। लगभग आधा दर्जन पात्र किंचित प्रमुखता प्राप्त करते हैं पर वे सब मिलकर भी 'मैला आँचल' की पूरी कहानी का प्रतिनिधित्व नहीं करते।"[188] कहने का तात्पर्य है कि उपन्यास के गौण पात्र भी कथा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इसमें

छोटी-मोटी भूमिकाएं निभानेवाले सैकड़ों पात्र है जो अपने समय की कहानी को कहने में भरपूर योग देते हैं।

आंचलिक उपन्यास की परम्परा में शैलेश मटियानी को रेणु के सच्चे उत्तराधिकारी मानकर गोपाल राय ने उनके उपन्यासों का परिचय दिया। इसके साथ ही उदयशंकर भट्ट, रामदरश मिश्र, मैत्रीय पुष्पा, भगवानदास मोरवाला आदि अन्य को भी आंचलिक उपन्यासकार मानकर रेणु को आंचलिक उपन्यास की अवधारणा को स्पष्ट करने का श्रेय दिया है। इस की पुष्टि करने के लिए उनके द्वारा कही गयी बात को सामने रखना आवश्यक है। "यह बात किंचित विश्वास के साथ कही जा सकती है कि हिंदी में आंचलिक उपन्यास की अवधारणा हिंदी के ही उपन्यासों के आधार पर विकसित हुई। इसके विकास में भुवनेश्वर मिश्र, गोपाल रामगहरी, द्विवेदी, प्रेमचंद, शिवपूजन सहाय, नागार्जुन अन्यों का महत्वपूर्ण योगदान है। पर आंचलिक उपन्यास की अवधारणा को स्पष्ट और अंतिम रूप देने का श्रेय फनीश्वरनाथ रेणु को है। उनके बाद के उपन्यासकारों ने इस अवधारणा का विनियोग ही अपने उपन्यासों में सफल या असफल रूप में किया है।"[189]

'उपन्यास की पहचान - मैला आँचल' में गोपाल राय ने केवल 'मैला आँचल' पर ही बात नहीं की बल्कि रेणु के सभी उपन्यासों को लेकर अपनी राय दी है। जहाँ जरूरत पड़ी वहां हिंदी उपन्यासों की परंपरा में कई दूसरे लेखकों के उपन्यासों को भी चर्चा में सम्मिलित कर लिया और अपनी आलोचना का दूसरा दायरा व्यापक किया। अत: 'रेणु की उपन्यास यात्रा' शीर्षक में रेणु द्वारा लिखित उपन्यासों की चर्चा वे करते हैं। जहाँ गोपाल राय की आलोचना दृष्टी तुलनात्मक बनती है। "रेणु का प्रथम उपन्यास 'मैला आँचल' है जो सन् 1954 ई. में प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास की श्रेष्ठता के संबंध में अधिकतर आलोचक एकमत है।"[190] गोपाल राय ने उपन्यास की भाषा पर भी ध्यान

दिया है। उपन्यास में आंचलिकता (ठाठ) की पहचान करने में आँचल की भाषा का भी बड़ा योगदान रहा है। भाषा के स्वरूप का सविस्तार विवरण शैली के प्रसंग में दिया गया है, आंचलिक उपन्यास समाज जीवन का पूरी तरीके से चित्रण करता है। रेणु के 'मैला आँचल' की आलोचना हमने देखि अब उनके अन्य उपन्यासों पर संक्षेप में दृष्टी ड़ालनी होगी।

'परती परिकथा' फनीश्वरनाथ रेणु का दूसरा प्रसिद्ध उपन्यास माना जाता है। इस उपन्यास के सन्दर्भ में गोपाल राय लिखते हैं "मैला आँचल का हिंदी जगत में जैसा स्वागत हुआ वह अभूतपूर्ण था। उससे उत्साहित होकर रेणु ने दूसरा उपन्यास 'परती परिकथा' लिखा जो सन् 1957 ई. में राजकमल प्रकाशन दिल्ली से प्रकाशित हुआ। 'परती परिकथा' की कथाभूमि भी पूर्णिया आँचल ही है।"[191] डॉ. गोपाल राय ने दोनों उपन्यासों की तुलना करते हुए कहा है "मैला आँचल में जहां पूर्णिया आँचल के 1944-1948 के जीवन यथार्थ को कैमरे की आँखों से बंद करने की कोशिश की गयी है वहां 'परती परिकथा' में 1953-1956 के समय की कहानी प्रस्तुत की गयी है। अंतर यह है कि मैला आँचल में जिस कैमरे का प्रयोग किया गया है उसका शीशा रंगीन नहीं है बल्कि 'परती परिकथा' में प्रस्तुत कैमरे के शीशे पर लेखक के झूठे सपनों और कुस्थापित आशावाद का रंग चढ़ गया है।"[192] परती परिकथा में जितेंद्र का बार-बार आना जिससे वह उपन्यास का नायक लगता है लेकिन केवल प्रमुख पात्र होने के अलावा वह नायक नहीं हैं। इस उपन्यास में ऐसे कई प्रसंग हैं, जिससे जितेंद्र गौण पात्र के रूप में सामने आता है। इस उपन्यास में नैका सुनारी कथा प्रमुख हैं। जीतेन्द्र भले ही इस उपन्यास का नायक नहीं हैं, बावजूद इसके वह उपन्यास का सर्व प्रमुख पात्र हैं। वह आँचल प्रगति का प्रतीक हैं।

आलोचक गोपाल राय के अनुसार 'परती परिकथा' में अनेक पहलु सामने आते हैं। इस उपन्यास में भी समकालीन यथार्थ का चित्रण हुआ है। "परानपुर के अनपढ़ ग्रामीणों, अक्षर कहू युवकों, स्कूलों कॉलेजों में पढ़नेवाले छात्रों, जातिवादी संस्कारों से ग्रस्त नर-नारियों, घूमंतु और नारदी मनोवृत्ति की स्त्रियों, सभी राजनीतिक दलों की शाखाओं के अधकचरे नेताओं, शातिर मुकदमे बाजों और इसके साथ-साथ लोकगाथाओं के गायब लोकनाटकों के मंचन आदि के बड़े यथार्थ चित्र परती परिकथा में उपलब्ध होते हैं।"[193]

'रेणु' का तीसरा उपन्यास 'दीर्घतपा' सन् 1963 ई. वीं में प्रकाशित हुआ। यह पूरा 128 पृष्ठों का लघु उपन्यास है। इस सन्दर्भ में गोपाल राय बताते हैं कि, "इसका कारण यह है कि 'मैला आँचल' या 'परती परिकथा' की तरह दीर्घपता का कथाक्षेत्र कोई आँचल विषय न होकर बिहार की राजधानी पटना का एक वर्गीक विमेन्स होस्टल है। बाद में चलकर इस बात को लेकर खूब बहस हुई कि नगर के किसी विशेष मुहल्ले, होटल या छात्रावास को आधार बनाकर लिखे गए उपन्यास को 'आंचलिक' उपन्यास की संज्ञा दी जाए या नहीं। दीर्घपता को इस विवाद के घेरे से बाहर रखकर एक लघु उपन्यास के रूप में देखना ही बेहतर होगा और इसमें संदेह नहीं कि दीर्घपता एक सफल यथार्थवादी लघु उपन्यास है।"[194] इस उपन्यास में होटलो में निवास करती महिला, लड़कियों की समस्याओं को उजागर किया है। आज के आधुनिक व वैज्ञानिक युग में नौकरिपेशा अकेली स्त्री को नगर में रहते अनेक समस्याएँ निर्माण होती हैं उसका नग्न यथार्थ चित्रण 'दीर्घपता' में हुआ है। "पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में सुन्दर जवान स्त्री को भोग की वस्तु बना देने के लिए अनेक एजेंसियां सतत कार्यशील रहती है। प्राय: नगर में स्थित कामकाजी महिला छात्रावास भी इस प्रकार की एजेंसियों का रूप ग्रहण

कर लेते हैं। नारी कल्याण की अनेक संस्थाएं ऊपर से नारी कल्याण का मुखौटा लगाकर भीतर से नारी देह के व्यापार में लगी हुई है। प्राय: अर्थ, लोभी, चरित्रहीन, अशिक्षित और आधुनिक स्त्रियाँ समाज सेवा के नाम पर नारी कल्याण संस्थाओं में प्रवेश कर जाती है और अपने ही जैसे छदम समाज सेवियों, भ्रष्ट व्यवसायियों और सरकारी पदाधिकारियों के सहयोग से नारी देह का व्यवसाय चलाती है। 'दीर्घपता' में इसी यथार्थ का चित्रण किया गया है।"[195]

गोपाल राय ने 'रेणु' के चौथे उपन्यास 'जुलूस' 1965 ई. की भी आलोचना महत्वपूर्ण रूप में की है। 1965 में प्रकाशित यह उपन्यास ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित है। इस उपन्यास में पाकिस्तान से पूर्णियां जिले में आये शरणारर्थियों की सामूहिक मानसिकता का तथा उनके जुलूस का अभिन्न हिस्सा बनकर चेतना की आखों द्वारा अवलोकन किया गया है। इस विषय के बारे में आलोचक गोपाल राय यह लिखते हैं, "1947 ई. में भारत के बंटवारे के बाद पूर्वी पाकिस्तान से हिन्दू शरणर्थियों का एक जुलूस पश्चिमी बंगाल और बिहार के पूर्णिया जिले में पहुँचा अपनी जमीन और परिवेश से उखड़ा हुआ यह जुलूस अपरिचित और अनजानी भूमि पर पहुंचकर अपने अजनबीपन के बोध और पीड़ा से मुक्त नहीं हो पाता। पूर्णिया जिले के निवासी भी इन उखड़े हुए लोगों की व्यथा को नहीं समझ पाते। यह दोनों समुदाय एक दूसरे के प्रति अविश्वास पूर्वाग्रह और विरोध का भाव पालते हुए तनाव की जिन्दगी जी रहे हैं।"[196] इस उपन्यास में देश की भावात्मक एकता का प्रश्न सामने आया है। इसके साथ ही भाषा, खानपान, वेशभूष, रीति-रिवाज, संस्कृति, नृत्य, गीत आदि में वैविध्य को दिखाया गया है। शायद इसलिए भारत में ही आदमी दूसरे क्षेत्र में जाने के बाद स्वयं को अजनबी सा महसूस करता है और इसी अविश्वास को दूर करने के लिए ही

उपन्यासकार कोशिश करते हैं। उन्हीं की विशेषताओं को आलोचक तत्कालीन परिस्थितियों से जोड़ कर अपनी आलोचनाएँ करते हैं।

'दिव्या' उपन्यास यशपाल का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास हैं। सन् 1945 ई. में दिव्या का प्रथम प्रकाशन स्वयं यशपाल की देखरेख में विरसव प्रकाशन से हुआ। उसके बाद इलाहाबाद से लोकभारती प्रकाशन द्वारा 1987, 1996 तथा 2000 ई. में तीन संस्करण प्रकाशित हुए है। उपन्यास की पहचान 'दिव्या' में गोपाल राय ने 'दिव्या' उपन्यास की ऐतिहासिक असंगतिओं पर प्रकाश ड़ाला है। वे 'दिव्या' उपन्यास के अंतर्संबंधों को और कमियों को सही तरिके से स्पष्ट करते हुए नजर आते हैं। "1987 के विद्यार्थी संस्करण के पाठ के आधार पर 'दिव्या' व्याख्या और मूल्यांकन का प्रयास किया है। पुस्तक के निर्देश के तौर पर दी गई पृष्ट संख्याएं इसी संस्करण की है। कहीं-कहीं अस्पष्टता का निराकरण करने के लिए 1996 के संस्करण से पाठकों ने भी सहायता ली गयी है। इस बात की तनिक भी चिन्ता नहीं की गई है कि अन्य आलोचकों ने 'दिव्या' के बारे में क्या कह रखा है। यदि उनकी बात पाठ से पृष्ट होती है तो उसे स्वीकार कर लिया गया है। पर जो निष्कर्ष पाठ से पृष्ट नहीं होते उन्हें स्वीकार करने की बाध्यता नहीं रही है।"[197]

उपन्यास की पहचान 'दिव्या' पुस्तक बारह अध्यायों में विभक्त है। 'अतीत और इतिहास', 'दिव्या का कथा संसार', 'मार्मिक प्रयोग', 'पात्र', 'इतिहास से दिव्या का संबंध', 'दिव्या का समाज', 'दिव्या में चित्रित भारती संस्कृति', 'नारी विमर्श', 'शिल्प', 'भाषा', 'उपन्यास की दृष्टी से दिव्या का मूल्यांकन', 'यशपाल: व्यक्तित्व और कथा यात्रा' आदि।

'अतीत, इतिहास और उपन्यास' अध्याय में गोपाल राय लिखते हैं कि “उपन्यास का अतीत से बहुत गहरा संबंध है। तकनीकी अर्थ में अतीत को ले तो उपन्यास अतीत के सिवा कुछ हो ही नहीं सकता। अतीत, इतिहास और उपन्यास का संबंध बहुत नाजुक और जटिल है।”[198] यहाँ गोपाल राय ने अतीत, इतिहास और उपन्यास के संबंध में बड़ी बात की है। “कतिपय आलोचक एक झटके के साथ इतिहास से उपन्यास के संबंध को खारिज कर देते हैं। डॉ. नामवर सिंह का मानना है कि इतिहास पर आधारित उपन्यास उच्च कोटि का उपन्यास हो ही नहीं सकता। पूर्ण या पूरा अतीत पर आधारित उपन्यास को तो वे कदाचित उपन्यास मानना ही नहीं चाहते। पर यह सुविचारित दृष्टिकोण नहीं है वर्तमान की अवधी केवल क्षण तक सीमित है और क्षण चाहे कविता और कहानी का विषय बन जाय उपन्यास का विषय नहीं बन सकता है पर उस विजन की अभिव्यक्ति के लिए उपन्यासकार को काल के बहुत आयाम में प्रवेश करना पड़ता है। यह आयाम अतीत का ही होता है। इतिहासकार अपने लिए तीस वर्ष से अधिक अतीत की सीमा को स्वीकार करता है। पर उपन्यास के लिए यह संभव नहीं है। क्योंकि इतिहासकार अतीत को बाहर से देखता है जबकि उपन्यासकार का अतीत उसके लिए निजी अनुभव और संवेदना से समपृक्त होता है। उपन्यासकार का अपना अनुभव चाहे एक माह का हो या अस्सी वर्षों का वह उसके लिए वर्त्तमान ही है। उपन्यासकार का वर्त्तमान उसकी आयु और अनुभव के अनुसार छोटा या बड़ा हो सकता है। काल और स्थान के आयाम में घटित तथ्य उसके प्रत्यक्ष्य इन्द्रियबोध से जुड़े होते हैं। जिन्हें स्मरण करता हुआ या पुन:जीता हुआ वर्ष दो वर्षो या अधिक समय में अपनी रचना पूरी करता है। यह इतिहास इसलिए नहीं होता कि उपन्यासकार घटित तथ्यों का स्वयं ही साक्ष्य होता है और इतिहासकार को उसके सामने झुकना पड़ता है।”[199]

'दिव्या' में यशपाल ने ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को लिया है। इसलिए इतिहास और ऐतिहासिक उपन्यास को दृष्टी में रखते हुए गोपाल राय ने 'अतीत इतिहास और

उपन्यास' के अंतर्संबंधों की सूक्ष्म पड़ताल की है। यह ध्यान देने योग्य है कि इतिहास तथ्यानुरूप होता है और उपन्यास चूँकि साहित्य लेखन की एक विधा है इसलिए उसमें तथ्यों के निरूपण के साथ-साथ कल्पना का समावेश भी अनायास हो जाता है। इसलिए "इतिहास और ऐतिहासिक उपन्यास की टकराहट नहीं होती है।"[200]

'दिव्या' उपन्यास का कथा संसार गोपाल राय ने बहुत ही सरलता से स्पष्ट किया है। गोपाल राय ने दिव्या का कथा संसार कल्पनाप्रसुत माना है। कारण इस में कही पर भी उपन्यासकार ने समय का उल्लेख नहीं किया। परन्तु बीच में ऐतिहासिक प्रसंगों को रखा है। जिसका विश्लेषण गोपाल राय करते हैं। "बिल्कुल आरम्भ में ही 'सागल नारी' का उल्लेख है। 'सागल' या 'शाकल' आज के पाकिस्तन में स्थित 'स्थालकोट का प्राचीन नाम है।"[201] उपन्यास की कथा में अनेक प्रसंग आए है। जिसमें मार्मिक प्रसंग का विश्लेषण गोपाल राय करते हैं। उपन्यास का कथा संसार जीवन्त और मार्मिक प्रसंगों से ही महत्वपूर्ण बनता है कारण जीवन्त और मार्मिक प्रसंग से ही कोई भी प्रसंग अविस्माराणीय बनता है। गोपाल राय के अनुसार "आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने प्रबन्ध काव्य की सफलता के लिए 'भावुकता' सम्यक मार्मिक प्रसंगों को अनिवार्य बताया है। औपन्यासिक संसार की रोचकता के लिए भी मार्मिक प्रसंगों की योजना अनिवार्य है। 'दिव्या' इस दृष्टी से एक सफल उपन्यास माना जा सकता है। इसका पहला ही प्रसंग 'मधुयर्व' अपनी सजीवता के लिए उल्लेखनीय है।"[202]

उपन्यासकार किसी विशेष ऐतिहासिक कालखंड को चुन लेने के बाद उसी तत्कालीन परिवेश में स्वतंत्र विचार करता है और अपनी कल्पना के अनुरूप ही उसी परिवेश को आभिव्यक्त करता है किन्तु न तो वह पूर्ण इतिहास होता है न पूर्ण कल्पना। इस संदर्भ में गोपाल राय लिखते हैं कि "उपन्यास चाहे समकालीन जीवन से संबंध हो

या 'अतित्कालिन' जीवन से तथ्यों या घटनाओं का उसमें अधिक महत्व नहीं होता। उपन्यास जितनी उच्च कोटि का होगा उसमें तथ्य या घटनाए उतनी ही कम होंगी।"[203]

गोपाल राय ने इस पुस्तक के चौथे अध्याय में पात्रों का परिचय दिया है। इस उपन्यास के पात्र कल्पनाप्रसूत है। आलोचक ने 'दिव्या' उपन्यास के पात्रों के चरित्र व रंगभूषा को लेकर कई बाते सामने लायी है "प्राचीन साहित्य, कला और अलग उपलब्ध विवरणों से उस काल के समय का जो चित्र निर्मित होता है वह पात्रों के चरित्र पर पूरी तरह से हावी है। पात्रो की वेशभूषा, रूपविन्यास, अलंकार, अर्थशास्त्र आदि अजंता की गुफाओं में निर्मित चित्रों तथा एलोरा, खजुराहो, कोणार्क आदि के मंदिरों की दीवारों पर निर्मितों के अनुरूप है।"[204] 'दिव्या' में केवल दो पात्र 'मिलिन्द' और 'पुष्यमित्र' ऐसे है जो मूलतः ऐतिहासिक है किन्तु "इनका केवल उल्लेख हुआ है। उपन्यास की दृष्टी से यह अच्छा ही होगा; पर यशपाल ने इन की ऐतिहासिक विद्यमानता के सन्दर्भ में ऐसे असावधानी बरती है जिसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती।"[205]

'दिव्या' उपन्यास में वर्णित समाज और चित्रित भारतीय संस्कृति का स्वरूप तत्कालीन बौद्ध परिवेश और सामंती संरचना के अनुरूप है। जिसे गोपाल राय ने बहुत अच्छे ढंग से बतलाया है। उपन्यास में तत्कालीन समाज के विभिन्न वर्गों के अनुरूप वस्त्राभूषण के प्रयोग के चित्रण के साथ ही सामंती समाज में होने वाले विभिन्न उत्सवों का जैसे: दोल महोत्साव, मधुपर्य अभिषेक आदि का वर्णन किया गया है। यशपाल ने तत्कालीन समाज मे गणिकाओं और दासों की स्थिति, दास व्यावसाय और अन्य विषयों पर और समाज एवं सामान्य जन का बड़ा बिम्बात्मकता के साथ चित्रण प्रस्तुत किया है। गोपाल राय ने इस उपन्यास की आलोचना करते हुए तत्कालीन समाज की इन सभी सामाजिक और सांस्कृतिक स्थितियों का बेहद सूक्ष्म और विस्तृत आलोचकीय

विश्लेषण प्रस्तुत किया है। देश में जाति प्रथा की जड़ें बहुत गहरी पैठी हुई हैं। 'दिव्या' में भी उच्च व निम्न वर्ग के संघर्ष का बखूबी वर्णन किया किया है। गोपाल राय लिखते हैं कि "दिव्या के रचना प्रकाशन के समय ही नहीं आज भी देश पर भूमिपतियों, अपराधकर्मी राजनीतिक और चतुर पूँजीपतियों का शासन है। सामन्य 'जन' इनके शोषण और दमन का शिकार है। मारिश कम्युनिस्ट पार्टी के प्रवक्ता के रूप में सामने आता है। वह 'जन' को सामन्तों के अत्याचार न सहने, पूर्ण मनुष्य बनने, अपने लिए संघर्ष करने के लिए ललकारता है।"[206]

संपूर्ण उपन्यास में नारी जीवन के विभिन्न संघर्षों का समेटा हुआ है। वस्तुत: 'दिव्या' उपन्यास की रचना के पिछे यशपाल की मूल मंशा भारतीय नारी की पराधीनता के लम्बे इतिहास को उजागर करना है। यशपाल ने 'दिव्या' नामक पात्र के जरिये सामन्ती समाज में स्त्री की स्थिति का गहन चित्रण किया है साथ ही बौद्धकालीन परिवेश में स्त्री की वास्तविक स्थिति का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करने में भी उन्हें सफलता मिली है।

इस उपन्यास में 'दिव्या' कहीं पितृसत्ता की नियमावलियों से बचने का प्रयास करती है तो कहीं वह उसका पुरजोर विरोध करती दिखाई देती है। वह सर्वत्र स्त्री की आत्मनिर्भरता और स्वाभिमान को अधिक महत्व देती है। अंत में वह न तो पृथुसेन के प्रस्ताव को ही स्वीकार करती है, न ही सामन्ती व्यावस्था के पोषक रुद्रधीर के। वह मारिश के आश्रय को स्वीकार कर लेती है। यशपाल के इस निष्कर्ष पर विचार करते हुए गोपाल राय ने यह लिखा "यहाँ एक असंगति भी दिखाई देती है। 'दिव्या' आचार्य रुद्रधीर से अपने 'आत्मनिर्भर' रहने का संकल्प व्यक्त करती है पर मारिश का आश्रय स्वीकार कर लेती है। ये दोनों बातें परस्पर विरोधी है। यहाँ पर यह प्रश्न उठाया जा

सकता है कि 'दिव्या' के लिए 'आत्मनिर्भर' होने का आधार क्या है? मारिश की पत्नी के रूप में उसका आत्मनिर्भर होना कोई अर्थ नहीं रखता। जो हो यह यशपाल के विजन का स्त्री विमर्श है। जो इक्कीसवीं शताब्दी के नारी विमर्श की दृष्टी से बहुत पिछाड़ा हुआ है।"[207] यहाँ पर ध्यान देने की बात है कि दिव्या ने तत्कालीन सामन्ती समाज के भितर तमाम कठिनाइयों से गुजरने के पश्च्यात चुनाव की स्वतंत्रता स्वयं आर्जित की है। निर्णय का अधिकार, सम्पन्नता प्राप्त करने के लिए स्त्री का यह संघर्ष आज भी जारी है।

गोपाल राय ने इस उपन्यास की भाषा और शिल्प को भी अलग से शीर्षक देकर विचार किया है और उपन्यास की दृष्टी से 'दिव्या' का सही मूल्यांकन भी किया है। उन्होंने कमजोर पक्ष को भी सामने रखकर सच्चे आलोचक की भूमिका निभाई। अपने अध्याय में गोपाल राय ने हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' और राहुल सांकृत्यायन के 'सिंह सेनापति' के बराबर 'दिव्या' की भाषा और शिल्प का सूक्ष्म अध्ययन एवं विश्लेषण किया है तथा इस दृष्टी से उपन्यास की सफलता और असफलता के अनेक पक्ष भी उजागर किए है। गोपाल राय ने 'दिव्या' को उपन्यास कला की दृष्टी से सफल उपन्यास नहीं मानते। उनके शब्दों में "उपन्यास कला के स्तर पर 'दिव्या' उल्लेखनीय रचना नहीं मानी जा सकती। हिंदी उपन्यास के इतिहास में इसका उल्लेख किसी पढ़ाव या मोड़ के रूप में नहीं किया जा सकता। इसके बावजूद इसका विभिन्न पाठ्यक्रमों में निर्धारण और बिना पाठ की भ्रष्टता की चिन्ता किये संस्करण-दर-संस्करण मुद्रण आश्चर्य में ड़ालनेवाला तो हैं ही।"[208] आलोचक की इस बात से असहमत हुआ जा सकता है। यदि उपन्यास की ऐतिहासिकता और शिल्प विधान के पक्ष को छोड़ दिया जाय तो 'स्त्री विमर्श' की दृष्टी से यह उपन्यास महत्वपूर्ण माना

जाता है। स्वंय लेखक ने भी 'स्त्री जीवन' की मार्मिक अभिव्यक्ति की दृष्टि से अनेक स्थानों पर उपन्यास को महत्वपूर्ण माना है।

अंतिम में 'दिव्या' उपन्यास के लेखक यशपाल के व्यक्तित्व और कृतित्व को भी स्पष्ट किया है। इतना ही नहीं गोपाल राय ने अपनी आलोचकीय दृष्टी से उपन्यास की ऐतिहासिकता, कथा संरचना में आये विविध मार्मिक प्रसंगों और भाषा एवं शिल्प की सूक्ष्मता के साथ दर्शाया है। साथ ही तत्कालीन सामंती समाज और सांस्कृतिक बौद्धकालीन परिवेश में स्त्री की यथार्थ स्थिति के विभिन्न पहलुओं का बहुत अच्छी तरीके से परिचय कराया है। उन्होंने अपनी आलोचकीय दृष्टी के जरिये उपन्यास की ऐतिहासिकता, कथा संसार में आयें विविध मार्मिक प्रसंगों एवं भाषा-शिल्प की सूक्ष्मता के साथ-साथ तत्कालीन सामंती समाज और सांस्कृतिक एवं बौद्धकालीन परिवेश में स्त्री की यथार्थ स्थिति के विभिन्न पहलुओं से बखूबी परिचय कराया हैं।

उपन्यास की पहचान 'दिव्या' की तरह 'महाभोज' उपन्यास का भी विश्लेषण गोपाल राय ने 'उपन्यास की पहचान महाभोज' नाम से किया है। इस पुस्तक का प्रकाशन 2002 में हुआ है। इससे पहले आलोचक गोपाल राय 'रंगभूमि', 'गोदान', 'शेखर : एक जीवनी', 'मैला आँचल' और 'दिव्या' को अपनी आलोचकीय दृष्टि का विषय बना चुके हैं। उनकी इस पुस्तक में भी 'महाभोज' उपन्यास का अलग-अलग प्रकरणों के साथ विश्लेषण हुआ है। 'महाभोज' की आलोचना करते हुए गोपाल राय ने 'उपन्यास की पहचान : महाभोज' शीर्षक के तहत इस उपन्यास को नौ भागो में विभाजित किया गया है। इस पुस्तक में कथा-संसार, पात्र, कथ्य शिल्प, भाषा, व्यंग्य का उपन्यास, मूल्यांकन दृष्टि से महाभोज की यात्रा और राजनीतिक उपन्यास की परम्पर में महाभोज आदि शीर्षकों से विश्लेषण देखने को मिलता है।

'महाभोज' के रचनाकार मन्नू भंड़ारी ने अपने उपन्यास में अनावश्यक बिन्दुओं को कोई स्थान नहीं दिया है। गोपाल राय लिखते हैं कि "उपन्यास लेखिका ने अपने अनावश्यक बचाव के लिए आरम्भ में ही यह घोषणा कर दी है कि इस उपन्यास में वर्णित घटनाएँ काल्पनिक है। प्रबुद्ध पाठक को यह बताने की जरूरत नहीं होती कि उपन्यास का कथा संसार कल्पनाप्रसुत तो होता है पर सर्वथा काल्पनिक नहीं होता। सर्वथा काल्पनिक तो पुरानी कथाओं और आधुनिक जासूसी या वैज्ञानिक कथाओं का संसार भी नहीं होता। उपन्यास का कथा संसार यथार्थ से पूर्ण जुड़ा होता है और यथार्थ लेखक के इंद्रियानुभावों और संवेदनाओं से यह सम्भव ही नहीं है कि उपन्यास का कथा संसार यथार्थ न हो।"[209] 'महाभोज' उपन्यास की कथा मुख्यत: किसी हिंदी भाषी राज्य की राजधानी और वहां से कुछ दूर सरीहा नामक गाँव की है। मन्नू भंड़ारी गाँव का सही रूप में वर्णन करने में असक्षम रही है। इसलिए गोपाल राय 'महाभोज' और 'मैला आँचल' की तुलना कर बताते हैं कि "मन्नू भंड़ारी अपने कथा-संसार के गाँव का स्पष्ट और विश्वसनीय बिम्ब प्रस्तुत करने में समर्थ नहीं हुई है या उन्होंने उसकी कोशिश नहीं की है। रेणु ने 'मैला आँचल' में एक बड़े गाँव मेरीगंज की कल्पना की है पर उन्होंने मेरीगंज का जैसा स्पष्ट बिम्ब और व्यात्तित्व प्रस्तुत किया वैसा मन्नू भंड़ारी नहीं कर पायी है।"[210]

'महाभोज' पाठकों के बीच काफी लोकप्रिय होने के बावजूद आलोचकों द्वारा उपन्यास को उपेक्षित किये जाने के कारणों की पड़ताल गोपाल राय इसका मूल्यांकन करते हुए करते हैं। एक ओर मार्क्सवादी आलोचकों उपन्यास में दलित समाज की पीड़ा और संघर्ष को मुखर जगह न मिलने के कारण इसे स्वीकृत नहीं कर पाते हैं। दूसरी ओर से गैर-मार्क्सवादी आलोचक व्यात्तिगत व सार्वभौम मानव के प्रश्न को इस उपन्यास में अनुपस्थिति पाकर इससे किनारा कर लेने में अपनी भलाई समझते हैं। जबकि पाठक

किसी विचारधारा से परे पठनीय व समकालीन राजनीतिक विड़म्बना से युक्त उपन्यास के कारण इसे काफी पसंद करते हैं। इस कारण यह उपन्यास पाठक समुदाय के बीच काफी लोकप्रिय रहा है। "महाभोज की लोकप्रियता का सबसे बड़ा कारण यह है कि इसमें पाठक अपनी जिन्दगी के यथार्थ को अपने चारों ओर पसरे जहरीले सच को बड़ी तीव्रता के साथ अनुभव करता है।"[211] यहाँ पर आलोचक गोपाल राय यह सवाल उठाते हैं कि पाठकों के बीच लोकप्रिय होने वाली रचना के लिए जरूरी नहीं की वह रचना महान हो। 'महाभोज' को लोकप्रियता के बावजूद वे उसे महान रचना की संज्ञा नहीं देते और उसके पक्ष में वे अपने तर्क भी प्रस्तुत करते हैं।

'महाभोज' का कथ्य राजनीतिक परिवेश का होने के कारण उपन्यास के पात्र भी अधिकतर राजनीति से जुड़े दीखते हैं। "महाभोज के पात्रों को कई वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। इनमें सबसे बड़ा वर्ग राजनीतिक दुनिया के पात्रों का है। इस वर्ग में दा साहब, सुकुल बाबू, अप्पासाहब, लोचन भैया, महेता चौधरी, बिहारी बाबू, कशी आदि आते हैं। दूसरा वर्ग पिछड़े और हीन पाने वाले पात्रों का है जिनका आगिको के द्वारा शोषण और दमन होता है। इस वर्ग के प्रमुख पात्र बिसू (बिसेसर), बिंदा (बिन्देश्वर- प्रसाद) हिरा, वौर रुकमा है।"[212] इन पात्रों में से बिंदा और रुकमा तो बीस बीछे जमीन के काश्तकार है। वे भूस्वामियों से संघर्ष कर सरजनों को व्यय दिलाने में भरपूर कोशिश करते हैं। इस प्रकार उपन्यास के अनेक पहलुओं का विस्तार से विश्लेषण आलोचक गोपाल राय करते हैं ताकि पाठक को रचना को समझने में आसानी हो।

'महाभोज' उपन्यास पर आकारगत संरचना की दृष्टी से भी गोपाल राय ने विचार किया है। अपनी आलोचकीय दृष्टी से वे रेखांकित करते हैं कि बीसवीं सदी के सातवें और आठवें दशक में भारतीय समाज व राजनीति में उद्वेलनकारी परिस्थितियाँ होने के बावजूद भी लेखिका मन्नू भंड़ारी ने इस व्यापक पृष्टभूमि में बृहद विजन वाला

उपन्यास लिखने का प्रयास नहीं किया। इसके कारण का विश्लेषण करते हुए आलोचक गोपाल राय लिखते हैं "पर ऐसा लगता है जैसे उन्होंने जान बूझकर 'महाकाव्यात्मक उपन्यास' न लिख कर नाटकीय उपन्यास लिखने का निश्चय किया। 'नाटकीय उपन्यास' के कथ्य का आयाम सिमित होता है पर प्रभाव की दृष्टी से उसमें एकलता गहनता और तीव्रता अधिक होती है।"[213]

'महाभोज' उपन्यास को आलोचक गोपाल राय ने 'नाटकीय' उपन्यास की दृष्टी से सफल एवं महत्वपूर्ण माना है। वे इस उपन्यास का विश्लेषण नाटकीय संरचना के आधार पर ही करते हैं। 'महाभोज' उपन्यास का समग्र रूप में मूल्यांकन करने पर आलोचक गोपाल राय पाते हैं कि इस उपन्यास के अधिकतर परिच्छेद नाटक के अंकों के रूप में कल्पित है। नाटकीय उपन्यास होने के नाते इस में कथाकार की भूमिका सीमित हो गई है और कथा संसार को विश्वसनीय व प्रभावशाली बनाने के लिए अनेक नाटकीय दृश्यों की योजना की गई है। उपन्यास में काल और स्थान का विस्तार सम्भव होता है जबकि नाटक में ये दोनों सीमित होते हैं। यही काराण है कि "काल की दृष्टी से इसका फैलाव लगभग बीस दिनों का है। ठीक इसी प्रकार कार्य व्यापार का स्थान भी किसी अनाम शहर और सरोहा गाँव तक सिमटा हुआ है। शहर में दा साहब, सुकुल बाबु और लोचन भैया की कोठियाँ मुख्य घटना स्थल है। सरोहा में जनसभा के उपयुक्त कोई मैंदान अति पिछडे वर्ग का कोई घर और थाना घटनास्थल हैं। यह सेटिंग रंगमंच के बहुत अनुकूल है। कथा और कथ्य में भी एकलता है। कथा का प्रत्येक प्रसंग एक दृश्य का रूप ग्रहण करता चलता है।"[214] इस प्रकार काल, स्थान और कथासूत्र की एकरूपता इस उपन्यास को नाटकीय उपन्यास के करीब लाते हैं।

शिल्प के स्तर पर नाटकीय संरचना की तरह किस्सागोई और व्यंग्य विधान इसकी अन्य महत्वपूर्ण विशिष्टता मानी गयी है। गोपाल राय यहाँ स्पष्ट करते हैं कि

लेखिका मन्नू भण्डारी ने इस उपन्यास के विधान में अपने 'कथाकार' का सर्जनात्मक प्रयोग किया है। लेखिका कथाकार के रूप में पुराणी कथाओं का ही एक विधान 'किस्सागो' और आधुनिक संवेदनशील रचनाकार के तौर पर व्यंग्य का भी सशक्त उपयोग इस उपन्यास के शिल्पगत संरचना में करती है। नाटकीय उपन्यास होने के नाते इस उपन्यास में कथा और वर्णन का अंश बहुत कम है। अत: किस्सागो की भूमिका काफी सीमित है। पूरे उपन्यास में दो ही बार आरम्भ से लेकर अंत तक कथाकार 'किस्सागो' के रूप में सामने आता है।

गोपाल राय रेखांकित करते हैं कि लेखिका के पास चूँकि कथा बहुत थोड़ी है जबकि कहने के लिए अनेक बाते हैं अत: वह अपने समय की क्रूर वास्तविकता को सटीक रूप में कम से कम शब्दों द्वारा कथा को ब्याज और व्यंग्य के सहारे व्यक्त करती है। दरअसल व्यंग्य कथ्य को अभिव्यक्त करने की शैली मात्र है। इस शैली के सर्जनात्मक प्रयोग से उपन्यास विशिष्ट रूप में नजर आने लगता है जबकि इसका अनावश्यक हस्तक्षेप उपन्यास को कमजोर बना ड़ालता है। जैसे की 'राग दरबारी' उपन्यास में हमें दिखाई देता है। उपन्यास की भाषा मुखर व अंतरालाप की भाषा होती है जबकि नाटक में दृश्य विधा के कारण बहुत कुछ अन कहा रह जाता है। व्यंग्य द्वारा इसलिए कहा जाता है ताकि दर्शक की चेतना में उसका प्रभाव देर तक बना रहें।

महाभोज' उपन्यास में व्यंग्य के इस्तेमाल के साथ-साथ नाटकीय संरचना के कारण 'मौन भाषा' का भी प्रयोग किया गया है। जिसके कारण यह उपन्यास पाठकों के बीच प्रभावशाली पठनीय और रोचक बन जाता है। इस उपन्यास के आरम्भ से ही व्यंग्यपरक मौन भाषा के सर्जनात्मक रूप में अभिव्यक्त हुई है। जैसे "लावारिस लाश को गिद्ध नोच-नोच कर खा जाते हैं।"[215] समकालीन राजनीति की विसंगति व विड़म्बना को पैने रूप में सामने लाने के लिए मन्नू भण्डारी ने व्यंग्य विधान का सहारा लेकर इस

उपन्यास को विशिष्ट बना दिया है। इसका संकेत गोपाल राय उपन्यास की आलोचना क्रम में महत्वपूर्ण रूप से करते हैं। 'व्यंग्य' विधान के नाटकीय रूप के कारण ही गोपाल राय 'महाभोज' उपन्यास को सफल मानते हैं अन्यथा नहीं।

गोपाल राय 'महाभोज' उपन्यास की आलोचना करते हुए 'महाभोज' के विधान की विशिष्टता के उद्घाटन के आलावा इस उपन्यास की संरचना व प्रसंग विषयों की कुछ त्रुटियो का भी संकेत उदहरणों के साथ देते हैं। अथवा वे बिसू की हत्या की घटना को विश्वसनी नहीं मानते और उसे विश्लेषण के साथ पाठकों के सामने रखने का प्रयास भी करते हैं। इतना ही नहीं आज के समय में राजनीतिक जीवन हमारा अभिन्न अंग बन गया है। आज के राजनीतिक पक्षों से हो रही समाज की परिस्थिति को गोपाल राय ने 'महाभोज' उपन्यास के द्वारा चित्रित किया है। मन्नू भण्डारी का राजनीतिक दृष्टिकोण क्या है? इसे भी आलोचक गोपाल राय ने इस पुस्तक द्वारा स्पष्ट करने का प्रयास किया है। राजनीति से गरीब दलित आदिवासी स्त्रियों को हमेशा दबाया गया है। समाज में किसी घटना को लेकर राजनीतिक माहौल कैसे निर्माण किया जाता है इसका सही मूल्यांकन भण्डारी ने किया है।

'महाभोज' उपन्यास के सन्दर्भ में गोपाल राय का यह आलोचनात्मक प्रयत्न उनकी शोधमूलक और विश्लेषणपरक आलोचना दृष्टी के साथ-साथ इसलिए भी अधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि इस पुस्तक के माध्यम से ही उन्होंने 'महाभोज' के प्रति हिंदी आलोचना के उपेक्षा भाव को तोड़ा और हिंदी आलोचना को उस पर नये सिरे से विचार करने हेतु उद्वेलित किया है।

'अज्ञेय और उनके उपन्यास' पुस्तक गोपाल राय द्वारा लिखी गई समीक्षात्मक पुस्तक है। इस पुस्तक का प्रकाशन सन् 1975 में 'ग्रन्थ निकेतन' पटना से हुआ। यह पुस्तक लिखने का उद्देश यह रहा कि अज्ञेय का जीवन, रचना परिवेश, साहित्य

संबंधित विचार और उनका योगदान आदि बातों को एक साथ संग्रहित करने का प्रयत्न किया है। आलोचक गोपाल राय ने अज्ञेय के सम्पूर्ण उपन्यासों के आधार पर हिंदी साहित्य को नयी दृष्टी प्रदान की है। लवकुमार के अनुसार "हिंदी साहित्य संसार में सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन अज्ञेय और डॉ. गोपाल राय का नाम अपरिचित नहीं है क्योंकि एक सृजनधर्मी और संवेदनशील रचनाकार है तो दूसरे दायित्वबोध संपन्न गंभीर आलोचक और उपन्यास एवं कहानी के प्रामाणिक अध्येता है।"[216] डॉ. गोपाल राय ने अज्ञेय के उपन्यासों के मूल्यांकन और विश्लेषण में तटस्थता और निष्पक्षता बनाएँ रखने के लिए व्यक्ति और व्यक्तित्व पर विशेष जोर न देकर उसकी रचना प्रक्रिया पर ही अपना मंतव्य प्रकट कर उस परिवेश और परिस्थितियों का शब्दांकन किया है। इस पुस्तक में अज्ञेय के उपन्यासों के कई ऐसे पक्षों पर आलोचकीय दृष्टी पहुँच सकी है जो न केवल रचनाकार को जानने के लिए जरूरी है बल्कि उनकी रचना प्रक्रिया व पुष्ठभूमि को समझने में सहायक है।

डॉ. नन्दकुमार राय ने भी अज्ञेय और उनके तीनों उपन्यासों के सन्दर्भ में टिप्पणी की है कि, "अज्ञेय के इन तीनों ही उपन्यासों में मनोवैज्ञानिक प्रौढी का सहजत: दर्शन होता है। इनमें मनोविश्लेषण की गहन क्षमता, सुक्ष्म सौंदर्य बोध एवं कला के प्रति ईमानदारी व समर्पण का भाव हैं। अत: इनके उपन्यास सर्वत्र सृजन प्रक्रिया के परिणाम मालूम होते हैं। इनके पात्र गढ़े गए अथवा निर्मित न होकर यथार्थ के धरातल पर जीते-जागते अनगढ़ मनुष्य की तरह प्रतीत होते हैं। इसलिए उनकों अंतर्सत्य, व्यक्ति की जिवानुभुतियों से छानकर आते हुए लगे हैं अर्थात उनके अनुभव जीवन के भागे हुए सत्य की प्रतीति कराने वाले हैं, काल्पित अथवा ओढ़े हुए बिल्कुल नहीं।"[217] इस तरह अज्ञेय के उपन्यासों को गोपाल राय ने मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से मूल्यांकित करने की सफल तथा साक्षम कोशिश की है।

'रचना परिवेश' नामक अध्याय में अज्ञेय के रचना-संदर्भो, तत्कालीन परिस्थिति और परिवेश के साथ-साथ अज्ञेय का रचनाकार के रूप में व्यक्तित्व सामने आता है।

आरम्भ के दो अध्याय एक-दूसरे के संबंधित होने के कारण अज्ञेय के विचार परिपूर्ण रूप से समझ में आते हैं। इसलिए लेखक और उनकी पारिस्थिति हमेशा महत्वपूर्ण होती है। "अत: लेखक के लिए भी अज्ञेय के उपन्यासों का अध्ययन करने से पूर्व उस परिवेश की जानकारी अनिवार्य हो गई जिससे अज्ञेय के व्यक्तित्व का निर्माण हुआ और जिसके प्रति उनकी व्यक्तिगत प्रतिक्रियाएँ उनके व्यक्तिगत जीवन से छानकर उपन्यास रूप में अभिव्यक्त हुई। अज्ञेय की परिवेशगत विशेषताएँ उनके साहित्य में परिलक्षित होती है उनके उपन्यासों में न ग्रामीण जीवन का चित्रण मिलता है उनके उपन्यासों में न तो ग्रामीण जीवन का चित्रण मिलता है और न व्यापक समाज का।"[218] इसका कारण अज्ञेय ग्रामीण जीवन से दूर व नागरिक परिवेश के नजदीक रहते हैं।

'अज्ञेय के साहित्य संबंधी विचार' में गोपाल राय उनके विचारों को महत्व दिया है। उसके बाद क्रमश: चार अध्यायों में अज्ञेय के उपन्यासों की कथावस्तु, पात्रों का चरित्र चित्रण, शिल्पगत विशेषता और भाषा शैली आदि पर अपने विचार रखे हैं, जिसमें विवेचनात्मकता और व्याख्यात्मक अंदाज ज्यादा प्रबल है। मूल्यांकन का प्रयास अपेक्षाकृत कम है। 'प्राक्क्थन' में लेखक स्वयं स्वीकार करते हैं कि "अज्ञेय के उपन्यासों के मूल्यांकन के पूर्व उनकी व्याख्या भी अपेक्षित है जिसके बिना मूल्यांकन का कार्य सम्भव नहीं। यह पुस्तक मुख्यता: अज्ञेय के उपन्यासों की व्याख्या का प्रयास है। इस क्रम में यत्र-तत्र मूल्यांकन की कोशिश भी की गई है पर यह मुख्य उद्देश नहीं।"[219] संभवता यह कारण है कि अज्ञेय के उपन्यासों में विषय-वस्तु के विवेचन में जितना विस्तार है उतनी गहराई नहीं क्योंकि यहाँ विवेचन मुख्य है पर मूल्यांकन का नहीं।

अज्ञेय द्वारा रचित अब तक तीन उपन्यास लिखे गए है। इन तीनों उपन्यासों की अलग-अलग पहचान है। इन पहचान को बनाएँ रखने वाले रचनाकारों के वर्ग का भारतीय समाज में एक प्रकार का पैटर्न बन चुका था। लेखक अपनी सीमाओं को न

दिखाकर उन सीमाओं को ही पैटर्न बना चूके है और अज्ञेय नें उन सीमाओं को न दिखाकर उन्हें अपनी शक्ति माना है।

प्रेमचंद के बाद हिंदी उपन्यास में नया मोड़, नयी आस्वाद और नई दृष्टी के साथ जीवन और साहित्य के अंतरसंबंध का गहन अध्ययन करने वाले अज्ञेय ही है। अज्ञेय ने आत्मकथात्मक प्रविधि को उत्कर्षता प्रधान की और अपने मुख्य पात्रों से कहानी कहलाने की बजाय उसके मन मस्तिकषक में दृश्य-चित्र की तरह चलायमान तत्वों और आत्मानुभावों को प्रकट किया। इसी प्रकटीकरण केलिए और पात्रों की विभिन्न मन:स्थितियों और अनुभूति के दीप्त क्षणों को वाणी देने के लिए उन्होंने जिस भाषा का सहारा लिया उसमें कसाव और मित व्ययित के साथ रचनात्मक गुणों का सहज विशिष्ट है। 'हिंदी उपन्यास साहित्य में अज्ञेय का स्थान और योगदान' एक महत्वपूर्ण अध्याय है जिसमें लेखक ने अज्ञेय की औपन्यासिक कृतियों का मूल्यांकन उनके समकालीन रचनाकारों के महत्वपूर्ण उपन्यासों के साथ अथवा उसके परिपेक्ष्य में किया है।

समकालीन उपन्यासकारों में अज्ञेय का एक विशिष्ट स्थान रहा है। अज्ञेय सामाजिक चेतना की अभिव्यक्ति की दृष्टी से यशपाल, अमृतलाल नागर, रेणु, हजारी प्रसाद द्विवेदी अन्य उपन्यासकारों की तुलना में पीछे देखा जा सकता है। लेकिन अभिव्यक्ति की कलात्मक दृष्टी से हजारी प्रसाद द्विवेदी और रेणु को छोड़कर और किसी समकालीन उपन्यासकार से अज्ञेय की तुलना करना उचित नहीं होगा। अज्ञेय हिंदी उपन्यास को एक नई दिशा देने वाले सार्थक साहित्यकार के रूप में प्रमुख माना जाता है। उनके तीनों उपन्यास तीन शैलियों में तथा तीन विभिन्न मानसिकता से जुड़े होने के साथ-साथ तीन दशकों में लिखे गए उपन्यास है।

कह सकते हैं कि गोपाल राय की आलोचना दृष्टी में विचारों की उदात्तता है। भाषा एवं शैली को प्रौढ़ता मिलती है। उनकी अंतर्दृष्टि अत्यंत सारपूर्ण है। इसका प्रयोग अज्ञेय के उपन्यासों की आलोचना करते समय हुआ है। पांडित्य दर्शन से मुक्त पूर्वाग्रह से

मुक्त होकर तटस्थता निष्पक्ष अंतर्मन से अज्ञेय के उपन्यासों की आलोचना विश्लेषणात्मक विवेचनात्मक पद्धति से की है। इसलिए यह कार्य सराहनीय है।

3. 4 इतिहास लेखक के रूप में आलोचना :

गोपाल राय ने हिंदी साहित्य में एक महत्वपूर्ण इतिहासकार और आलोचक के रूप में बड़ी पहचान बनायी है। वे समीक्षा पत्रिका का संपादन करते हुए पिछले चार-पाँच दशकों से एक गंभीर आलोचक के रूप जाने जाते हैं। उन्होंने हिंदी में कथा साहित्य का इतिहास' बड़े ही सटीकता से साहित्य को दिया है। ख़ास तौर पर हिंदी उपन्यास, हिंदी कहानी का विस्तृत इतिहास आदि से संबंधित बड़ी महत्वपूर्ण किताबें हिंदी पाठकों के लिए लिखी है।

मैंनेजर पाण्डेय ने इतिहास लेखन की दो दृष्टियाँ बताई है। एक है समावेशी दृष्टी और दूसरी बहिष्कार वादी दृष्टी। पहली में हिंदी साहित्य के इतिहास में मौजूद सभी रचानाओं, रचनाकारों और रचना दृष्टियों का विवेचन तथा मूल्यांकन होता है। उसमें छाटने, बनाने और चुनने की प्रवृति नहीं होती। यही नहीं उसमें उन रचनाओं और रचानाकरों की अपेक्षा या बहिष्कार की प्रवृति भी नहीं होती जिनकी रचना दृष्टी और जीवन दृष्टी से इतिहास लेखन की सहमती नहीं होती। इस प्रकार की दृष्टी रखने वाले इतिहासकार के रूप में गोपाल राय नज़र आते हैं। मैंनेजर पाण्डेय के अनुसार "गोपाल राय के हिंदी उपन्यास में समग्र इतिहास लेखन की चिंता है। असहमती के कारण किसी का बहिष्कार नहीं है। अगर असहमती है तो उसका उल्लेख ज़रूर है। इसमें अनेक उपन्यासकरों और उनके उपन्यासों का विवेचन है जो हिंदी उपन्यास के पाठकों के लिए अपरिचित और अज्ञात है।"[220]

मैंनेजर पाण्डेय बहिष्कार वादी इतिहास लेखक के रूप में गोपाल राय को दूर रखते हैं। गोपाल राय ने कभी भी किसी भी रचना या रचनाकार का बहिष्कार नहीं

किया। उन्होंने उसका मुल्यांकन जरुर किया होगा परन्तु उसे उपेक्षित नहीं रखा बल्कि असहमती दी है। उदाहरण के लिए मैंनेजर पाण्डेय बहिष्कार वादी दृष्टी रखनेवाले इतिहासकार के रूप में रामस्वरूप चतुर्वेदी का इतिहास 'हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास' को मानते हैं। "हिंदी साहित्य के इस इतिहास में आधुनिक काल में विवेचन के कवि के रूप में त्रिलोचन के नाम का उल्लेख तक नहीं है। कवि नागार्जुन का विवेचन केवल चार-पांच वाक्यों में है। यही नहीं कथाकारों के विवेचन में कृष्ण सोबती के नाम का उल्लेख है और उनका केवल एक रचना का जिक्र। यही स्थिति राही मासूम रजा, श्रीलाल शुक्ल और शानी आदि की है।"[221]

इतिहास लेखन में सही और सटीक स्त्रोतों का बौद्धिकता से विवेचन उपन्यास विधा में होता है। हिंदी साहित्य में उदय की भौतिक, बौद्धिक परिस्थितियों का ऐतिहासिक घटनाओं से अवलोकन करते हैं "हिंदी उपन्यास का भारतीय नवजागरण से गहरा संबंध है। बंगाल और महाराष्ट्र की तुलना में हिंदी क्षेत्र में नवजागरण की प्रक्रिया कुछ बाद में आरम्भ हुई इसलिए हिंदी में उपन्यास का आरम्भ भी बंगला और मराठी की अपेक्षा तनिक बाद में हुआ।"[222]

गोपाल राय ने उपन्यास इतिहास के बहाने स्त्री उपन्यासकर के इतिहास को भी खोज निकाला है। उन्होंने लिखा है "भारत में जैसे समाज के इतिहास लेखन में स्त्रियों की कर्मठता, संघर्षशीलता और शहादत की प्राय: उपेक्षा होती रही है। वैसे ही साहित्य के इतिहास लेखन में भी स्त्रियों की सर्जनात्मक संघर्षशीलता और उपलब्धियों की उपेक्षा होती रहती है। हिंदी उपन्यास का इतिहास लिखते समय गोपाल राय ने ऐसा नहीं किया है। उन्होंने हिंदी उपन्यास के विकास के प्रत्येक दौर में स्त्रियों के उपन्यास लेखन पर ध्यान दिया है, कुछ का केवल रचना समेत नामोल्लेख किया है तो कुछ का व्यावस्थित विश्लेषण और मूल्यांकन भी किया है।"[223] हिंदी उपन्यास के आरम्भ से ही

स्त्रियाँ रचनाशत रही है। प्रेमचंद पूर्व के हिंदी उपन्यास की चर्चा करते हुए गोपाल राय लिखते हैं “इस काल की एक महत्वपूर्ण विशेषता उपन्यास लेखन के क्षेत्र में लेखिकाओं की बढ़ती हुई जिम्मेदारी है। यों तो हिंदी की प्रथम कथा लेखिका बंग महिला, मल्लिका देवी के पहले मौलिक उपन्यास लेखिका कोई सद्दि, सती, प्राण अबला थी जिन्होंने अपना वास्तविक नाम गुप्त रखकर 1890 ई. में सुहासिनी नामक उपन्यास लिखा और प्रकाशित कराया था। यदि वे अबला ब्रजरत्नदास के अनुसार मल्लिका देवी ही है, तो उन्हें हिंदी की पहली मौलिक उपन्यास लेखिका भी मानना होगा।”[224]

गोपाल राय की ‘हिंदी उपन्यास का इतिहास’ और ‘हिंदी कहानी का इतिहास’ अत्यंत महत्वपूर्ण रचनाएँ थी। जिन्हें गोपाल राय ने दस वर्षों के अथक श्रम से पूरा किया है। ‘हिंदी कहानी का इतिहास’ को अब तक तीन खण्डों में प्रस्तुत किया गया है। आज के समय में उनकी लोकप्रियता का प्रमुख आधार इन ग्रंथो को माना जाए तो भी अतिशयोक्ति नहीं होगी। इसके अलावा भी गोपाल राय का रचना संसार काफी बड़ा है। और उनकी पुस्तके विद्यार्थी, पाठकों के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण मानी जाती है, परन्तु इन्हें इतिहास की पुस्तकों के माध्यम से जो प्रसिद्धि मिली, वह और अन्य पुस्तकों की तुलना में ज्यादा और संभवतः स्थायी भी है। गोपाल राय ने इन दोनों इतिहास पुस्तकों में हिंदी कथा साहित्य के प्रारम्भ से लेकर 2000 ई वीं तक का इतिहास प्रस्तुत करने की कोशिश की है।

गोपाल राय ने ‘हिंदी उपन्यास के इतिहास’ में हिंदी उपन्यास के उदय की भौतिक और बौद्धिक परिस्थितियों तथा प्रेरणा स्त्रोंतों का व्यावस्थित विवेचन किया है। इस सन्दर्भ में इतिहासकार ने लिखा है, भारतीय साहित्य में आख्यान के जो विभिन्न रूप और नाम थे, उनसे उपन्यास का स्वरूप भिन्न था, इसलिए उचित नाम की खोज

एक समस्या थी। इस समस्या के समाधान के लिए कहीं परंपरा से मदद ली गई तो कहीं आविष्कार की प्रवृत्ति से। मराठी में उपन्यास के लिए 'कांदबरी' नाम स्वीकृति हुआ, तो गुजराती में उसे 'नवल कथा' कहा गया। 'नवल कथा' के नाम में उपन्यास की नवीनता की ओर संकेत है और कथा की भारतीय परंपरा की ओर भी। हिंदी में लोकप्रिय 'उपन्यास' नाम बंगला से आया बंगला में भूदेव मुखर्जी की पुस्तक 'ऐतिहासिक उपन्यास' (1862) में सबसे पहले इसका प्रयोग हुआ। बाद में बंकिम चन्द्र चटर्जी ने अपनी रचनाओं को 'उपन्यास' कहे तो उनके उपन्यासों की लोकप्रियता के साथ यह रूप भी आरम्भ में बंगला से ही आया। इधर जब से हिंदी नवजागरण की चर्चा का शोर बढ़ा। तब 'उपन्यास' शब्द हिंदी का ही है यह सिद्ध करने पर सारा जोर लगाया जा रह था। इस प्रयत्न में भारतीय नवजागरण की अनेक सच्चाइयों को झुठलाने की कोशिश हो रही थी। ऐसी स्थिति में कुछ लोगों को यह बात स्वीकार करने में कठिनाई होगी कि 'उपन्यास' शब्द बंगला से हिंदी में आया है। लेकिन यह एक ऐतिहासिक सच्चाई है।

3. 5 अन्य विषयों से सम्बंधित आलोचना :

अपूर्ण अध्ययन तथा तर्क के आधार पर पाठकों का कुछ एक वर्ग आलोचक गोपाल राय को मात्र कहानी और उपन्यास का ही आलोचक मानाता है, जबकि गोपाल राय ने कहानी और उपन्यासों के आलावा साहित्य के अन्य विषयों पर भी लगातार अपनी कलम चलाई हैं। उन्होंने अपभ्रंश और हिंदी समस्या, नवजागरण, हिंदी की बोलियों की समस्याएँ, हिंदी उर्दू विवाद और कविताओं पर लिखा है। जैसे उन्होंने 'बाघ' केदारनाथ सिंह, की कविता पर बड़े अच्छे ढंग से अपनी आलोचना की थी। अन्य विषयों से संबंधित आलोचना में उनकी 'हिंदी भाषा का विकास' पुस्तक अधिक महत्व

रखती है। वैसे तो 'हिंदी भाषा के विकास' के संदर्भ में अनेक ग्रंथ लिखे जा चुके है, लेकिन गोपाल राय के ग्रंथ का स्थान अत्त्यंत महत्वपूर्ण है। उनका यह ग्रंथ 'भाषा के विकास' में अनेक बातों में और निर्णय में विलक्षण एवं विशिष्टता लिए हुए है।

गोपाल राय ने प्रस्तुत पुस्तक में बारह अध्यायों में 'हिंदी भाषा के उद्भव, उसके विकास के अनेक सोपानों का प्रमाणिक और विस्तृत विवरण देते हुए उन्नीसवीं शताब्दी से लेकर आज तक खड़ीबोली के साहित्यिक भाषा के रूप में विकास को तर्क पूर्ण शैली में प्रस्तुत किया है। साथ ही साथ स्वतोन्त्रोत्तर भारत के संघ भाषा, राजभाषा के रूप में उसके नये विकास का भी विवरण प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। अंतिम दो अध्यायों में मानक हिंदी, व्याकरण वर्तनी और देवनागरी लिपि के मानकीकरण पर भी गंभीरतापूर्वक विचार किया है। इस प्रकार इस पुस्तक में हिंदी भाषा के विकास के विभिन्न सोपानों पर गंभीरता से विश्लेषण और विवेचन किया गया है। 'हिंदी भाषा के विकास' के इतिहास संदर्भ में सामने आए अनेक प्रश्नों और गुत्थियों को भी समीक्षात्मक ढंग से सुल्झाने का प्रयास इस ग्रन्थ में हुआ है। हिंदी की सगोत्रीय भाषाओं को साथ लेकर आज हिंदी भाषा किस प्रकार अपने वर्त्तमान रूप को प्राप्त कर सकी है इसे ऐतिहासिक परिपेक्ष्य में समझने और समझाने का प्रयास भी गोपाल राय ने इस पुस्तक में किया है।

गोपाल राय हिंदी भाषा और साहित्य के गंभीर विद्वान के रूप में जाने जाते हैं। अपने सुदीर्घ अध्ययन और अध्यापन काल के गहरे अनुभवों के आधार पर उन्होंने पाया कि हिंदी के पूर्वकालीन इतिहासकारों ने खड़ीबोली या आधुनिक हिंदी में लिखित साहित्य का इतिहास प्रस्तुत करने में अपेक्षित सावधानी और वैज्ञानिक दृष्टी नहीं अपनायी है। गोपाल राय के पूर्व का इतिहास लेखन अनेक विरोधाभासों से ग्रसित है। इसलिए गोपाल राय ने भाषा विषयक अनेक विरोधाभासों और असंगतिओं का

यथासंभव उल्लेख करते हुए उनके निराकरण का प्रयास भी किया है। इस क्रम में खड़ीबोली के पूर्वर्ती अपभ्रंश, अवहट्ट और आधुनिक हिंदी भाषा तथा साहित्य विषयक अनेक बहुप्रचलित मतो का निर्ममता पूर्वक खंड़न कर उसकी वास्तविक स्थिति को स्पष्ट करने का कार्य किया है। गोपाल राय का यह प्रयास उनके विवेचन और विश्लेषण की विशेषता मानी जायेगी।

ऐतिहासिक दृष्टी से भाषा के अर्थ में 'हिंदी' पद का प्रयोग तेरहवीं शताब्दी के पहले नहीं मिलता। संस्कृत, प्राकृत या अपभ्रंश साहित्य में कहीं भी 'हिंदी' पद का प्रयोग नहीं दिखाई देता। तेरहवीं और चौदहवीं शताब्दी में प्रसिध्द फारसी कवि 'अमीर खुसरो' ने (1253-1325) उत्तर भारत की देशी भाषा में 'हिंदी' या 'हिंदवीं' की संज्ञा प्रदान की। उस समय तक किसी विशिष्ट भाषा के लिए 'हिंदी' या 'हिन्दवीं शब्द का ही प्रचलन नहीं हुआ था। पन्द्रहवीं शताब्दी के बिल्कुल आरम्भ में बन्दानवाज गोसुदराज ने दक्षिण में काव्य रचना आरम्भ की, पर उन्होंने अपनी भाषा को कोई विशेष नाम नहीं दिया। पर बाद में इस परम्परा के प्रसिद्ध कवि शाहमीरो जी शमसुल अश्शक ने अपनी काव्य भाषा को 'हिंदी' कहा। इसके बाद इस काव्य-धारा के अनेक कवियों ने अपनी भाषा को 'हिंदी' कहकर पुकारा था। इस प्रकार 'दक्खिनी' कवियों ने खड़ीबोली पर आधारित अपनी काव्य भाषा के लिये 'हिंदी' (हिन्दवीं) संज्ञा को सुपरिचित बना दिया। मलिक मुहम्मद जायसी ने अपने काव्य ग्रन्थ 'पद्मावत' (1527-40) में अपनी भाषा को 'हिन्दवीं' कहा है, 'तुर्की अरबी हिंदी भाषा जेति आहि। जामें मारग प्रेम का सबै सराहैं ताहीं।' उल्लेखनीय है कि जायसी ने अपनी भाषा को 'अवधी' नहीं कहा है। जबकि उस समय यह नाम प्रचलित था। प्राय: इस्लामी परंपरा से जुड़े मुसलमान कवि देशी भाषा के लिए केवल 'भाषा' या 'भाखा' शब्द का प्रयोग करते थे। कबीरदास लिखते हैं

'संसकिरत है कूप जल, भाषा बहता नीर'। गोस्वामी तुलसीदास अपनी भाषा को 'भाषा' ही कहते हैं। 'भाषा का संस्कृत, प्रेम चाहिए साँचे। अकबर के दरबारी कवि अब्दुर्रहीम खानखाना प्रधानत: ब्रजभाषा और गौणता: अवधी के कवि थे, पर उन्हें उस समय 'हिंदी' कवि ही कहा जाता था। इससे प्रतीत होता है कि उस समय 'भाषा' और 'भाखा' 'हिंदी और 'हिन्दवीं' समानार्थक शब्द थे। लगभग इसी समय दिल्ली के आसपास की भाषा के लिये 'हिंदुस्तानी' शब्द का प्रयोग भी प्रचलित हुआ। इस प्रकार मुगल काल में 'हिंदी' 'हिन्दवीं' भाषा और 'हिंदुस्तानी' शब्द पर्यायवाची था। इंशा अल्ला खा फारसी, अरबी आदि बाहरी भाषाओं के संदर्भ में 'हिंदी' शब्द का प्रयोग अधिकांशत: सामान्य अर्थ में 'मध्य प्रदेश' की भाषा के लिए करते हैं।

भाषा वैज्ञानिकों के अनुसार 'हिंदी' कोई एक भाषा न होकर एक भाषिक परिवार या संघ है, जिससे ब्रजभाषा, अवधी, खड़ीबोली आदि उपभाषाएँ समान स्तर पर अवस्थित है। साहित्य के इतिहासकार भी यही मानते हैं, पर जब आधुनिक साहित्य का इतिहास लिखने लगते हैं तब केवल खड़ीबोली पर आधारित आधुनिक परिनिष्ठित हिंदी को ही 'हिंदी' के रूप में स्वीकार करते हैं। जो वह आज व्यावहरिक रूप में हिंदी का अर्थ खड़ीबोली पर आधारित आधुनिक परिनिष्ठित हिंदी हो गया है और गोपाल राय के अनुसार वह दिन भी बहुत दूर नहीं जब भोजपुरी, मैथिली, मगही, अवधी, ब्रज, राजस्थानी आदि भाषाएँ हिंदी से भिन्न एक परिवार की भाषाओं के रूप में समावेश हो जायेगी।

लेखक 'हिंदी भाषा का विकास' के दूसरे अध्याय में हिंदी की उपभाषाओं, भाषाओं के पारस्पारिक संबंधो, उसके भाषिक स्वरूप एवं भाषा के रूप में उनके

व्यावहार क्षेत्र पर विचार करते हैं। वे यह स्पष्ट करते हैं कि आरम्भ में हिंदी एक भाषा नहीं थी। उसके अन्तर्गत मध्यदेश की लगभग सभी भाषाएँ अवधी और ब्रजभाषा सम्मिलित थी। आधुनिक काल में जब 'हिंदी' भाषा को परिभाषित किया जाने लगा तो भाषा वैज्ञानिकों और सहित्येतिहासकारों ने एक दूसरे से भिन्न दृष्टीकोण अपनाया। ग्रियर्सन, सुनीतिकुमार चैटर्जी, धीरेन्द्र वर्मा, उदायानारण तिवारी आदि भाषाशास्त्रियों के अनुसार प्राचीन मध्य देश की मुख्य बोलियों के समूह को 'हिंदी' नाम से पुकारा जाता था। गोपाल राय के अनुसार उत्तर भारत की हिंदी परिवार की भाषाओं का यहाँ वर्गीकरण और क्षेत्र निर्धारण बहुत कुछ आधारहीन और संकीर्ण है। गोपाल राय के अनुसार हिंदी की तर्क संगत भाषिक व्यवस्था यह होगी कि पश्चिमी हिंदी, पूर्वी हिंदी, बिहारी, राजस्थानी और पहाड़ी वर्ग के अंतर्गत आनेवाली भाषाएँ वृहद हिंदी परिवार की मानी जाती है। इस संदर्भ में वे एक अंतर्विरोध की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करते हैं। वह यह कि हिंदी साहित्य के अंतर्गत राजस्थानी, मैथिली, अवधी, ब्रज भाषा और खड़ी बोली में लिखित साहित्य का विवेचन किया जाता था। पर आधुनिक काल तक आते आते खड़ीबोली पर आधारित मानक हिंदी को छोड़कर हिंदी परिवार की अन्य किसी भाषा या उपभाषा को साहित्य विवेच्य नहीं समझा जाता। हिंदी साहित्य के इतिहास के यह अंतर्विरोध भाषा संबंधी अनेक समस्याएँ पैदा करते हैं।

आगे गोपाल राय हिंदी की उपभाषाओं तथा उनके पारस्परिक संबंधो पर विचार करते हैं। उनके मतानुसार उत्तर भारत की हिंदी परिवार की भाषाओं का वर्गीकरण, क्षेत्र निर्धारण आधारहीन और संकीर्ण है। आगे हिंदी परिवार की भाषाओं का परिचय संक्षेप में देते हुए यह मानते हैं कि हिंदी परिवार या बृहत्तर हिंदी परिवार की उपभाषाओं के अंतरसंबंध पर प्रकाश ड़ालना एक चुनौतीपूर्ण शोध कार्य है जिसे मैंने किया है। उनके अनुसार आधुनिक मानक हिंदी के निर्माण में अवधी, ब्रजभाषा और

खड़ी बोली इन तीनों उपभाषओं का मुख्य योगदान रहा है। अवधी और ब्रजभाषा के संबंध निरूपण पर वे विस्तार पूर्वक एवं बड़ी सूक्ष्मता से समझाते हुए उनके शब्दों और ध्वनि की समानता की चर्चा भाषा वैज्ञानिक तरीके से विस्तारपूर्वक करते हैं। उनके अनुसार शब्द भंड़ार की दृष्टी से ब्रज और अवधी में कोई विशेष अंतर नहीं है। इस विस्तृत एवं गंभीर विश्लेषण के आधार पर वे निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि यद्यपि बृहद हिंदी परिवार की भाषाए स्वतन्त्र भाषाएँ है, पर उनका ध्वनिगत, शब्दगत तथा व्याकरण संबंध बहुत घनिष्ठ है। किसी समय ब्रजभाषा हिंदी परिवार की स्वीकृति साहित्यिक भाषा थी और न केवल अवधी, भोजपुरी, मगही, मैथिलि और राजस्थानी क्षेत्र के कवि ब्रजभाषा में काव्य-रचना करते थे। वरन् असम, बंगला, गुजरात, महाराष्ट्र और यहाँ तक केरल में भी ब्रजभाषा में काव्य रचना हुआ करती थी। पर परिस्थितियों का तकाजा ही था कि आधुनिक काल में ब्रजभाषा साहित्यिक सिंहासन से उतार दी गयी और वह स्थान खड़ीबोली हिंदी को मिल गया। अत: मानक हिंदी आज हिंदी क्षेत्र की जातीय भाषा और प्रतिनिधि भाषा है इसमें कोई संदेह नहीं।

लेखक अपभ्रंश, अवहट्ट, पुराणी हिंदी तथा प्रारंभिक हिंदी के स्वरूप और अंतर्संबंध पर बड़े विस्तारपूर्वक एवं गहराई से विचार प्रस्तुत करते हैं। उनका विचार है अपभ्रंश हिंदी के संबंध निर्धारण में अवहट्ट, पुरानी हिंदी आदि पदों के अनिश्चित अर्थों के प्रयोग के कारण अनेक भ्रम पैदा होते हैं जिनके निराकरण की आवश्यकता पर वे जोर देते हैं। अपभ्रंश के स्वरूप पर विचार करते हुए वे जैन और सिद्ध साहित्यों के अतिरिक्त उस में रचित लौकिक साहित्य पर भी विचार करते हैं। ग्याहरवी शताब्दी के प्रारंभ में अद्दहमाण या अब्दुल रहमान (1010) के 'सन्देश रासक' (संनेहय रास) नामक लैकिक काव्य का उल्लेख करते हैं। इस काल का एक और उल्लेखनीय संग्रह ग्रंन्थ जैनाचार्य मेरुतुंग कृत 'प्रबन्ध चिंतामणि' की चर्चा करते हैं। साथ ही 'प्राकृत पैंगलम्' जो छन्द शास्त्र है उनमें अधिकतर छन्द अपभ्रंश की हैं और पुराने है जो हिंदी के निकट

है। अपभ्रंश की अंतिम महत्वपूर्ण रचनायें विद्यापित की 'कीर्तिपताका' और कीर्तीलता का उल्लेख कहते हैं। जिसमें से पहेली ही अपभ्रंश पूर्ण रूप में उपलब्ध है ।

इस पुस्तक में आगे वे 'अपभ्रंश', 'अवहट्ट' 'पुरानी हिंदी' और 'प्रारभिक हिंदी' आदि पदों का सटीक अर्थ-निर्धारण के प्रति विचार करते हैं। अपभ्रंश, अवहट्ट को आठवीं शताब्दी तक 'देशी भाषा' कहते थे। ग्यारहवी शताब्दी के आरम्भ में अद्दहमाण ने अपनी भाषा की 'अवहट्ट' की संज्ञा दी। इस प्रकार 'अपभ्रंश' के लिये 'अवहट्ट' शब्द का प्रथम प्रयोग करनेवाले कवि अद्दहमाण है। बाद में चौदहवीं शताब्दी में विद्यापति ने 'अवहट्ट' शब्द का प्रयोग किया। पं. चंद्रधार शर्मा गुलेरी जी ने अपभ्रंश भाषा को 'पुरानी हिंदी' कहा। पहली बार उन्होंने घोषित किया कि अपभ्रंश 'पुराणी हिंदी' है। गोपाल राय यहाँ प्रश्न करते हैं कि अपभ्रंश कवियों की 'पुरानी हिंदी' कहने का कोई विशेष औचित्य है?

डॉ. नामवर सिंह ने माना कि 'परिनिष्ठित अपभ्रंश का मूल आधार पश्चिमी शौरसैनी प्राकृत की परम्परा में है। लेखक का प्रश्न यह है कि इन मान्यताओं का कोई विश्वसनीय आधार नहीं है कह कर वे अमान्य कर देते हैं।' उनके मतानुसार हिंदी के विद्वान इस पूर्वगृह से ग्रस्त है कि पश्चीमी हिंदी की भाषा ही परिनिष्ठित हो सकती है। इस पूर्वाग्रह का ही परिणाम है कि भोजपुरी, मगही, मैथिलि आदि भाषा को वे 'हिंदी परिवार' की सह भाषा या सगोत्रीय भाषा नहीं बल्कि विभाषा मानते हैं। पाश्चिमी अपभ्रंश को भी परिनिष्ठित अपभ्रंश मानने की यह प्रवृत्ति इसी पूर्वाग्रह का परिणाम है जिसके पीछे कोई प्रमाणित तथ्य या तर्क नहीं है। कमजोर आधार तथ्यों और तर्कों के आधार पर नामवर सिंह के निष्कर्ष को वे भ्रामक मानते हैं और असंगतियों को भी स्पष्ट करते हैं। इसी प्रकार डॉ. शिव प्रसाद सिंह के विवेचन-विश्लेषण पर विचार करते हुए गोपाल राय का मत है, अंग्रेजी मुहावरे के मुताबिक अत्यंत बुरी तरह मिश्रित भ्रम जाल

confusion word contounded मानते हैं। उनके अनुसार शिव प्रसाद सिंह के विवेचन बिस्मिल्ल्हा ही लगते हो। उनका निष्कर्ष भी है हेत्वाभास से भरा हुआ है। इस प्रकार की अटकलबाजी से वैज्ञानिक निष्कर्ष पर पहुँचने की आशा करना बेकार है। उनके मतानुसार डॉ. नामवर सिंह और डॉ. शिव प्रसाद सिंह की 'अपभ्रंश' और अवहटट' विषयक स्थापनों के विश्लेषण के पीछे तथ्य और तर्क का बल नहीं है।

गोपाल राय 'भाषा का विकास' पुस्तक के आगे के अध्यायों में अपभ्रंश की व्याकरणिक विशेषताओं पर विचार करते हैं जो तर्क और तथ्य के आधार पर है। इसी प्रकार गोपाल राय 'अपभ्रंश का हिंदी से संबंध' पर भी अपने विचार व्यक्त करते हैं। अपभ्रंश और हिंदी साहित्य के विकास से यह निष्कर्ष निकालना भ्रामक होगा कि 'अपभ्रंश' का ही विकास हिंदी के रूप में हो गया है। गोपाल राय का यह पुस्तक विवेचनात्मक, विश्लेषणात्मक और तर्कपूर्ण शैली में हिंदी भाषा के उद्दगम और विकास की आलोचनात्मक इतिहास प्रस्तुत करती हैं। गोपाल राय ने भाषा के विकास के सदंर्भ में उनका विभिन्न पक्षों पर और अनेक पहलुओं का निष्पक्ष होकर और तटस्थ होकर बड़ी गंभीरता से प्रस्तुत किया है।

3. 6 गोपाल राय की आलोचनात्मक दृष्टि : सामान्य परिचय

शुरुआती दौर से हिन हिंदी आलोचना के क्षेत्र में आलोचना का केंद्र बिंदु काव्य ही रहा है। रीतिकालीन कवियों की टिकाओं को देखे तो उन्होंने केवल रीति ग्रंथों पर ही अपनी टिकाएँ दी है। आलोचना के क्षेत्र में नवजागरण काल से परिवर्तन दृष्टिगत होता है। भारतेंदु युग में आलोचना के बीज अंकुरित होते हैं और वहीं से कथा साहित्य की आलोचना का भी मार्ग प्रशस्त होता है। भारतेंदु युग, द्विवेदी युग, शुक्ल युग तथा उसके बाद की युगों में अधिकतर आलोचनाएं महाकाव्य, खंडकाव्य तथा मुक्तक काव्य

के इर्द-गिर्द ही घूमती रही। इन तीनों कालों में भी बहुत कम ऐसे आलोचक है जिन्होंने कथा-साहित्य के विषय को अपनी आलोचनाओं में स्पष्ट किया है। समकालीन समय तक आते-आते आलोचना के क्षेत्र में भी पर्याप्त परिवर्तन हुए, जहाँ आलोचकों ने कविता के साथ-साथ कहानी, उपन्यास, नाटक, रेखाचित्र, रिपोर्ताज, आत्मकथा आदि विधाओं पर महत्वपूर्ण रूप से अपनी आलोचनाओं को प्रस्तुत किया।

प्रत्येक आलोचक की रचना के प्रति अपनी एक अलग दृष्टि तथा चिंतनशील विचारशक्ति होती है। हर आलोचक कृति के संदर्भ में अपने मानदंडों को प्रस्तापित करते हुए कृति का विश्लेषण करता है। कृति के सामाजिक दायित्व के साथ व्यक्ति मानस और समाज में उसके प्रभाव को वह विविध संदर्भों में आलोचना के द्वारा प्रस्तुत करता है। आलोचना एक ऐसा कार्य है जो रचनाकार के उत्तरदायित्व को पूर्ण न्याय देने की कोशिश करता है।

आलोचना के क्षेत्र में कुछ ऐसे साहित्यकार है जिन्होंने आलोचना को केवल अपना कर्म न मानते हुए उसे अपना प्राण माना है। ऐसे ही आलोचकों में प्रमुख रूप से गोपाल राय हमारे सामने उपस्थित होते हैं। उनकी आलोचना दृष्टि रचना के साथ पाठक तथा श्रोता वर्ग को भी नए आयाम प्रदान करती है। गोपाल राय के द्वारा हिंदी कथा-साहित्य तथा हिंदी भाषा के संदर्भ में दिया हुआ योगदान सदा ही शोधार्थी, अध्यापक और अध्ययन कर्ताओं के लिए प्रेरणादाई एवं प्रोत्साहन वर्धक रहेगा। गोपाल राय ने अपनी आलोचनात्मक दृष्टि से हिंदी कथा-साहित्य में अनेक नए मानदंडों की स्थापना की है। उनके द्वारा किया गया कृति का मूल्यांकन न किसी की खुशामद से किया गया है और न ही किसी के दबाव में। वे हमेशा एक तत्पर और तटस्थ आलोचक के रूप में हमारे सामने कृति की आलोचना को प्रस्तुत करते हैं। रचनाकार एवं आलोचक दोनों में कभी-कभी मतभेद निर्माण होते हैं परंतु गोपाल राय के साथ ऐसा काफी कम हुआ है। उन्होंने रचना के दोनों पक्षों को न्याय देने का प्रयास किया है वे रचना के सामाजिक दायित्व के साथ-साथ रचना के कला सौंदर्य पर भी गौर से विचार

करते हैं। एक रचनाकार का सामाजिक दायित्व क्या होना चाहिए और उसकी कलात्मकता का समाज पर क्या प्रभाव रहा, इस बात का परिचय वे यथार्थ पूर्ण ढंग से देते हैं। उनके द्वारा दिया गया विवेचन तथा विश्लेषण हवा में तीर चलाने जैसा नहीं है वे रचना में प्रस्तुत हर विषय को पूर्ण प्रमाणों के साथ प्रस्तुत करते हैं।

अपनी आलोचनात्मक कृतियों में उनका दृष्टिकोण हमेशा व्यक्तिपरक और वस्तुपरक ही रहा है। उन्होंने हर रचना की आलोचना रचना के दायित्व पर की है न कि लेखक के पद प्रतिष्ठा पर। 'देवरानी जेठानी की कहानी' को हिंदी का पहला उपन्यास मानने के पक्ष में उन्होंने जो प्रमाण प्रस्तुत किए हैं वे आज उपन्यास की तर्ज पर खरे उतर रहे हैं। हिंदी के प्रथम उपन्यास के प्रति उनका दृष्टिकोण सदा स्थापनाओं और मानदंडों से प्रेरित रहा है। उसी प्रकार उन्होंने अपनी आलोचनात्मक दृष्टि में कभी भी राजनीतिक विचारधारा को सम्मिलित नहीं होने दिया। वे पटना शाखा के 'हिंदी प्रगतिवादी लेखक संघ' के सदस्य रह चुके हैं किंतु किसी भी कृति को उन्होंने प्रगतिवाद या मार्क्सवाद की तर्ज पर नहीं टटोला है। प्रगतिवादी संघ से जुड़े होने बावजूद भी उन्होंने 'शेखर : एक जीवनी मूल्यांकन' में अज्ञेय के रचना विधान को पूर्ण रूप से न्याय देने का प्रयत्न किया है। साथ ही मन्नू भंडारी के 'महाभोज' की आलोचना करते हुए उन्होंने कभी उपन्यास के राजनीतिक परिवेश पर टिप्पणी अथवा चोट नहीं की है। इसी प्रकार 'दिव्या' के संदर्भ में भी उनका दृष्टिकोण तटस्थ रहा है। उन्होंने अपने इतिहास ग्रंथों में कहानी तथा उपन्यास के इतिहास को जिस दृष्टि से दर्शाया है वैसी दृष्टि समकालीन आलोचकों में न के बराबर मिलती है। आज के आलोचक केवल पद तथा प्रतिष्ठा के लिए किसी भी रचना की खुशामद करने में लग जाते हैं किंतु गोपाल राय ऐसी स्थितियों से काफी दूर है। साहित्य को लेकर उनके विचार सदा आदर्शवादी तथा यथार्थवादी रहे हैं। इसीलिए शायद वे प्रेमचंद को सदी का सबसे महान उपन्यासकार मानते हैं। प्रेमचंद के प्रति उन्होंने जितना भी अपनी आलोचनात्मक पुस्तकों में लिखा है

वैसा कार्य शायद ही कोई अन्य आलोचक कर पाए। 'गोदान' और 'रंगभूमि' उपन्यास पर उन्होंने प्रेमचंद के आदर्शोन्मुखी यथार्थवादी दृष्टिकोण को न्याय देने का प्रयत्न किया है। प्रेमचंद के उपन्यास में प्रस्तुत पात्रों को वे अन्य आलोचकों की भाँति नहीं देखते। इन पात्रों के प्रति उनकी दृष्टि सदा भावनात्मक लगती है। गोपाल राय होरी और गोबर के चरित्र चित्रण को जब विस्तार देते हैं तब वे होरी के परिवेश में ग्रामीण जीवन की यथार्थ स्थितियों को पाठकों तक पहुंचाना चाहते हैं। और वही जब वे गोबर को पाठकों के सामने प्रस्तुत करते हैं तब वह शहरी वातावरण, वहां की नीति, कूटनीति, लालच, भ्रष्ट दृष्टि आदि को प्रस्तुत करते हैं। यहां हम देख सकते हैं कि गोपाल राय जब पात्रों के प्रति अपनी दृष्टि को प्रवाहित करते हैं तो उनमें यथार्थ के साथ भावनात्मक संबंध भी जुड़ जाता है। 'गोदान' में पारिवारिक और दांपत्य जीवन को प्रेमचंद ने आदर्शवादी रूप में प्रस्तुत किया है। इसी के संदर्भ में गोपाल राय ने होरी तथा उसकी पत्नी के जीवन में प्रस्तुत विडंबनाओं के बावजूद वे किस प्रकार एक दूसरे से लगाव रखते हैं और हमेशा एक दूसरे के प्रति आत्मीयता को महसूस करते हैं आदि को प्रस्तुत किया है। प्रेमचंद के उपन्यासों का विवेचन गोपाल राय की आलोचनात्मक दृष्टि को स्पष्ट रूप से हमारे सामने प्रस्तुत करता है।

कहा सकते है कि गोपाल राय की आलोचना दृष्टि में विचारों की उदात्तता है। उनके कथन और लेखनी में भाषा एवं शैली को प्रौढ़ता मिलती है। उनकी अंतर्दृष्टि अत्यंत सार पूर्ण है। इसका प्रयोग प्रेमचंद और अज्ञेय के उपन्यासों की आलोचना करते समय हुआ है। पांडित्य दर्शन से मुक्त पूर्वाग्रह से मुक्त होकर तटस्थता, निष्पक्ष अंतर्मन से उन्होंने कथा-साहित्य की आलोचना विश्लेषणात्मक, विवेचनात्मक पद्धति से की है। इसीलिए उनकी आलोचना दृष्टि सराहनीय है।

अंततः कहा जा सकता है कि 'हिंदी कथा साहित्य की आलोचना के विकास' में गोपाल राय का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण माना जाता है। क्योंकी उन्होंने अपने शोध

आलोचना से शुरू करते हुए अनेक महत्वपूर्ण रचनाओं से हमें परिचित करवाया। गोपाल राय इन रचनाओं के आलावा 'समीक्षा पत्रिका' के संपादन द्वारा भी अनेक रचनाओं की आलोचनाएँ कर पाठकों परिचित करवाया। इस प्रकार उनका आलोचना कर्म संपादक के रूप से लेकर एक प्रतिष्टित इतिहासकार और आलोचक के रूप में हमारे सामने प्रस्तुत होता है। हिंदी साहित्य की कालजयी कृतियों को संपादक के रूप में आलोचना, कहानियों से संबंधित आलोचना के रूप में, उपन्यासों से संबंधित आलोचना के रूप में, इतिहासकार के रूप में और अन्य विषयों से संबंधिति आलोचना के रूप में विश्लेषित और विवेचित किया है। उनके द्वारा किया गया यह कार्य हिंदी आलोचना के क्षेत्र मिल का पत्थर माना जाएगा। उनके जैसी गहरी और पैनी सोच रखने वाले आलोचक आलोचना में बहुत कम है। उन्होंने सहमति और असहमति को आलोचना के तराजू में तौलते हुए साहित्यिक कृतियों के साथ न्याय करने का प्रयत्न किया जियामें वे सफल हुए है।

संदर्भ:

[1] शेखर एक जीवनी: मूल्यांकन - गोपाल राय, भूमिका भूमिका से

[2] उपन्यास की पहचान: गोदान नया परिप्रेक्ष्य –गोपाल राय, पुरोवाक् से

[3] साहित्य शब्द कोश – सं. गोपाल राय, (1967) भूमिका से

[4] वही, भूमिका

[5] वही, भूमिका

[6] 'दिनकर : व्यक्तित्व और रचना के आयाम', सं. गोपाल राय, सत्यकाम, पृ. सं. 17

[7] हिंदी कहानी का इतिहास भाग एक - गोपाल राय, पृ. सं. 17

[8] वही, पृ. सं. 18

[9] वही, पृ. सं. 18

[10] वही, पृ. सं. 18

[11] वही, पृ. सं. 19

[12] वही, पृ. सं. 21

[13] उपन्यास: पहचान और प्रगति - प्रो. सत्यकाम, पृ. सं. 30

[14] हिंदी कहानी का इतिहास भाग एक, गोपाल राय, पृ. सं. 22

[15] वही, पृ. सं. 27

[16] वही, पृ. सं. 28

[17] वही, पृ. सं. 33

[18] हिंदी कहानी का इतिहास भाग दो - गोपाल राय, पृ. सं. vii भूमिका

[19] हिंदी कहानी का इतिहास भाग एक - गोपाल राय, पृ . सं. 39

[20] वही, पृ. सं. 39

[21] वही, पृ. सं. 39

[22] हिंदी कहानी का इतिहास भाग एक - गोपाल राय, पृ. सं. 40

[23] हिंदी कहानी का इतिहास भाग एक - गोपाल राय, पृ. सं. 40

[24] वही, पृ. सं. 40

[25] वही, पृ. सं. 41

[26] वही, पृ. सं. 42

[27] वही, पृ. सं. 45

[28] वही, पृ. सं. 46

[29] वही, पृ. सं. 47-48

[30] वही, पृ. सं. 48

[31] वही, पृ. सं. 48

[32] वही, पृ. सं. 48-49

[33] वही, पृ. सं. 49

[34] वही, पृ. सं. 49

[35] वही, पृ. सं. 50

[36] वही, पृ. सं. 50-51

[37] वही, पृ. सं. 60

[38] वही, पृ. सं. 60

[39] वही, पृ. सं. 53

[40] वही, पृ. सं. 67

[41] वही, पृ. सं. 68 69

[42] समीक्षा - सं. प्रो. सत्यकाम, अक्टूबर-दिसंबर, अंक 3 वर्ष 2012, पृ. सं. 31

[43] हिंदी कहानी का इतिहास भाग दो - गोपाल राय भूमिका से viii-ix

[44] वही, पृ. सं. 15

[45] समीक्षा - सं. प्रो. सत्यकाम, अक्टूबर-दिसंबर, अंक 3 वर्ष.2012, पृ. सं. 31

[46] वही, पृ. सं. 32

[47] हिंदी कहानी का इतिहास भाग दो - गोपाल राय, पृ. सं. 192

[48] वही, पृ. सं. 99

[49] वही, पृ. सं. 76

[50] वही, पृ. सं. 76

[51] वही, पृ. सं. 87

[52] वही, पृ. सं. 332

[53] समीक्षा - सं. प्रो. सत्यकाम, अक्टूबर-दिसंबर, अंक 3 वर्ष 2012, पृ. सं. 32

[54] हिंदी कहानी का इतिहास भाग दो - गोपाल राय, पृ. सं. 336

[55] वही, पृ. सं. 332

[56] वही, पृ. सं. 344

[57] समीक्षा - सं. प्रो. सत्यकाम अक्टूबर- दिसंबर वर्ष 2012 अंक 3, पृ. सं. 32-33

[58] हिंदी कहानी का इतिहास भाग दो - गोपाल राय, पृ. सं. 398

[59] वही, पृ. सं. 399

[60] वही, पृ. सं. 546

[61] समीक्षा - सं. प्रो. सत्यकाम अक्टूबर-दिसंबर, अंक 3 वर्ष 2012, पृ. सं. 33

[62] हिंदी कहानी का इतिहास भाग दो - गोपाल राय, पृ. सं. 570

[63] समीक्षा - सं. प्रो. सत्यकाम अक्टूबर-दिसंबर, अंक 3 वर्ष 2012, पृ. सं. 33

[64] हिंदी कहानी का इतिहास भाग दो - गोपाल राय, पृ. सं. 579

[65] वही, पृ. सं. 08

[66] वही, पृ. सं. 07

[67] वही, पृ. सं. 15

[68] वही, पृ. सं. 16

[69] वही, पृ. सं. 20

[70] वही, पृ. सं. 20

[71] वही, पृ. सं. 22

[72] वही, पृ. सं. 23

[73] हिंदी कहानी का इतिहास भाग तीन - गोपाल राय, पृ. सं. 25

[74] वही, पृ. सं. 27

[75] वही, पृ. सं. 27

[76] वही, पृ. सं. 33

[77] वही, पृ. सं. 199

[78] वही, पृ. सं. 122

[79] वही, पृ. सं. 123

[80] वही, पृ. सं. 131

[81] वही, पृ. सं. 139

[82] वही, पृ. सं. 141

[83] वही, पृ. सं. 143

[84] वही, पृ. सं. 151

[85] वही, पृ. सं. 153

[86] वही, पृ. सं. 154

[87] वही, पृ. सं. 299

[88] वही, पृ. सं. 300

[89] वही, पृ. सं. 300

[90] वही, पृ. सं. 301-302

[91] वही, पृ. सं. 100

[92] वही, पृ. सं. 194

[93] हिंदी उपन्यास - सुस्मिता प्रियदर्शिनी, पृ. सं. 09

[94] हिंदी आलोचना का विकास- मधुरेश, पृ. सं. 261

95 समीक्षा - सं. प्रो. सत्यकाम अंक- 04 वर्ष 2016 जनवरी-मार्च पृ. सं. 85

96 वही, पृ. सं. 85-86

97 हिंदी उपन्यास का इतिहास - गोपाल राय, पृ. सं. 13

98 समीक्षा - सं. प्रो. सत्यकाम अक्टूबर-दिसंबर, अंक 3 वर्ष 2012, पृ. सं. 08

99 हिंदी उपन्यास - सुस्मिता प्रियदर्शिनी, पृ. सं. 09

100 https://hi.m.wikipedia.org/w/उपन्यास, दिनांक - 18.09.2018, समय 5:48

101 हिंदी भाषा का तथ्यपरक इतिहास - ओंकारनाथ, पृ. सं. 188

102 वही, पृ. सं. 188

103 हिंदी उपन्यास - सुस्मिता प्रियदर्शिनी, पृ. सं. 10

104 इतिहास दृष्टी और ऐतिहासिक उपन्यास - जार्ज लुकाच (अनुवादक - कर्णसिंह चौहान), पृ. सं. 19

105 हिंदी उपन्यास के सरोकार - डॉ. विजय लक्ष्मी, पृ. सं. 11

106 हिंदी उपन्यास का इतिहास - गोपाल राय भूमिका से पृ. सं. ix

107 वही, भूमिका से पृ. सं. x

108 वही, भूमिका से पृ. सं. xi

109 वही, पृ. सं. 13

110 वही, पृ. सं. 64-65

111 वही, पृ. सं. 66

112 वही, पृ. सं. 71

113 वही, पृ. सं. 121

[114] वही, पृ. सं. 139-140

[115] वही, पृ. सं. 164

[116] वही, पृ. सं. 171

[117] वही, पृ. सं. 194

[118] वही, पृ. सं. 261

[119] वही, पृ. सं. 375

[120] वही, पृ. सं. 13

[121] वही, पृ. सं. 23

[122] वही, पृ. सं. 23

[123] समीक्षा - सं. प्रो.सत्यकाम, अंक 4 वर्ष 2016 जनवरी-मार्च पृ. सं. 86

[124] गोदान: नया परिप्रेक्ष्य - गोपाल राय, भूमिका से

[125] हिंदी का प्रथम उपन्यास 'देवरानी जेठानी की कहानी' - गोपाल राय प्ररोवचन से

[126] वही, प्ररोवचन से पृ. सं. 1, 2

[127] वही, प्ररोवचन से पृ. सं. 2,3

[128] वही, पृ. सं. 3

[129] वही, पृ. सं. 5

[130] वही, पृ. सं. 5

[131] वही, पृ. सं. 5

[132] वही, पृ. सं. 7

[133] उपन्यास का काव्यशास्त्र - बच्चन सिंह, पृ. सं. 87-88

[134] गोदान: नया परिप्रेक्ष्य - गोपाल राय, भूमिका से पृ. सं. 2

[135] उपन्यास की महान परंपरा - खगेन्द्र ठाकुर, पृ. सं. 11

[136] गोदान: नया परिप्रेक्ष्य - गोपाल राय, भूमिका से पृ. सं. 14

[137] वही, पृ. सं. 19

[138] वही, पृ. सं. 27

[139] आधुनिक हिंदी उपन्यास संपादक - भीष्म सहानी, डॉ. रामजी मिश्र भगवती, पृ. सं. 13

[140] गोदान: नया परिप्रेक्ष्य - गोपाल राय, पृ. सं. 49

[141] वही, पृ. सं. 55

[142] वही, पृ. सं. 38

[143] वही, पृ. सं. 69

[144] वही, पृ. सं. 80

[145] वही, पृ. सं. 85

[146] वही, पृ. सं. 95

[147] उपन्यास की महान परंपरा - खगेन्द्र ठाकुर, पृ. सं. 27

[148] गोदान: नया परिप्रेक्ष्य - गोपाल राय, पृ. सं. 109

[149] वही, पृ. सं. 109

[150] उपन्यास की महान परंपरा - खगेन्द्र ठाकुर, पृ. सं. 24

[151] वही, पृ. सं. 24

[152] गोदान: नया परिप्रेक्ष्य - गोपाल राय, पृ. सं. 110-111

[153] वही, पृ. सं. 119

[154] वही, पृ. सं. 186

[155] समीक्षा - सं. प्रो. सत्यकाम अक्टूबर- दिसंबर अंक 3 वर्ष 2012, पृ. सं. 11

[156] गोदान: नया परिप्रेक्ष्य - गोपाल राय, पृ. सं. 189

[157] वही, पृ. सं. 203

[158] वही, पृ. सं. 221

[159] वही, पृ. सं. 223

[160] प्रेमचंद हिंदुस्तान: साम्राज्य से राष्ट्र - शम्भुनाथ, 2014 पृ. सं. 90

[161] रंगभूमि पुन: मूल्यांकन - गोपाल राय, पुरोवाक् से

[162] वही, पृ. सं. 01

[163] वही, पृ. सं. 02

[164] वही, पृ. सं. 12

[165] वही, पृ. सं. 27

[166] वही, पृ. सं. 28

[167] वही, पृ. सं. 29

[168] वही, पृ. सं. 30

[169] वही, पृ. सं. 31

[170] वही, पृ. सं. 36

[171] वही, पृ. सं. 37

[172] वही, पृ. सं. 40

[173] वही, पृ. सं. 42

[174] वही, पृ. सं. 43

[175] वही, पृ. सं. 58

[176] वही, पृ. सं. 60

[177] शेखर एक जीवनी मूल्यांकन - गोपाल राय, पृ. सं. 02

[178] अज्ञेय की उपन्यास यात्रा - ए. अरविन्दाक्षण, पृ. सं. 52

[179] शेखर एक जीवनी मूल्यांकन – गोपाल राय पृ. सं. 17

[180] वही, पृ. सं. 23

[181] वही, पृ. सं. 32-33

[182] वही, पृ. सं. 58

[183] हिंदी उपन्यास जनवादी परंपरा - कुंवरपाल सिंह, अजय बिसारिया, पृ. सं. 132

[184] उपन्यास की पहचान 'मैला आँचल'- गोपाल राय, पृ. सं. 11

[185] वही, भूमिका से

[186] वही, पृ. सं. 11-12

[187] वही, पृ. सं. 12

[188] वही, पृ. सं. 12 -13

189 वही, पृ. सं. 21

190 वही, पृ. सं. 22

191 वही, पृ. सं. 23

192 वही, पृ. सं. 23

193 वही, पृ. सं. 23

194 वही, पृ. सं. 26

195 वही, पृ. सं. 27

196 वही, पृ. सं. 29

197 उपन्यास की पहचान दिव्या- गोपाल राय, पृ. सं. प्राथमिकी से

198 वही, पृ. सं. 11

199 वही, पृ. सं. 13

200 वही, पृ. सं. 14

201 वही, पृ. सं. 17

202 वही, पृ. सं. 31

203 वही, पृ. सं. 15

204 वही, पृ. सं. 38

205 वही, पृ. सं. 88

206 वही, पृ. सं. 106- 107

207 वही, पृ. सं. 125

[208] वही, पृ. सं. 143

[209] उपन्यास की पहचान महाभोज - गोपाल राय, पृ. सं. 09

[210] वही, पृ. सं. 11

[211] वही, पृ. सं. 159

[212] वही, पृ. सं. 37

[213] वही, पृ. सं. 161

[214] वही, पृ. सं. 162

[215] वही, पृ. सं. 145

[216] समीक्षा - सं. प्रो. सत्यकाम वर्ष 2016, अंक 3 जनवरी-मार्च, पृ. सं. 98

[217] प्रयोगधर्मी कथाकार अज्ञेय - डॉ. नन्दकुमार राय, पृ. सं. 205

[218] समीक्षा - सं. प्रो. सत्यकाम वर्ष 2016, अंक 3 जनवरी-मार्च, पृ. सं. 99

[219] अज्ञेय और उनके उपन्यास - गोपाल राय, प्रक्क्थन से

[220] वही, पृ. सं. 85

[221] वही, पृ. सं. 85

[222] हिंदी उपन्यास का इतिहास - गोपाल राय, पृ. सं. 23

[223] समीक्षा - सं. प्रो. सत्यकाम वर्ष 2016, अंक 3 जनवरी-मार्च, पृ. सं. 88

[224] हिंदी उपन्यास का इतिहास - गोपाल राय, पृ. सं. 163

-: चतुर्य अध्याय :-

हिंदी आलोचना के विकास में गोपाल राय का योगदान

चतुर्थ अध्याय

हिंदी आलोचना के विकास में गोपाल राय का योगदान

रचना यदि जीवन का विस्तार करती है तो आलोचक उस रचना का अपने विचार, विवेक द्वारा विस्तार करता है। अगर दूसरे शब्दों में कहें तो जीवन के अंतर्द्वंद को देखने-परखने में आलोचना दीपक की भूमिका निभाती है। साहित्य की आलोचना करते हुए हमेशा तत्कालीन समय और समाज की सापेक्षता और प्रसंगानुकूलता को संभाव्य दृष्टि से देखा जाता है क्योंकि तभी आलोचना की सार्थकता और रचना की मूल्यवत्ता प्रमाणित होती है। आलोचक द्वारा की गई इसी प्रसंगानुकूलता और सापेक्षता की तलाश में आलोचना की सामाजिकता या सामाजिक उत्तरदायित्व का प्रश्न उभरता है। इससे ज्ञात होता है कि आलोचना साहित्य का शास्त्र नहीं है बल्कि वह साहित्य का जीवन है जो परिवर्तनशील संदर्भों जैसे सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक आदि में परिवर्तन कर रचा जाता है।

आलोचना का मूल संबंध विशेषतः इतिहास और विभिन्न सामाजिक विमर्शों से होता है। आलोचना का महत्व तब और अधिक बढ़ जाता है जब आलोचक इतिहास में परिवर्तन की दिशा को खोजता है, संवेदना की पहचान कर उसका विश्लेषण और परिवर्तन के कारणों उसके पड़ावों की पहचान करता है। जब आलोचना की इतिहास और अन्य विषय (समाज, राजनीति, धर्म, नैतिकता और अर्थ आदि) के साथ टकराहट होती है तब आलोचना कई नये प्रश्न की निर्मिती भी करती है। मनुष्य के जातीय और सामाजिक जीवन को आलोचना जब साहित्य के साथ जोड़ती है तब आलोचना का महत्व और अधिक विश्लेषणात्मक रूप में हमारे सामने आता है। आलोचना द्वारा ही पाठक, श्रोता, सहृदय को साहित्य के प्रमाणिक अनुशीलन की सुविधा प्राप्त होती है। पाठक या श्रोता की ज्ञान को ग्रहण करने की क्षमता और उसकी संवेदना को जागृत करने में आलोचना महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इससे आलोचक को प्रेरणा मिलती है

और उसमें रचना का उत्साह, रचनात्मक विचारों में प्रौढ़ता, रचना के शिल्प एवं भाषा के परिमार्जन और परिवर्द्धन की प्रेरणा मिलती है।

अपने शुरुवाती दौर से ही हिंदी आलोचना अपने सामाजिक सरोकारों से गहरे स्तर पर जुड़ी हुई है। तत्कालीन संदर्भों, वैचारिक द्वंद्वों, सामाजिक विषमताओं, आर्थिक एवं राजनीतिक बदलावों के साथ धार्मिक, संस्कृतिक, नैतिक तथा राष्ट्रीय चिंताओं के चलते आज आलोचना के स्वरुप में व्यापक बदलाव दृष्टिगत होता है। आज आलोचना साहित्य के नवीन सृजन, नवीन विचारधाराओं और नवीन सामाजिक सरोकारों से लोहा लेते हुए विविध प्रतिमानों प्रवृत्तियों और नवीन दृष्टियों से युक्त होती रही है। विशेषतः आलोचना को मनुष्य के जातीय जीवन और संस्कृति से जोड़कर साहित्य का विश्लेषण करने की प्रक्रिया में ही हम समझ सकते हैं।

हिंदी की विभिन्न विधाओं की तरह आलोचना का विकास भी प्रमुख रूप से आधुनिक काल में ही देखने को मिल जाता है। साहित्य के आलोचना के विकास के लिए प्रमुखतः दो बातों को आवश्यक माना है। जिसमें प्रथम यह है कि आलोचना रचनात्मक साहित्य से जुड़ी हो और द्वितीय वह समकालीन साहित्य से जुड़ती हो। इन दोनों बातों के कारण ही हिंदी आलोचना अपने प्रस्थान बिंदु से लेकर आज तक अपनी कसौटियों पर खरी उतरती रही है। अगर हम आधुनिक काल के पूर्व की बात करें तो आलोचना केवल काव्यशास्त्र के मानदण्डों पर ही आधारित मानी गई थी, लेकिन आज हम जिस हिंदी आलोचना का स्वरुप देख रहें हैं उसका आरम्भ आधुनिक हिंदी साहित्य के साथ या कहा जा सकता है कि साहित्य में आधुनिक दृष्टि के साथ ही हुआ है। आज की हिंदी आलोचना में नवीन सृजन, नवीन विचारधाराओं और नवीन सामाजिक सरोकारों की अभिव्यक्ति प्राप्त होती है जो कहीं न कहीं संस्कृत के काव्यशास्त्रीय चिंतन की पृष्ठभूमि का स्वीकार करते हुए हुए विविध दृष्टियों, प्रतिमानों और प्रवृतियों से युक्त है।

आधुनिक गद्य साहित्य के साथ ही हिंदी आलोचना का उदय एवं विकास भी भारतेंदु युग से ही माना जाता है। यह वह दौर था जहाँ देश की सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक समस्याओं एवं विषमता बोध से जनता के लगाव के कारण इस काल के साहित्य विकसित हुआ। उसी प्रकार इस काल में आलोचकों ने अपनी कृतियों में यथार्थ बोध को लक्षित किया जिससे यह प्रतीत होने लगा कि रस की अभिव्यक्ति केवल आनंद प्राप्ति में नहीं बल्कि मानवीय संवेदना के विस्तार में है।

हिंदी आलोचना और रचना का संबंध काफी गहरा और सुखद है जिसमें आलोचना या आलोचक अपने विवेचन या मूल्यांकन का परिष्कार शास्त्रवाद की छाव में न करते हुए सीधे रचना में करते हैं। कमल प्रसाद कहते हैं, “रचना और आलोचना का संबंध निर्गुण नहीं है। यह नैतिक प्रश्न होते हुए सामाजिक हिस्सेदारी से जुड़ा हुआ है। लेखक और आलोचक की समाज के प्रति क्या दृष्टि है और उसके रचनात्मक निहितार्थ क्या है, इसी से उसकी रचना का धरातल बनता है और आलोचना का भी। आलोचना कर्म में प्रवृत्ति के पूर्व या कृति विशेष का चयन करने में लेखक की सामाजिक दृष्टि अहम भूमिका अदा करती है।”[1] वे आगे कहते हैं, “रचना और आलोचना दोनों का परिप्रेक्ष्य बाहर रहता है - समाज में। परंपरा के अवगाहन के बिना गहरी दृष्टि नहीं आती”[2] इस प्रकार की प्रवृत्ति सभी कालों में देखने को मिलती है। रचना के मूल्यांकन की प्रक्रिया में हिंदी आलोचना में कुछ अवधारणात्मक शब्दों का प्रयोग किया जा रहा है। जैसे आधुनिकता, प्रयोगशीलता, प्रगतिशीलता, प्रतिबद्धता, भोग हुआ यथार्थ, लघु मानव, अनुभूति की प्रमाणिकता, विसंगति, विडंबना, तनाव, ज्ञानात्मक संवेदना और संवेदनात्मक ज्ञान, सचेतनता, व्यापकता और गहराई, ईमानदारी समझदारी, बिम्ब और सपाटबयानी आदि। इन अवधारणात्मक शब्दों से अभिव्यक्ति सूक्ष्मतर होती रही और आलोचना उत्तरोत्तर निखरती रही है। इस संदर्भ में रमेश दवे कहते हैं, “आलोचक

का विवेक सृजन-केंद्रित विवेक ही होगा, तभी वह अपने ज्ञान, अनुभव, तर्क और तत्व का सही इस्तेमाल करके सृजन को उसकी विविधता में परख सकता है।"[3]

हिंदी आलोचना अपने आरंभिक दौर से ही कविता केन्द्रित रही है। गद्य की अन्य विधाओं के आर्वीभाव के साथ आलोचना का भी आर्वीभाव और विकास हुआ। यह महत्वपूर्ण और दिलचस्प बात है कि जो हिंदी आलोचना अपने केंद्र में कविता को रख कर विकसित हुई, उसकी शुरुआत 'नाट्यालोचन' से हुई थी। भारतेंदु हरिश्चंद्र द्वारा 1883 में लिखी गई संक्षिप्त पुस्तिका 'नाटक' अथाव दृश्य काव्य से हिंदी आलोचना की शुरुआत मानी जाती है। भारतेन्दु युग वास्तव में गद्य विधाओं की उत्पत्ति के संदर्भ में उर्वर काल माना जाएगा। भारतेन्दु युग से लेकर प्रेमचंद युग तक कथा साहित्य का जोरदार विकास हुआ। उसमें उपन्यास विधा के विकास की चर्चा महत्वपूर्ण हो जाती है। यह दौर हिंदी उपन्यास के जासूसी, सुधारवादी, तिलस्मी, ऐयारी दुनिया में बदलने का भी दौर है, क्योंकि रचनाकारों ने अपने उपन्यासों से सामजिक यथार्थ का जो रास्ता तैयार किया उस पर हिंदी उपन्यास विधा को दूर तक जाना था। जहाँ तक उपन्यास आलोचक का सवाल है "बालकृष्ण भट्ट से लेकर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल तक प्राय: सभी आलोचकों ने उपन्यास पर भी लिखा था, भले ही अनुपात की दृष्टि से बहुत कम हो या फिर उपन्यास की आलोचना के संदर्भ में उसका वैसा ऐतिहासिक मूल्य न हो जैसा मराठी, में विश्वनाथ काशीनाथ राजवाड़े (1863-1926) के 'उपन्यास' शीर्षक से लिखित एक लम्बे निबंध का है। जिसमें यूरोपीय उपन्यास के संदर्भ में रोमांटिक और यथार्थवादी उपन्यासों की मिम्मासा की गंभीर चर्चा की है।"[4]

वास्तव में आचार्य रामचंद्र शुक्ल का उपन्यास संबंधी मूल्यांकन कई संदर्भों में हिंदी कथा आलोचना को दिशा प्रदान करने वाला था। उनकी आलोचना दृष्टि की सीमाएं कबीर आदि के मूल्यांकन को लेकर भले ही अलग रही हों पर उपन्यास के संदर्भ में लिखते हुए अपने आलोचकीय विवेक से जिस तरह उन्होंने देवकीनंदन खत्री और

किशोरी लाल गोस्वामी को अलगाया। निश्चित रूप से आलोचना की उनकी यह दृष्टि हिंदी कथा आलोचना को एक सूत्र मुहैया करती है। देवकीनंदन खत्री के उपन्यासों के सन्दर्भ में लिखते हुए कहा है कि, "इनके उपन्यासों का लक्ष्य केवल घटना वैचित्र्य रहा, रस संचार भावविभुती या चरित्र चित्रण नहीं। ये वास्तव में घटना प्रधान कथानक या किस्से है, जिसमें जीवन के विविध पक्षों के चित्रण का कोई प्रयत्न नहीं, इससे ये साहित्य की कोटि में नहीं आते।"[5] इसके बाद वे किशोरी लाल गोस्वामी के संदर्भ में लिखते हैं, "पंडित किशोरी लाल गोस्वामी जिनकी रचनाएँ साहित्य की कोटि में आती है। इनके उपन्यासों में समाज के कुछ सजीव चित्र, वासनाओं के रूप रंग, चित्ताकर्षक वर्णन और थोड़ा बहुत चरित्र-चित्रण भी अवश्य पाया जाता है।"[6] अगर शुक्ल जी से आगे बढ़े तो हमें तीन आलोचक पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, इलाचन्द्र जोशी और देवराज उपाध्याय के नाम दृष्टिगत होते हैं, जो कथा आलोचना में अपने विशेष आलोचकीय समझ के साथ उपस्थित होते दिखाई देते हैं। बख्शी जी कथालोचना के क्षेत्र में अपनी दो पुस्तकों से चर्चित हुए वे अपनी पहली पुस्तक 'विश्व साहित्य' के माध्यम से भारतीय पाठकों की लिए विश्वसाहित्य की खिड़की खोल देते हैं। इस किताब में वे विश्व साहित्य के समानांतर भारतीय साहित्य के मूल्यांकन की तुलनात्मक पद्धति की शुरुआत करते हैं। उनकी दूसरी पुस्तक 'हिंदी कथा साहित्य' जो 1954 में प्रकाशित हुई कथालोचना के क्षेत्र में एक अत्त्यंत महत्वपूर्ण कोशिश रही है।

उपन्यास की आलोचना में मनोवैज्ञानिक प्रभाव को रेखांकित करने वाले आलोचकों में इलाचंद्र जोशी और देवराज उपाध्याय का नाम प्रमुख है। इसी दौर में विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में उपन्यासों की समीक्षाएं प्रकाशित हो रही थी। उस दौर में पुस्तक 'समिक्षा' एक गंभीर आलोचना कर्म माना जाता था और आज की तरह पुस्तक समीक्षा को हल्के में नहीं लिया जाता था। इस समय में गंभीर समीक्षाएं लिखी जा रही थी। नलिन विलोचन शर्मा, शमशेर बहादुर सिंह, शिवदान सिंह चौहान, प्रभाकर

माचवे, आदि के साथ बालकृष्ण भट्ट से लेकर राम विलास शर्मा, नामवर सिंह तक सभी ने इस काम को बड़ी ईमानदारी और गंभीरता के साथ पूर्ण किया है। इसी क्रम को आगे बढ़ाने का महत्वपूर्ण कार्य आलोचक गोपाल राय ने भी किया।

नेमिचंद्र जैन और भारत भूषण अग्रवाल ने अपने महत्वपूर्ण आलोचनात्मक कर्म से हिंदी उपन्यास की समीक्षा को समृद्ध किया। नेमिचन्द्र जैन, भारत भूषण अग्रवाल के बाद उपन्यास की आलोचना के क्षेत्र में जिन प्रमुख आलोचकों ने अपने आलोचना कर्म से इसे एक ठोस धरातल पर खड़ा करने का काम किया है उनमें गोपाल राय, सुरेन्द्र चौधरी, मधुरेश नवल किशोर, वीरेन्द्र यादव, परमानंद श्रीवास्तव, विजय बहादुर सिंह आदि हैं। लेकिन कथा साहित्य की आलोचना की प्रवृत्ति वैसे प्रबल नहीं दिखाई देती कम ही आलोचकों ने यह बीड़ा उठाया है और इस दिशा में आलोचना के प्रतिमान स्थापित करने का प्रयास किए है। गोपाल राय भी उन थोड़े आलोचकों में है जिन्होंने इस क्षेत्र में गंभीरता और सहृदयता से काम किया है।

जब आलोचना की बात चलती है तो गोपाल राय का नाम सबसे महत्वपूर्ण रूप में सामने आता है। उन्होंने हिंदी साहित्य को कुछ ऐसी आलोचनात्मक कृतियां प्रदान की है जिनके समकक्ष हिंदी साहित्य के अंतर्गत दूसरी रचना सामने नहीं आई है। गोपाल राय ने हमेशा हिंदी कथा साहित्य को अपने अलग विवेच्य और विचारशील दृष्टिकोण से देखा और उसकी व्याख्या भी अन्य आलोचकों की तरह न करते हुए कुछ अलग तरह से की है। गोपाल राय हिंदी उपन्यास और हिंदी कहानी के इतिहास को एक अलग तथा नए रुप में हमारे सामने प्रस्तुत करते हुए नजर आते हैं। इनकी प्रमुख रचनाओं में हिंदी कहानी का इतिहास (जो दो खंडों में उपलब्ध है) में उन्होंने आधुनिक काल के प्रारंभिक चरण से भारतीय स्वाधीनता के अंत तक के कहानीकार और उनकी रचनाओं को एक सीरियल रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। हिंदी साहित्य जगत में विशेषत: आलोचना के क्षेत्र में ऐसे बहुत कम आलोचक है जिन्होंने विस्तृत रूप से कहानियों को एकत्रित कर खंडों में प्रकाशित करने का प्रयास किया हो। इसी प्रकार

उनकी 'हिंदी उपन्यास का इतिहास' और 'हिंदी उपन्यास की संरचना' जैसी प्रमुख रचनाएं हिंदी उपन्यास के लेखे-जोखे को विवेचित रूप में प्रस्तुत करती है। इसके अतिरिक्त 'अज्ञेय और उनका कथा साहित्य', 'दिनकर व्यक्तित्व और साहित्य रचना के आयाम', 'गोदान : नया परिप्रेक्ष्य' आदि श्रेष्ठ पुस्तकें हिंदी साहित्य से जुड़े प्रमुख व्यक्तियों के जीवन तथा व्यक्तित्व को समझने का एक सुनहरा अवसर हमें प्रदान करती है। गोपाल राय द्वारा रचित यह पुस्तकें ऐसी है जो हिंदी आलोचना के विकास में अपना अलग तथा महत्वपूर्ण स्थान रखती है। इसके अतिरिक्त उन्होंने 'हिंदी उपन्यास का इतिहास' और 'हिंदी साहित्याब्द कोश' की रचना की है जो विशेष रूप से वैज्ञानिकता और वस्तुनिष्ठता के लिए जाने जाती है।

अपने जीवन में गोपाल राय ने जितना भी अध्ययन एवं लेखन कार्य किया वह लगभग उपन्यास और उपन्यास की आलोचना पर ही आधारित है। किन्तु जब उन्होंने 'समीक्षा' पत्रिका का संपादन एवं प्रकाशन कार्य आरंभ किया उस समय उन्होंने कई सारे उपन्यासों एवं उपन्यास पर आधारित पुस्तकों का अध्ययन किया। जिस कारण उनको 'समीक्षा' पत्रिका में उपन्यासों तथा कहानी साहित्य पर आलोचना करने की प्रेरणा एवं सुअवसर प्राप्त हुआ। इसी का परिणाम 'हिंदी उपन्यास का इतिहास' और 'हिंदी उपन्यास की संरचना' जैसी महत्वपूर्ण पुस्तकें आज हमारे सामने प्रस्तुत है। गोपाल राय का संपूर्ण लेखन कार्य उपन्यास पर आधारित है फिर भी हिंदी 'कहानी का इतिहास' को प्रकाशित करना उनके लिए एक महत्वपूर्ण एवं चुनौतीपूर्ण कार्य था। क्योंकि उपन्यासों की अपेक्षा कहानियों को खोजना, उनका विवेचन करना तथा उन्हें संकलित कर इतिहास ग्रंथ के रूप में प्रस्तुत करना बहुत ही जटिल प्रक्रिया है। वैसे तो कहानियां अधिकतर पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती है उसके बाद वह किसी कहानी

संग्रह के रूप में प्रकाशित कर पाठकों के सामने आती है। कौन सी कहानी कब प्रकाशित हुई और किस कहानी संग्रह में कब आई इसका अनुमान तथा पता लगाना काफी मुश्किल काम है। कभी-कभी यह समस्या उत्पन्न होती है कि कहानी किसी पत्रिका में प्रकाशित होने के बाद काफी अंतराल में कहानी संग्रह में प्रकाशित होती है। इस बीच में उस कहानी का विवेचन करना कठिन काम हो जाता है। फिर भी गोपाल राय ने मुसीबतों का सामना करते हुए कर्मठता एवं पूर्ण निष्ठा के साथ इस कार्य को अंत तक ले जाने की सफल कोशिश की है। 'हिंदी कहानी का इतिहास' पुस्तक का आरंभ गोपाल राय ने आधुनिक काल के उस दौर से शुरू किया जब 'कहानी' को 'कथा' कहा जाता था। यह पुस्तक सात खंडों में पूर्ण की गई है। इस पुस्तक में गोपाल राय ने हिंदी कहानीकारों के साथ-साथ उस समय के उर्दू कहानीकारों को भी सम्मिलित किया है, क्योंकि कहानी के प्रारंभिक दौर में हिंदी और उर्दू दोनों भाषाओं के कहानीकार समान रूप से कहानी लेखन कर रहे थें। जिसके उदाहरण स्वरूप वह प्रेमचंद को हमारे समक्ष रखते हैं। 'हिंदी कहानी का इतिहास' में 'हिंदी, कहानी और इतिहास' नामक प्रथम खंड से लेकर 'आजादी : संघर्ष, उपलब्धि और मोहभंग' तक हिंदी कहानी के उतार चढ़ाव को विस्तृत रूप में प्रस्तुत किया गया है। साथ ही गोपाल राय ने अन्य भारतीय भाषाओं जैसे भोजपुरी, मैथिली, राजस्थानी आदि में लिखी गई कहानियों का संक्षिप्त परिचय देने का प्रयास अपनी पुस्तक में किया है। 'हिंदी कहानी का इतिहास' प्रथम खंड में गोपाल राय ने हिंदी और उर्दू की भाषिक शब्दावली तथा उसके विकास को लेकर कहानी शब्द की उत्पत्ति, उसके इतिहास तथा उसके स्वरूप को विस्तृत रूप से वर्णित करने का प्रयास किया है। यहां वे स्पष्ट करना चाहते थे कि कहानी लेखन की परंपरा संस्कृत कथा आख्यान की परंपरा से जुड़ी न होकर उपन्यास की तरह ही बंगला और अंग्रेजी की कहानी लेखन परंपरा से जुड़ी हुई नज़र आती है।

गोपाल राय को गूढ़, गंभीर और आलोचनवादी प्रवृत्ति के व्यक्ति कहा जा सकता है। उन्हें परिपूर्ण रूप से उपन्यास के आलोचक माना जाता है क्योंकि उन्होंने अपने विचार और चिंतनशीलता पर उपन्यास की आलोचना को नया क्षितिज प्रदान किया और हिंदी उपन्यास आलोचना के मार्ग पर चलकर हिंदी उपन्यासों को नया मोड दिया। उपन्यास आलोचना के क्षेत्र में गोपाल राय का पदार्पण 1965 में हुआ। इनका प्रथम शोध प्रबंध 'हिंदी कथा साहित्य और उसके विकास पर पाठकों की रूचि का प्रभाव' ग्रंथ निकेतन, पटना से प्रकाशित हुआ। इस शोध प्रबंध में उन्होंने हिंदी कथा साहित्य पर विचार करते हुए उपन्यास के विषय, भाषा और शिल्प पर अधिक ज़ोर दिया था। उनके इस शोध प्रबंध के संदर्भ में स्वयं नगेन्द्र ने कहा था कि, "विषय की नवीनता और निरूपण की गंभीरता दोनों ही दृष्टियों से मैं प्रस्तुत शोध प्रबंध को पर्याप्त महत्वपूर्ण मानता हूँ।"[7] अपने इस शोध प्रबंध में गोपाल राय ने अपनी विचार दृष्टि के कौशल्य पर हिंदी कथा साहित्य के काल विभाजन का प्रयास किया है। उनका यह प्रयास उस समय बहुत सराहनीय रहा। वह इस प्रकार है,

1. किस्सा कहानियों का युग (1800-1869 ई.)

2. हिंदी उपन्यास का उद्भव और शैशव काल (1870-1889 ई.)

3. हिंदी उपन्यास का विकास (प्रथम चरण) : प्रेमचन्द्र पूर्व युग (1890-1917 ई.)

4. हिंदी उपन्यास का विकास (द्वितीय चरण) : प्रेमचन्द्र युग (1918-1936 ई.)

5. हिंदी उपन्यास का विकास (तृतीय चरण) : प्रेमचन्दोत्तर युग (1936 से अब तक)

परंतु यह काल विभाजन उनकी पुस्तक 'हिंदी उपन्यास का इतिहास (2002) तक आते-आते पूरी तरह बदल जाता है। इस पुस्तक में किया गया काल

विभाजन का प्रयत्न बिल्कुल नया है, इस संदर्भ में वे कहते हैं, ‘‘यदि हम उपन्यास को एक वृक्ष के रूप में देखते हैं तो प्रथम काल को ‘क्षेत्र निर्माण काल’, द्वितीय को ‘पादप काल’, तृतीय को ‘पल्लवन काल’, चतुर्थ को ‘प्रौढत्व काल’ और पंचम को ‘विस्तार काल’ कहा जा सकता है। इस किताब में काल विभाजन तो हमने बहुत कुछ इसी पद्धति पर किया है, पर उसके नामकरण में कुछ नयापन लाने की कोशिश की है।’’[8] अपनी इस पुस्तक में गोपाल राय ने कुछ नयेपन की तर्ज पर महत्वपूर्ण वर्षों (जैसे - 1803, 1870, 1891, 1918, 1937, 1947) को आधार बनाते हुए नामकरण का यशस्वी प्रयत्न किया है, वह निम्न है-

1. दरवाजे पर दस्तक (1801-1869)

2. नवजागरण और हिंदी उपन्यास (1870-1890)

3. रोमांस पाठक और उपन्यास (1891-1917)

4. यथार्थ के नये स्वर (1918-1947)

(क) केन्द्र में किसान (1918-1936)

(ख) नयी दिशाओं की तलाश (1937-1947)

5. विमर्श के नये क्षितिज (1948-1980)

6. समकालीन परिदृश्य (1981-2000)

गोपाल राय के शोध प्रबंध से लेकर उनकी पुस्तक ‘हिंदी उपन्यास का इतिहास’ तक का समय उनकी चिंतनशीलता के शैशव से प्रौढ़ होने को दर्शाता है। इस समय काल में हुए परिवर्तनों में लगातार उन्होंने अपने आप को संतुलित किया है। ‘हिंदी

उपन्यास का इतिहास’ में किया गया काल विभाजन गोपाल राय के उत्तरोत्तर प्रौढ़ होती आलोचकीय दृष्टि का परिचय देता है।

अपनी रचनात्मका को आगे बढ़ते हुए गोपाल राय ने ‘हिंदी उपन्यास कोश’ का निर्माण किया जो दो खंडो में लिखा गया है। प्रथम खंड (1968) में गोपाल राय ने 1870 से 1917 तक के उपन्यासों को और द्वितीय खंड (1969) में 1918 से 1936 तक के उपन्यासों को एकीकृत किया। ‘हिंदी उपन्यास कोश’ लेखन का कार्य आज हिंदी साहित्य में सराहा जा रहा है। उनके द्वारा किया गया यह कार्य घास पर बिखरे ओस कण को सवारने सा है।

हिंदी कथा साहित्य में किसी उपन्यास या कहानी की संरचना विषय वस्तु को लेकर महत्वपूर्ण स्थान रखती है। पाश्चात्य साहित्य में संरचना जैसे विषय को काफी गंभीरता से लिया जाता रहा है और उसके विकास पर बार-बार ज़ोर दिया जाता है। हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में संरचना की अधिकतर चर्चा नहीं हुई बल्कि पाश्चात्य साहित्य के प्रभाव से इस विषय को बारीकी से देखा जाने लगा। गोपाल राय ने पाश्चात्य संरचना के प्रभाव को हिंदी उपन्यास पर लागू करने का सफल प्रयास किया है। यहा पर वे किसी प्रकार की नकल करते हुए नहीं दिखाते बल्कि पाश्चात्य की इस प्रविधि को वे तकनीक के साथ एक विशेष शैली में सामने रखते हैं। वे पाश्चात्य संरचना का प्रयोग करते हुए बड़ी खूबी से रचनाओं का मूल्यांकन करते हैं।

आलोचना के संदर्भ में मैनेजर पाण्डेय कहते हैं, “आलोचना को पुरातात्विक चिंतन के बदले सर्जनात्मक चिंतन बनाने के लिए यह आवश्यक है कि समकालीन रचनशीलता और आलोचना में संबंध और समानांतरता हो। रचना में समकालीन संवेदनशीलता की व्यंजना होती है और सार्थक आलोचना में समकालीन संवेदनशील की व्याख्या। समकालीन संवेदन से कटी हुई रचना उतनी ही निरर्थक है जितनी समकालीन संवेदना से शून्य आलोचना। सार्थक आलोचना समकालीन रचनशीलता में

व्यक्त संवेदनशीलता की पहचान और समीक्षा केवल परम्परा के संदर्भ में ही नहीं करती, उसे रचना के परिवेश, परिवेशगत जीवन-मूल्य और सामाजिक संवेदनशीलता के संदर्भ में जाँचती-परखती है। प्रत्येक महत्वपूर्ण रचनात्मक प्रवृत्ति और आंदोलन के दौरान रचना की प्रकृति और कलात्मक अनुभव से संबंधित नये प्रश्न पैदा होते हैं, नयी रचनशीलता की सार्थकता का प्रश्न सामने आता है। एक सार्थक और संवेदनशील आलोचक उन प्रश्नों के व्यवस्थापन और प्रतिपादन का काम करता है और परिवेश तथा रचनशीलता के सम्बन्ध-बोध से उन प्रश्नों के उत्तर खोजने की कोशिश भी करता है।"[9] मैनेजर पाण्डेय के इन विचारों में गोपाल राय की आलोचकी दृष्टि वास्तविक रूप में झलकती है। गोपाल राय सदा ही अपनी विशिष्ट आलोचनवादी दृष्टि के लिए जाने जाते रहे हैं। इन्होंने हिंदी साहित्य की कालजयी कृतियों को चुनकर अपनी आलोचन के विविध गुणों को दर्शाया। 'गोदान', 'मैला आंचल', 'रंगभूमि', 'शेखर : एक जीवनी', 'दिव्या', 'महाभोज' आदि उपन्यासों पर स्वतंत्र आलोचना करते हुए गोपाल राय ने उपन्यासों में स्थित शिल्प को पूरा न्याय दिया है। वे उपन्यास विश्लेषण की प्रक्रिया में कथ्य वैविध्य, चरित्र-चित्रण, शिल्प और भाषा को महत्वपूर्ण मानते हैं। उपन्यास विश्लेषण प्रक्रिया में वे स्वयं स्वीकार करते हैं कि, "कुछ ऐसे मानक उभर सकें जो अच्छे और बुरे तथा सफल एवं असफल उपन्यास में अंतर करने में सहायक हों।"[10] इसी विश्लेषण द्वारा वे दो महान उपन्यासकार 'शानी' और 'राही मासूम रज़ा' के उपन्यासों का मूल्यांकन करते हैं। हर रचनाकार की एक विशिष्ट शैली होती है जिसके बलपर वह रचना का विधान करता है। गोपाल राय ने इन दोनों उपन्यासकारों का मूल्यांकन करते हुए इनकी शैली को पहचाना और दोनों एक दूसरे से किस प्रकार विशिष्ट है यह बताने का प्रयास किया। वे शानी के उपन्यास 'काला जल' के संदर्भ में लिखते हुए यह कहते हैं कि, "काला जल निम्न मध्यवर्गीय मुस्लिम समाज का अत्यंत

प्रमाणिक दस्तावेज है।"[11] वहीं जब वे राही मासूम रजा के 'आधागांव' का मूल्यांकन करते हैं तब वे लिखते हैं कि, "शानी ने 'कालाजल' में बस्तर क्षेत्र के मुस्लिम जीवन का चित्रण किया था, पर उसमें वह वैविध्य और व्यापकता नहीं है, जो राही के आधा गांव में है।"[12] यहाँ पर दोनों कथाओं में गोपाल राय के विचार अलग-अलग नजर आते हैं। क्योंकि संभावनाओं से अगर तथ्य दिये जाए तो आलोचक के सामने भी द्विविधा की स्थिति उत्पन्न होती है। 'कालाजल' मुस्लिम समाज जीवन पर आधारित उत्कृष्ठ उपन्यास है, जबकि 'आधागाँव' में चित्रित समाज पूर्णतः मुस्लिम नहीं है वहाँ हिंदु समाज की भी उपस्थिति है। 'काला जल' निम्नमध्यवर्गीय मुस्लिम समाज का प्रमाणिक दास्तावेज है, तो 'आधागाँव' शिया मुसलमानों जो मूलतः छोटे बड़े जमींदार हैं, उनके जीवन का महाकाव्य है। दोनों उपन्यासों के सदर्भ में जब आलोचक अपनी दृष्टि को सामने रखते हैं तो वे स्वयं आलोचना के मानदंडों में शिकार हो जाते हैं। गोपाल राय ने फिर भी दोनों का मूल्यांकन करते हुए अपने कर्म को भालीं भाँति पूर्ण किया है।

हिंदी कथा साहित्य में प्रथम उपन्यास को लेकर कुछ अंशों में आज भी मतभेद है। कुछ आलोचक 'भाग्यवाती' को तो कुछ आलोचक लाला श्रीनिवास दास के 'परीक्षा गुरु' को प्रथम उपन्यास के तर्ज पर खरा मनाते हैं। किन्तु गोपाल राय जब हिंदी के प्रथम उपन्यास के बारे में चर्चा करते हैं तब वे पंडित गौरीदत्त द्वारा रचित 'देवरानी जेठानी की कहानी' (1870) को सामने लाते हैं। इन्होंने जब 1966 में इस उपन्यास का संपादन एवं प्रकाशन कराया तब उन्होंने इसके पहले उपन्यास होने को लेकर ठोस तर्क उपस्थित किए। वे इस संदर्भ में कहते हैं कि, "विषय, शिल्प, भाषा चाहे जिस दृष्टि से देखा जाए,........ 'देवरानी जेठानी की कहानी' विशिष्ट है अतः हिंदी

उपन्यास का आरम्भ यदि किसी पुस्तक से माना जा सकता है, तो इसी से।''[13] उनके द्वारा दिया गया तर्क आनेवाले नये आलोचकों को नई सोच और विचार दृष्टि देता है।

गोपाल राय केवल आलोचना करते हेतु आलोचना के रणक्षेत्र में नहीं उतरे थे। उन्होंने अपने नये मानदंड, नई विचार दृष्टि के साथ उपन्यास के नये क्षेत्रों को चुना था। इसका परिचय उनके 'हिंदी उपन्यास का इतिहास' पुस्तक में मिलता है। केवल 'उपन्यास' शब्द को लेकर उनकी गंभीर शोध दृष्टि को महसूस किया जा सकता है। 'उपन्यास' शब्द का प्रचलन कब हुआ? इस संदर्भ में वे हिंदी पत्र-पत्रिकाओं के साथ बांग्ला साहित्य तक की खोज करते हैं। उनका यह कार्य सागर में मोती खोजने जैसा है। उपन्यास शब्द के प्रयोग के संदर्भ में उनका शोध और कथन दोनों महत्वपूर्ण है। वे कहते हैं, ''नॉवेल के लिए 'उपन्यास' पद का प्रयोग तो हिंदी को बांग्ला की देन है ही। बांग्ला में भी 'उपन्यास' पद का प्रथम प्रयोग भूदेव मुखोपाध्याय ने 1862 ई. में अपनी 'ऐतिहासिक उपन्यास' नामक कथा पुस्तक के शीर्षक में किया था... हिंदी में 'नॉवेल' के अर्थ में 'उपन्यास' पद का प्रथम प्रयोग भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने 1875 ई. में 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' के फरवरी और मार्च, 1875 के अंको में धारावाहिक रूप में प्रकाशित अपूर्ण कथा 'मालती' के लिए किया था।''[14]

गोपाल राय ने हिंदी आलोचना के क्षेत्र को नया मोड दिया है। वे हिंदी उपन्यास आलोचना के क्षेत्र में एक परिपूर्ण आलोचक कहे जाते हैं। लेकिन उनकी आलोचकीय दृष्टि पर टीका करते हुए मधुरेश जी कहते हैं कि ''गोपाल राय प्रगतिवादी आलोचकों के संबंध में प्रायः ही व्यंग्य और कटाक्ष से बात करते हैं। लेकिन उनमें किसी सुनिर्दिष्ट और सुपरिभाषित वैचारिक स्टैण्ड का अभाव उनके मूल्यांकन को प्रभावित करता है। ऐसे अवसरों पर वे रांगेय राघव से बड़ा लेखक नरेन्द्र कोहली को मानते दिखाई देते हैं या

फिर राही मासूम रजा और नार्गाजुन की अपेक्षा विवेकी राय को।"[15] मधुरेश जी का यह कथन सोचनीय है। लेकिन गोपाल राय के रचना संसार और आलोचकीय कर्म को देखकर सही मायनों में कहा जा सकता है कि उन्होंने हिंदी आलोचना के क्षेत्र में नये विचार, नये मानदंड, नई दूरदृष्टिता प्रस्थापित कर उभरते आलोचकों के लिए नए पथ को प्रदर्शित किया है।

गोपाल राय प्रमुख रूप से उपन्यास के आलोचक है, उन्होंने अपने शोध दृष्टि से उपन्यास की आलोचना के क्षेत्र में एक नई दिशा दी है। वे अकादमिक आलोचना के एक गंभीर व्यक्तित्व थे, जिन्होंने तटस्थ होकर हिंदी उपन्यासों पर काम किया है। गोपाल राय ने अपने इस शोध में हिंदी कथा साहित्य पर चर्चा करते हुए उपन्यासों के विषय, शिल्प और भाषा तीनों पर दृष्टि बनाये रखी है। इस संदर्भ में मधुरेश लिखते हैं, "उपन्यास में विचार की भूमिका को कम करके न आँकने पर भी वे एक अच्छे और सफल उपन्यास के लिए यह जरूरी मानते हैं कि वह विचार एक सुस्पष्ट 'विज़न' में परिणत हो सके।"[16]

21 वीं सदी के साहित्य पर नज़र दी जाए तो अनगिनत आलोचक विद्यमान है जो आये दिन किसी न किसी विषय पर आलोचना करते रहते हैं। अगर गौर किया जाये तो ऐसे कितने आलोचक है जिन्होंने 'आलोचना' के पथ को सही रूप में आगे बढ़ाया है, शायद बहुत कम। लेकिन गोपाल राय एक ऐसे आलोचक है जिन्होंने आलोचना के पुराने मानदंडों को नकारते हुए अपनी विवेक बुद्धि और चिंतनशीलता के बल पर तटस्थ होकर आलोचना को आगे बढ़ाने का कार्य किया है। उनके द्वारा आलोचना के क्षेत्र में किया गया कार्य उत्तरवर्ती आलोचकों के लिए दीपस्तंभ का कार्य करता रहेगा। टकराव की स्थिति हर आलोचक के रचना कर्म में उपस्थित होती है जिससे गोपाल राय

भी अछूते नहीं रह पाये है, पर फिर भी वे मार्ग से विचलित नहीं हुए। हिंदी आलोचना के विकास में इनके द्वारा दिया गया योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण माना जाता है।

संदर्भ :-

[1] रचना और आलोचना की द्वंदात्मकता - कमल प्रसाद, पृ. सं. 10 (दूसरे सं. की भूमिका)

[2] वही, पृ. सं. 12

[3] आलोचना - समय और साहित्य - रमेश दवे, पृ. सं. 46

[4] हिंदी आलोचना का विकास - मधुरेश, पृ. सं. 261

[5] हिंदी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ. सं. 342

[6] वही, पृ. सं. 343

[7] हिंदी कथा साहित्य और उसके विकास पर पाठकों की रूचि का प्रभाव - गोपाल राय, (भूमिका से)

[8] हिंदी उपन्यास का इतिहास - गोपाल राय, पृ. सं. 10

[9] आलोचना की समाजिकता - मैनेजर पाण्डेय, पृ. सं. सं. 55

[10] हिंदी आलोचना का विकास - मधुरेश, पृ. सं. 263

[11] हिंदी उपन्यास का इतिहास - गोपाल राय, पृ. सं. 290

[12] वही, पृ. सं. 293

[13] हिंदी कथा साहित्य और उसके विकास पर पाठकों की रूचि का प्रभाव - गोपाल राय, पृ. सं. 218

[14] हिंदी उपन्यास का इतिहास - गोपाल राय, पृ. सं. 36-37

[15] हिंदी आलोचना का विकास - मधुरेश, पृ. सं. 263

[16] वही, पृ. सं. 263

-: पंचम अध्याय :-

गोपाल राय की आलोचनात्मक भाषा

पंचम अध्याय

गोपाल राय की आलोचनात्मक भाषा

अपने भावों की अभिव्यक्ति के लिए मनुष्य जिस माध्यम का प्रयोग करता आया उनमें भाषा सबसे महत्वपूर्ण माध्यम है। अपने विकास काल में मनुष्य ने जिन महत्वपूर्ण बातों को विकसित किया हैं उनमें भाषा का स्थान सर्वोपरि है। अगर भाषा न होती तो मनुष्य भी अपनी अभिव्यक्ति को प्रस्तुत नहीं कर पाता। भाषा के द्वारा वह अपने विचारों और भावों को अभिव्यक्त करता है और उसके अभिव्यक्ति के विषय अलग-अलग होते हैं। जिसके कारण सभी विषयों और क्षेत्रों में प्रयुक्त होने वाली भाषा का स्वरूप अलग-अलग होता है। भाषा के संदर्भ में डॉ. श्याम सुंदर दास कहते हैं, "मनुष्य और मनुष्य के बीच वस्तुओं के विषय में अपनी इच्छा और मति का आदान-प्रदान करने के लिए व्यक्त ध्वनि-संकेतों का जो व्यवहार होता है उसे भाषा कहते हैं।"[1] साथ ही वे आगे कहते हैं, "मनुष्य समाजप्रिय जीव है, वह सहयोग और विनिमय के बिना कभी नहीं रह सकता। उसकी यह प्रबल प्रवृत्ति भाषा के रूप में प्रकट होती है क्योंकि भाषा सामाजिक सहयोग का साधन बन जाती है। पीछे से विकसित होते-होते भाषा विचार और आत्माभिव्यक्ति का भी साधन बन जाती है। अतः यह कभी नहीं भूलना चाहिए कि भाषा एक सामाजिक वस्तु है।"[2] परंतु एक विशिष्ट कला द्वारा साहित्य में प्रयुक्त होने वाली भाषा अपना अलग स्थान रखती है। मनुष्य को सामाजिक प्राणी कहा गया है। मानव समाज में विचारों के आदान-प्रदान के लिए उसने महत्वपूर्ण साधन भाषा को बनाया है। जिसके द्वारा वह समाज में रहकर ही वह नव-नवीन बातों का अर्जन करता है। मनुष्य समाज में रहकर ही भाषा सिखाता है। समाज में अनेक भाषाएँ बोली जाती हैं। हर भाषा की अपनी अलग पहचान है। भाषा द्वारा व्यक्ति अपने भावों एवं विचारों को समाज के सामने रखता है। अपने विचार भाषा के माध्यम से

जब वह किसी साहित्यक विधा के रूप में व्यक्त करता है तो उसे साहित्यिक भाषा कहा जाता है। इसलिए साहित्य में भाषा का महत्वपूर्ण स्थान है।

सर्वमान्य है कि भाषा अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है। भाषा द्वारा ही व्यक्ति अपनी अभिव्यक्ति को दूसरों तक पहुँचा पाता है। किसी कवि की सार्थकता को परखने हेतु उसकी काव्यानुभूतियों को परखा जाता है जबकि आलोचना के कर्म की विश्वनीयता, विचारशीलता और उसकी गहनता के लिए आलोचक की भाषा को मापा जाता है। अतः किसी साहित्यिक कृति की भाषा की तरह आलोचना की भाषा में शब्द और अर्थ का सबंध गहरा होना आवश्यक है। अन्य विधाओं से तुलना की जाए तो आलोचना की भाषा को कठिन और क्लिष्ठ माना जाता है। क्योंकि भाषा की यह कठिनता और क्लिष्ठता आलोचक के विचार और तार्किक शक्ति से उत्पन्न होती है। इसलिए आलोचना के साथ उसकी भाषा पर भी विचार करना आवश्यक हो जाता है। आलोचक भाषा के माध्यम से हमेशा अपनी विशिष्टता को स्थापित करने का प्रयास करता है। क्योंकि विशिष्ट भाषा आलोचना में नये प्रतिमानों को स्थापित करने में सहायक होती है। आलोचना के संदर्भ में नामवर सिंह कहते हैं, "यदि आलोचना निष्क्रिय रसवाद नहीं बल्कि सक्रिय मूल्यांकन है तो यह भी निश्चित है कि प्रत्येक मूल्यांकन एक वैचारिक संघर्ष है..... साहित्य में जो गहरे स्तर पर संप्रक्त है और इस संप्रक्ति के नाते साहित्य के वृहत्तर परिवेश से अपने को संबध्द करता है। वही आलोचक कर्म की गंभीरता को भी समझता है। जिंदगी में रोटी का टुकड़ा एक संघर्ष का ही फल है। यही संघर्ष आलोचना की भाषा को जीवंतता प्रदान करता है।"[3] नामवर सिंह का यह कथन आज लगभग सभी आलोचकों पर सटीक होता नजर आता है।

आलोचक अपने भावों, विचारों, अनुभूति और अनुभूतियों के सर्वांग अभिव्यक्ति के लिए भाषा की विशिष्ट शैली का प्रयोग करता है। इस शैली के अंतर्गत कलात्मक सौंदर्य और भाषिक संरचना आदि आते हैं। शैली से तात्पर्य विशिष्ट ढंग अथवा अंदाज से

है। साहित्यकार जब अपने विचारों को भाषा द्वारा सौंदर्यकृत कर पाठकों के सामने प्रस्तुत करता है तब उसे भाषा की शैली कहा जाता है। भाषा शैली द्वारा ही अर्थ और भाव पूर्णतः अभिव्यक्त होते हैं। भाषा का प्रयोग मूलतः बाह्य और आंतरिक संदर्भ पर आधारित होता है। बाह्य संदर्भ में वक्ता, श्रोता, विषय-वस्तु, समय, स्थान, भाषा, माध्यम आदि और आंतरिक संदर्भ में वाक्य, पदबंध, शब्द, रूप, ध्वनि आदि आते हैं। इसी कारण मनुष्य वैयक्तिक और व्यावहारिक जीवन में अलग-अलग भाषा का प्रयोग करता है। इन्हीं उपयुक्त संदर्भों को लेकर आलोचक भी अपनी भाषा का चयन करता है।

आलोचना के द्वारा आलोचना के क्षेत्र अपनी लेखनी द्वारा गरिमामय स्थान प्राप्त करने वाले साहित्य के महान आलोचक गोपाल राय सदा ही अपनी विशिष्ट शैली के लिए स्मरण में रहते हैं। आलोचना के मानदण्डों को चुनौती देते हुए नए मानदण्डों की प्रति स्थापना कर पाना हर आलोचक के लिए संभव नहीं है। इसलिए कुछ आलोचक प्रवाह के साथ बहते हैं तो कुछ आलोचक प्रवाह को मोड़ते हुए दिखाई देते हैं। गोपाल राय आलोचना के क्षेत्र में अपनी कमान बाँधकर अपना प्रभुत्व स्थापित करने वालों में से हैं।

भारतेंदु युग से आलोचना का प्रारंभ माना जाता है। यह वह युग है जहाँ आलोचना के क्षेत्र और विकास में वृद्धि दिखाई देती है। समयानुरूप आलोचना में परिवर्तन स्वाभाविक कहा जा सकता है क्योंकि परिवर्तन सृष्टि का नियम है। बिना परिवर्तन के कोई भी मूर्त या अमूर्त वस्तु विकास से वंचित रह जाती है। भारतेंदु युग में आलोचना को लेकर काफी चिंतन हुआ जिस कारण आज आलोचना के विषय और भाषा काफी विकसित दृष्टिगत होते हैं।

भाषा का विकास और संस्कार लगभग सभी विषयों दिखाई देता है। आलोचना एक ऐसा क्षेत्र है जहाँ आलोचक पुराने शब्दों को छोड़कर नए शब्दों द्वारा नई संकल्पनाओं को प्रस्तुत करता है। वह शब्दों में नए अर्थ भरकर उन्हें नए रूप में प्रस्तुत

करता है। आलोचना में मिठास के साथ कटाक्ष भी प्रस्तुत करना आवश्यक होता है। इसलिए आलोचक भाषा के माध्यम से विशेष भाव-बोध और विचार बोध को प्रस्तुत करने का प्रयत्न करता है। भारतेंदु युग में प्रयुक्त होने वाली आलोचना की भाषा साधारणतः खड़ीबोली ही रही है। जिसमें आलोचकों ने संस्कृतनिष्ठ हिंदी के साथ अन्य देशी भाषाओं के शब्दों का प्रयोग कर अपने विचार तथा क्षेत्र को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया है। जिसमें वे सफल बन पड़े हैं। भाषा केवल साधन मात्र है साध्य तो आलोचना का मूल विषय माना जाएगा।

एक आलोचक को हमेशा यह ज्ञात होता है कि आलोचना चाहे किसी भी विषय से संबंधित हो जैसे आंचलिकता, अलंकारिकता, रसात्मक, जीवनात्मक आदि इनमें भाषा का स्तर प्रभावी और समतल रखना आवश्यक होता है। ताकि आलोचना को पढ़ते समय पाठक को कहीं भी बोझिलता प्रतीत न हो। भारतेंदु काल से समकालीन समय तक कई आलोचकों ने साहित्यिक कृतियों, काव्यों, उपन्यासों, कहानियों, जीवनियों, आत्मकथाओं आदि पर अपने विचारों को प्रस्तुत कर अपनी आलोच्य दृष्टि का परिचय सदा ही देते रहे हैं। बालकृष्ण भट्ट, आ. रामचंद्र शुक्ल, हजारी प्रसाद द्विवेदी, रामविलास शर्मा, दिनकर, नामवर सिंह आदि के साथ ऐसे कई महत्वपूर्ण आलोचक हैं जो हमेशा आलोचना की भाषा को लेकर सजग रहे हैं। इन आलोचकों ने कृति तथा उसे पढ़ने वाले पाठक वर्ग को ध्यान में रखकर अपनी आलोच्य भाषा का एक विशेष माप तैयार किया है। इसी कारण आलोचना की भाषा का विकास कहीं धीमी तो काही तेज गति से दिखाई देता है। आलोचक का कर्म कृति के विषय में निपक्ष होकर गुण-दोषों को प्रस्तुत करना है। माना जाए तो आलोचना में भाषा का स्तर हमेशा प्रस्तुतिकरण को ध्यान में रखते हुए होना चाहिए परंतु आलोचक के लिए यह बात चुनौतीपूर्ण है क्योंकि आलोचक को स्पर्धा में बने रहना है। और जिस कारण वह अपने भाषा के स्तर को ओर निखरना चाहता है।

आलोचना में भाषा का विशेष स्थान होता है। उत्कृष्ठ भाषा का प्रयोग आलोचक की सूझ-बूझ विचारशीलता, चिंतन शक्ति का परिचय देती है। लगभग सभी आलोचक भाषा को साधन बनाते हुए अपने आलोच्य विचारों को एक सूत्र में बाँधते हुए पाठक वर्ग तक पहुँचाने का महत्वपूर्ण कार्य करते हैं। भाषा की निर्मिती में मुख्य स्थान शब्दों का होता है। शब्दों द्वारा ही किसी विषय-वस्तु को परिभाषित करते हुए एक प्रवाह में प्रवाहित किया जाता है। आलोचक अपने शब्दों को मजबूती प्रदान करने हेतु सदा तत्पर रहता है। शब्दों के योग्य मेल से जो निकलता है, वह अर्थ पूर्ण होता है। शब्द मनोंभावों की अभिव्यक्ति का प्रमुख साधन हैं। शब्द की परंपरा एवं उसकी संस्कृति की निश्चित कोई व्याख्या नहीं है लेकिन शब्द हमारे आस-पास ही प्राप्त होते हैं। शब्दों द्वारा ही वह विषय वस्तु को सशक्त रूप से प्रकट करने की क्षमता रखता है। शब्दों के संदर्भ में कहा जा सकता है कि, "शब्द अपनी ध्वनि रचता है, अपनी वृत्ति रचता है, अपने अर्थ रचता है और अपनी दृष्टि रचता है। सृजन में शब्द सार्थक होता है। आलोचना शब्द की इसी सार्थकता का उद्घाटन करती है। आलोचना शब्दान्वेषण ही नहीं करती, बल्कि सृजन के समूचे अंतर्निहित संदर्भों के साथ शब्द की उपस्थिति का औचित्य-अनौचित्य प्रतिपादित करती है।"[4]

शब्दों के योग्य मेल से ही भाषा की उत्पत्ति होती है और किसी विषय को पूर्णत्व की ले जाया जा सकता है। शब्द भाषा का विशिष्ट अंग माने जाते हैं। इसलिए आलोचना में शब्दों का विशिष्ट ध्यान रखा जाता है। गोपाल राय अपनी आलोचना में शब्दों के प्रति हमेशा सजग दिखाई देते हैं। अपनी कृतियों में वे शब्दों का प्रयोग बड़ी बारीकियों से करते हैं। जिस कारण उनकी भाषा शैली में गहनता दृष्टिगत होती है। उनकी रचनाओं में प्रयुक्त शब्द अत्यंत सहज और सरल प्रतीत होते हैं। उन्होंने कहीं भी शब्दों को तोड़ा या मरोड़ा नहीं है। वे शब्दों के साथ किसी भी प्रकार का खेल नहीं खेलते। शब्द उनके लिए मोती की तरह है जिन्हें वे अपनी रचनाओं में माला की तरह

पिरोने का प्रयास करते हुए नजर आते हैं। वे साधारण शब्दों का प्रयोग करते हुए किसी गहन बात को भी सहजता से सामने रखते हैं। जिसका प्रमाण उनकी आलोचनात्मक कृति 'हिंदी उपन्यास का इतिहास' में मिलता है। शब्दों द्वारा उपन्यास की विशेषता और स्थिति को पाठकों के सामने प्रस्तुत करते हुए वे लिखते हैं, "उपन्यास अपने समय का साक्षी होता है, वह समय के साथ यात्रा भी करता है। अपनी लगभग पाँच दशकों की यात्रा में हिंदी उपन्यास ने देश के बदलते हुए जीवन यथार्थ को उसके पूरे विस्तार और वैविध्य में गहरी संवेदनशीलता के साथ प्रस्तुत किया है। इस अवधी में परिणाम और प्रकार दोनों दृष्टियों से हिंदी उपन्यास का अभूतपूर्व विकास हुआ है। शायद ही समकालीन यथार्थ का कोई ऐसा पक्ष हो, जो उपन्यास की संवेदनशील पकड़ से छूट गया हो। पिछली आधी सदी में गाँवों की वास्तविक जिंदगी और उसमें आए बदलाव, स्त्री की परम्परागत दु:ख भरी दास्तां, उनके रूपांतरण तथा सबलिकरण की प्रक्रिया, दलितों की नरकतुल्य जिंदगी और उनके उठ खड़े होने की सच्चाई, समाज के पिछड़े वर्ग का विद्रोह, मध्यवर्ग का बहुरंगी यथार्थ, परिसर जीवन की विकृतियाँ, राजनीति के क्षेत्र में आयी गिरावट, कला, साहित्य और पत्रकारिता के क्षेत्र की बदसूरत वास्तविकता आदि हिंदी उपन्यास में अपने यथार्थ रूप में दिखाई देते हैं।"[5] यहाँ यह स्पष्ट होता है कि गोपाल राय द्वारा प्रयुक्त भाषा सरल और स्वाभाविक है। वे जनता की भाषा को साहित्य में प्रयोग करने के आकांक्षी है।

गोपाल राय उन आलोचकों में से हैं जिन्होंने आलोचना के माध्यम से जनता के यथार्थ पर रचित साहित्य का मूल्यांकन जनता की भाषा में किया है। भाषा के संदर्भ में गोपाल राय की केवल एक मात्र मौलिक कृति 'हिंदी भाषा का इतिहास' उपलब्ध होती है। जिसमें वे हिंदी भाषा के इतिहास को उजागर करते हुए नजर आते हैं। इसके

अतिरिक्त वे अपनी लिखित एवं वाचिक आलोचना में कई नये प्रतिमानों की सृष्टि करते हैं। ऐसे आलोचक गोपाल राय की आलोचनात्मक भाषा के संदर्भ मटुक नाथ चौधरी ने लिखा है कि, "हिंदी में बहुत कम विद्वान हैं जो डॉ. गोपाल राय जैसी सहज, सरल और स्पष्ट भाषा के स्वामी हों। मुझे तो डॉ. रामविलास शर्मा के बाद आचार्य देवेन्द्र नाथ शर्मा, डॉ. नामवर सिंह, डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी, डॉ. गोपाल राय जैसे इन गिने विद्वानों की ही भाषा पसंद हैं।"[6]

कोई भी रचनाकार आलोचना कर्म करने हेतु प्रवृत्त होता है तो सर्वप्रथम उसके समक्ष प्रश्न उपस्थित होता है भाषा को लेकर कि, आलोचना की भाषा कैसी हो? भाषा के संदर्भ में वह विचाररत होता है कि भाषा कौन-सी भाषा अपनाएँ? साथ ही वह किस भाषा को स्वीकृत करें जो उसके कथनों को पूर्ण अभिव्यक्ति प्रदान कर पाएगी। आलोचना प्रवाह की तरह होती है जो अपने लक्ष्य की ओर यात्रा करती रहती है। उसे अभिव्यक्ति द्वारा एक सूत्र में बाँधकर प्रस्तुत करना एक गंभीर समस्या हैं। इसलिए आलोचना की भाषा पर विचार करना टेढ़ी खीर के समान है।

गोपाल राय की आलोचनात्मक कृतियों को पढ़ने के बाद ज्ञात होता है कि वे भाषा को सहज उत्पन्न नहीं मानते, वह अथाह संघर्षों से निर्मित होती है। कथा साहित्य की आलोचना करते हुए वे कथा और उपन्यासों की भाषा पर विचार करते हुए कहते हैं "कथा अर्थात समयानुक्रम में घटनाओं के नियोजन में भाषा के उत्कृष्टतर गुणों का प्रकाशन सीमित मात्रा में संभव है। भाषा की शक्ति, सौंदर्य और सर्जनात्मकता उपन्यास के अन्य पक्षों में जिनमें जीवन के उच्चतर मूल्य अभिव्यक्त होते हैं, उजागर होते हैं।"[7] वे जीवन और साहित्य के संघर्ष में भाषा को निखरने के अभिलाषी है। वे आलोचना के मूल्य और भाषा दोनों को संघर्षों से निर्मित मानते हैं। इस संघर्ष को वे आलोचना की परंपरा में भी स्थान देते हैं।

गोपाल राय भाषा को अन्य आलोचकों की भाँति सरल किन्तु गूढ़ न बनाते हुए आलोचना में नये आदर्शों को स्थापित करने के आकांक्षी है। इनकी भाषा में कई आलोचकों की भाषा का विकसित रूप दिखाई देता है। जहाँ अन्य आलोचकों की भाषा धारदार शस्त्र की तरह प्रतीत होती हैं वहाँ गोपाल राय अपनी भाषा के शब्दों को बंदूक की गोली की भाँति प्रयोग करते हैं।

गोपाल राय अपनी भाषा का स्वरूप समाने प्रस्तुत आलोच्य कृति को देखकर निर्धारित करते हैं। वैसे तो सरलता उनकी भाषा की प्रमुख विशेषता है किन्तु जहाँ आलोच्य कृति के तेवर दिखाई देते हैं वहाँ वे तीखे प्रहार करने से नहीं चूकतें। ऐसी स्थितियों में वे भाषा का प्रयोग अस्त्र की भाँति करते हुए नजर आते हैं। उनकी भाषा कोई शोभा की वस्तु नहीं है जिसे संग्रह के रूप में संग्रहित की जाए बल्कि उनकी भाषा वह टंकार है जिसे आलोचना के क्षेत्र में ही नहीं बल्कि पूरे विश्व साहित्य में सुना जा सकता है।

गोपाल राय अपने समाज, साहित्य और अपनों से जुड़े आलोचक है इसलिए उनकी आलोचना में भाषिक अपनेपन का भाव दृष्टिगत होता है। अपनेपन के चलते उनकी रचनाओं में आस-पास के स्थानिक शब्दों का प्रयोग अधिक देखने को मिलता है। इसलिए उनकी आलोचाना को पढ़ते हुए अपनेपन का एहसास बार-बार पाठक वर्ग को होता रहा है। वे सरल, साधारण में विश्वास रखानेवाले व्यक्ति है। इसलिए उनकी भाषा में अपनेपन की एक झलक नजर आती है।

गोपाल राय की आलोचना की भाषा पर विचार करते हुए यह देखा जा सकता है कि उनकी भाषा में पंडिताऊपन का अभाव है। वे अपनी भाषा में पारिभाषिक शब्दवाली से बचाने की कोशिश करते हैं। साथ ही वे भाषा के अमूर्तपन ढंग का कहीं-कहीं प्रयोग करते हैं। क्योंकि अमूर्तपन के परिदृश्य में ऐतिहासिक तथ्यों की भाषा साथ चलती है जिसमें वे हमेशा संतुलन बनाए हुए नजर आते हैं। इनकी भाषा में जहाँ अपार

पाठकीय सौंदर्य हैं, वही वे अपने सौष्ठव एवं संरचना की ताकत से पाठक वर्ग को अपने ओर आकर्षित करने में सफल रहे हैं। उनकी भाषा अन्य आलोचकों के मायने कसी हुए प्रतीत होती है जिसमें कुछ अपवादों को छोड़कर अपव्यय और निरर्थकता नहीं हैं।

गोपाल राय को भाषा के गिरते स्तर पर चिंता रही है। इसलिए वे शास्त्रीयता के बंधन से भाषा को मुक्त करना चाहते हैं। उनकी रचनाओं को पढ़ने से ज्ञात होता है कि वे कहीं न कहीं संकेतात्मक रूप में भाषा की जकड़न को तोड़ना चाहते हैं जिससे आलोचना सदा पठनीय बनी रहे।

उनकी रचनाओं से स्पष्ट होता है कि उनकी भाषा अत्याधिक जीवंत और प्रभावशाली है। उनकी भाषा में चिंतनशीलता के साथ काव्य-शास्त्र से जुड़े समीकरण मिलते हैं। उनकी भाषा में कहीं भी पांडित्य नहीं झलकता। वस्तुओं और व्याख्याओं को उत्कृष्ट भाषा में लिखने की परंपरा उन्हें आदर्शवादी आलोचकों से मिली हैं जिसे वे पूरी ईमानदारी से निभाते रहे हैं।

गोपाल राय की भाषा लोकजीवन से स्वयं को समृद्ध करती है। उनकी आलोचनात्मक कृतियों में लोकनुभाव की भाषा का उत्तम उदाहरण देखा जा सकता है। इसी प्रकार की भाषा वे उपन्यास के लिए भी उपयुक्त मानते हैं। इनके संदर्भ में मधुरेश कहते हैं कि, “उनकी दृष्टि में उपन्यास के लिए आदर्श भाषा वह है जो क्षेत्रीय बोलियों का भरपूर लाभ देकर भी, एक भाषा के रूप में हिंदी की पहचान को बाधित न करे।”[8] वे अपनी रचना शैली को शास्त्रीय बोझिलता से दूर रखने का प्रयास करते हैं। संस्कृति और परंपरा से प्राप्त शब्दों के दुरुपयोग से वे हमेशा बचते हैं। अपनी रचनाओं में वे कठिन शब्दावली से ज्यादा वे स्वर को महत्व देते हैं जिस कारण अलंकार की प्रवृत्ती उनकी भाषा में कम दिखाई देती है।

गोपाल राय आलोचनात्मक वाद-विवादों में कम ही दिखाई देते हैं किन्तु जहाँ भी वे वाद में घिरे वहाँ उन्होंने अपने विरोधियों की भाषा से शब्द चुनकर उनपर ही वे प्रहार करते हुए नजर आते हैं। उनके सीधे और सरल लगने वाले शब्दों में व्यंग्य के प्रवाह को भी महसूस किया जा सकता है। वे संस्कृत, फारसी, उर्दू और अंग्रेजी के ज्ञाता हैं, इसलिए वे देशी और विदेशी भाषा के शब्दों का प्रयोग बड़ी सूझ-बुझ के साथ करते हैं। वे विदेशी शब्दो प्रयोग के विरोधी नहीं है किन्तु वे मानते हैं कि इनका प्रचुर मात्र में प्रयोग हिंदी भाषा के लिए घातक हो सकता है। वे कहते हैं "किसी भी भाषा के लिए अपने दरवाजे खिड़कियाँ इस प्रकार बंद नहीं करने चाहिए कि उसमें बाहरी शब्द घुस नहीं पाए, पर विदेशी अपरिहार्य शब्दों को अपनाना और उनसे अपनी भाषा को आक्रांत कर देना एक बात नहीं है।"[9]

लोकोक्तियों और मुहावरों का प्रयोग इनकी रचनाओं में कम दिखाई देता हैं किन्तु वे भाषा के संदर्भ में इनकी महत्ता को स्वीकारते हुए कहते हैं, "मुहावरे जीवन भाषा के अभिन्न अंग होते हैं।"[10] साथ ही वे वाक्य रचना के महत्व को प्रतिपादित करते हुए कहते हैं, "वाक्यरचना सर्जनात्मक भाषा का महत्वपूर्ण अंग हैं।....."[11] उनकी आलोच्य कृतियों के अध्ययन से हमे उनकी वाक्य-रचना का परिचय मिलता है। अपनी रचनाओं में वे वाक्य में कहीं भी अधूरापन नहीं छोड़ते। वाक्य को हमेशा पूर्णत्व प्रदान करना वे अपना कर्तव्य समझते हैं।

गोपाल राय ने भारतीय परंपरा के साथ आधुनिकतावादी आलोचकों का गहन अध्ययन किया है। इसलिए उनकी आलोचन में नयी आलोचना में प्रयुक्त होनेवाले सृजनशीलता, सपाटबयानी, विसंगति, विडम्बना, अनुभूति की जटिलता आदि से संबंधित शब्दों का प्रयोग मिलता है। उन्होंने सदा अपने लेखन द्वारा आलोचना के लिए आवश्यक सरल, स्पष्ट, पारदर्शक और विचारोत्तेजक भाषा प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया

है। अपनी भाषा और चिंतनशीलता के लिए गोपाल राय हिंदी आलोचना में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

भले ही गोपाल राय की भाषा शैली में भाषा वैज्ञानिकता का कोई नियम या पारिभाषिक शब्दावली का कोई प्रयोग नहीं मिलता हो किन्तु समाज, साहित्य और भाषा के विकास को लेकर उनकी भाषा पूर्णत: परिचित नजर आती है। इनकी भाषा तत्कालीन समाज में स्पर्धा में खड़े आम आदमी की भाषा है जो आलोचना में सरल भाव से फलती-फुलती और अपनी जिज्ञासाओं को आम आदमी तक पहुंचाने का प्रयास करती है। एक आलोचक जब अपने समय की समस्याओं से दो-चार होना छोड़ देता है तब वह एकांगी और अकेला हो जाता है और यही अकेलापन और एकांगीपन उसकी भाषा में भी दिखाई देता है। परिणाम यह होता है कि ऐसे समय से निकली आलोचना की भाषा प्रकट रूप से सूक्ष्म लगती है किन्तु वास्तविक रूप में वह सपाट होती है। इसके विपरीत कुछ आलोचकों की भाषा में कुछ तीव्र एवं आक्रामक तेवर दिखाई देते हैं, वहाँ आलोचकों की भाषा को गहरा आघात लगता है और आलोचना में प्रयुक्त पदों की प्रमाणिकता पर संदेह की स्थिति उत्पन्न होती है। इससे आलोचना में अस्पष्टता दिखाई देती है क्योंकि कुछ आलोचक भाषा प्रभाव के कारण कुछ शब्दों को अस्पष्ट ही रहने देना चाहते हैं। जिस संदर्भ में नामवर सिंह लिखते हैं, “स्पष्ट लक्ष्य वाला विचारक अस्पष्ट से अस्पष्ट अवधारणा को भी विचार और विश्लेषण के क्रम में अभीष्ट निश्चितता प्रदान करा देता है। उदाहरण के लिए ‘ईमानदार’ शब्द। ईमानदारी भी ‘प्रमाणिकता’ से कम अस्पष्ट नहीं है और नई कविता की चर्चा में इसका खूब उपयोग किया गया, यहाँ कि प्रयोगकर्ता ने किसी के मन में इसकी वस्तुनिष्ठ युक्तता के निर्भय का प्रश्न भी नहीं उठाने दिया। संभव है उनके लक्ष्य की प्राप्ति के लिए यह पर्याय निश्चित और स्पष्ट रहा है।”[12] गोपाल राय की आलोचना की भाषा ऐसी कई अस्पष्टताओं से कोसों दूर है।

अंत में कहा जा सकता है कि गोपाल राय की आलोचना की भाषा सरल, साधारण, सहज होने के कारण आलोचना में सृजनात्मक आयामों को खोलने और निरंतर संवाद बनाए रखने का प्रयास करती है। गोपाल राय का व्यक्तिमत्व संवेदनशील है जिस कारण उनकी भाषा में सौज्वलता, प्रभावमयता और आत्मीयता दिखाई देती है। जो उन्हें अपने समकालीन आलोचकों से अलग करती है। वे केवल पाठ के मूल्यांकन तक ही सीमित नहीं रहते बल्कि अपनी आलोचना की भाषा द्वारा पाठक की संवेदनाओं को छूने का एक सफल प्रयास करते दिखाई देते हैं। जटिल विषयों के चलते भी वे अपनी भाषा के स्तर पर परिवर्तन न करते हुए अपने विचारों और अभिव्यक्तियों के माध्यम से पाठक वर्ग को अपने अपनेपन के तत्व से जोड़े रखते हैं।

संदर्भ :-

[1] भाषा विज्ञान - डॉ. श्याम सुंदर दास, पृ. सं. 29

[2] वही, पृ. सं. 29

[3] वाद विवाद संवाद - नामवर सिंह, पृ. सं. 29

[4] आलोचना समय और साहित्य - रमेश दवे, पृ. सं. 73

[5] हिंदी उपन्यास का इतिहास - गोपाल राय, पृ. सं. 399

[6] गोदान : नया परिप्रेक्ष्य - गोपाल राय, पृ. सं. 190

[7] 'समीक्षा' पत्रिका - सं. गोपाल राय, जुलाई-सितम्बर 2010 पृ. सं. 12

[8] गोदान : नया परिप्रेक्ष्य - गोपाल राय, पृ. सं. 215

[9] वही, पृ. सं. 217

[10] वाद विवाद संवाद - नामवर सिंह, पृ. सं. 25

-: उपसंहार :-

उपसंहार

आलोचना अर्थात किसी रचना के गुण-दो परखना या परिभाषित करना नहीं है उसका कार्य लेखक की विशेषताओं को उजागर करने के साथ-साथ उसकी विचारधारा को स्पष्ट करते हुए उसकी अंत: वृतियों की छान-बीन करना है। आलोचना का कार्य सरल नहीं है, ऊपरी तौर पर यह कार्य साधारण लगे किन्तु व्यवहार में यह अधिक कठिन है। आलोचना का कार्य दो धारी तलवार के समान है। जिसे अंत तक ले जाने के लिए एक आलोचक को सूक्ष्म पर्यवेक्षक, गहन अध्येयता, निष्पक्षता आदि गुणों से लेस होना चाहिए। आलोचक के यह गुण हर किसी को प्राप्त नहीं होते लेकिन गहन अध्ययन और सतत अभ्यास से व्यक्ति एक अच्छा आलोचक बन सकता है। आलोचना की प्रथम माँग यही है कि आलोचक विषय का गहराई से अध्ययन कर समस्या की मूल जड़ तक जाए ताकि विषय की सूक्ष्मता से वह परिचित हो सके। आलोचना की यह माँग गहन चिंतन और अध्ययन करने वाला व्यक्ति ही पूर्ण कर सकता है और समाज में केवल अध्यापक ही ऐसा व्यक्ति है जो इस कसौटी पर खरा उतरता है। शायद इसीलिए अधिकतर उच्चकोटि के आलोचक जैसे. रामचंद्र शुक्ल, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, रामविलास शार्म, नामवर सिंह आदि सभी अध्यापक रह चुके हैं। इनके अध्यापकीय कर्म से ही इन्हें एक प्रतिष्ठित आलोचक के रूप में पहचना जाता रहा है। ऐसे ही प्रमुख आलोचकों में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं गोपाल राय।

गोपाल राय का स्थान कथालोचना के क्षेत्र में महत्वपूर्ण मना जाता है। उन्होंने अपने आलोचना कर्म से हिंदी आलोचना को नया आयाम दिया है। ‘समीक्षा’ पत्रिका के माध्यम से साहित्यिक कृतियों की आलोचना कर कई महत्वपूर्ण रचनाओं और रचनाकारों का पाठक वर्ग से परिचय करवाया है। कथा साहित्य की आलोचना करते

हुए कई सारे उपन्यास और कहानियों की आलोचना कर उनकी सही पहचान पाठक वर्ग को कराई हैं। इन्होंने समकालीन साहित्य के साथ एक न्यायपूर्ण संबंध स्थापित किया हैं।

साहित्य के द्वारा ही समाज को अनुभूत किया जा सकता है। समाज का यथार्थ चेहरा एक साहित्यकार अपनी कृतियों के माध्यम से प्रस्तुत करता है। समाज के प्रति हर आलोचक और साहित्यकार के अपने अलग विचार होते हैं। हर कोई अपने-अपने दृष्टिकोण से समाज को देखता है और साहित्य का निर्माण करता है। गोपाल राय का साहित्य एवं उनकी आलोचनाएँ पढ़ने पर ऐसा ज्ञात होता है कि उन्होंने किसी विचारधारा के प्रवाह में बहकर इतिहास और आलोचना नहीं लिखी बल्कि समाज और साहित्य के प्रति इनकी सोच, समझने का ढंग, विचार और रचनात्मक स्वभाव स्वतंत्र और प्रमाणिक है।

गोपाल राय ने अनेक आलोचनात्मक ग्रंथों की रचना की हैं और 'समीक्षा' पत्रिका का सम्पादन कर अनेक कृतियों की आलोचनाएँ की है। परंतु उपन्यास आलोचक और इतिहासकार के रूप में उन्हें अधिक ख्याति मिली है। वे आलोचना की ओर इसलिए प्रवृत्त हुए कि साहित्य में सच की बात को जोर देकर कह सके। उनका आलोचना कर्म वस्तुपरक और विश्वसनीय है। वे एक तटस्थ आलोचक माने जाते हैं। उनकी आलोचना दृष्टि का एक पक्ष यह भी है कि उन्होंने राजनैतिक, सामाजिक और साहित्यिक घटनाओं का और परिवेशों का ब्यौरा बेहद सूक्ष्मता से दिया है।

गोपाल राय को केवल कहानी और उपन्यास का आलोचक माना जाए ऐसा नहीं है, उन्होंने हिंदी भाषा और विमर्शों पर भी लगातार अपनी कलम चलाई। 'अपभ्रंस और हिंदी समस्या', 'नवजागरण', 'हिंदी की बोलियों की समस्याएँ', 'हिंदी उर्दू विवाद' आदि विषयों पर उनका लेखन कार्य सराहनीय है।

गोपाल राय के साहित्यिक व्यक्तित्व का दूसरा पक्ष यह है कि वे एक कुशल सम्पादक भी है। वे लग भाग चार दशकों तक 'समीक्षा' पत्रिका के सम्पादक रहे। इस पत्रिका का प्रवेशांक जुलाई 1967 में प्रकाशित हुआ। गोपाल राय के संपादकत्व में हिंदी साहित्य में केवल रचनाओं की समीक्षा को आधार मानकर निकलने वाली पहली पत्रिका है। गोपाल राय के योगदान से 'समीक्षा' के प्रथम वर्ष की समाप्ति पर ही 45 उपन्यासों, 18 कहानी-संग्रहों, 37 कविता-पुस्तकों, 5 नाटकों, 30 आलोचना ग्रंथों तथा 45 विविध विषयों के पुस्तकों की समीक्षाएँ प्रकाशित हो चुकी थी। गोपाल राय ने 'समीक्षा' के इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए बहुत संघर्ष किया। 'समीक्षा' पत्रिका द्वारा ही उन्होंने पाठक वर्ग को कई उपन्यासों और कहानियों से परिचित कराया। वे बहुत निष्पक्ष, परिश्रम और कर्तव्यनिष्ठ संपादक के रूप में बहुत लम्बे समय तक 'समीक्षा' पत्रिका संपादन करते रहे।

हिंदी आलोचना का इतिहास रीतिकाल से थोड़ा पहले शुरू होता है। ऐसा माना जाता है कि 'हिततरंगिणी' के लेखक कृपाराम हिंदी के पहले काव्यशास्त्री थे। लेकिन हिंदी में 'काव्य रीति' का सम्यक समावेश सबसे पहले आचार्य केशव ने ही किया, जिसका अनुकरण परवर्ती रीतिकालीन आचार्यों और लक्षणकारों ने किया। हिंदी में वार्ता-ग्रंथों, भक्तमालों और उनके टीका-ग्रंथों के रूप में आलोचना की जो प्राचीन परंपरा मिलती है, वह निःसंदेह हिंदी आलोचना का प्रवेश द्वार है। लेकिन आचार्यत्व और कवित्व के एकीकरण के इस दौर में आलोचना लक्षण, उदाहरण और टीकाओं तक ही सीमित थी। साहित्य में हिंदी आलोचना के विकास को विभिन्न अवस्थाओं के माध्यम से दर्शाया जाता रहा है।

भारतेन्दु-काल हिंदी आलोचना का पुनर्जागरण काल कहा जाता है। गद्य के विकास का प्रारम्भिक काल होने के कारण इस युग की हिंदी आलोचना भाषा आदि की दृष्टि से इतनी परिनिष्ठित और प्राणवती नहीं थी। इस काल के साहित्यकारों ने विकास मार्ग की ओर प्रवृत्त किया। अत: गद्य की अन्य विधाओं के समान इस काल को हम हिंदी आलोचना का प्रवर्त्तन काल भी कह सकते हैं। भारतेन्दु-युग की आलोचना पद्धति की प्रमुख विशेषता यह है कि उसने अपने आपको प्राचीन परम्परा से भिन्न करते हुए संस्कृत साहित्य-समीक्षा एवं पाश्चात्य समीक्षा पद्धति के साथ समन्वित करने का प्रयत्न किया। अर्थात भारतेन्दु-युग के आलोचनात्मक लेखों में पाश्चात्य एवं संस्कृत समीक्षा-पद्धति दोनों के सिद्धांतों का समन्वय दिखायी देता है।

द्विवेदी-युग में हिंदी-आलोचना का व्यापक विकास एवं प्रभूत उत्कर्ष हुआ। इस युग की सबसे बड़ी उपलब्धि संस्कृत समीक्षा सिद्धान्तों का पुनराख्यान करके तथा पाश्चात्य समीक्षा सिद्धांतों को भारतीय संस्कारों के अनुकूल ढालकर, दोनों के समन्वित आधार पर हिंदी के लिए उचित शास्त्रीय समीक्षा सिद्धांतों का निर्माण माना जा सकता है। साथ ही इन सिद्धांतों का उचित उपयोग करते हुए व्यावहारिक समीक्षा की व्याख्यात्मक पद्धति के विकास को इस युग की दूसरी महती उपलब्धि मान सकते हैं। इनके अतिरिक्त इस युग एक बहुत बड़ी उपलब्धि है कृतियों के मूल्यांकन में सामाजिक मूल्यों को महत्व देने की परम्परा का विकास। यह परम्परा भारतेन्दु-युग में प्रारम्भ हुई थी।

भारतेन्दु-युग के लेखकों ने आलोचना की जिस परम्परा को जन्म दिया और महावीर प्रसाद द्विवेदी ने जिसका विकास किया, उसकी चरम परिणति आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी की आलोचना में हुई। शुक्लजी ने कविता को अपेक्षाकृत बृहतर व उदात्त भूमि पर प्रतिष्ठित किया। व्यावहारिक समीक्षा की दृष्टि से उनकी कुछ कृतियाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। तुलसीदास, सूरदास, जायसी इत्यादि के ग्रन्थों की

समीक्षाएँ एवं भूमिकाएँ व्यावहारिक समीक्षा की दृष्टि से हिंदी समीक्षा-साहित्य में अपना स्थान बना चुकी है तथा भावी आलोचकों के लिए वे प्रेरणा की स्रोत बनीं। आचार्य शुक्ल की समीक्षा पद्धति में पाश्चात्य वैज्ञानिकता अर्थात् काव्य के विश्लेषण, प्रयोजन, व्याख्या, स्पष्टता, गंभीरता आदि गुण दिखलाई पड़ते हैं। आचार्य शुक्ल की दृष्टि संस्कृत जीवन से असंपृक्त कलावाद पर उन्होंने भरपूर आक्रमण किये। समय-समय पर यूरोप से उठने वाले साहित्यिक-कलात्मक फैशनों के प्रति उनकी रूचि कभी नहीं रही। शुक्लजी का सम्पूर्ण चिंतन उनकी प्रोढ़ता, अध्ययन, सूक्ष्म विश्लेषण-विवेचन तथा मनन का ही परिणाम है। शुक्ल जी की स्थापनाएँ सुचिंत्य है। शुक्ल जी ने जो भी सोचा, वह गहन और वर्षों के अध्ययन-मननके बाद सिद्धान्त रूप में स्थापित किया। शुक्लजी से बिना टकराये हिंदी समीक्षा के क्षेत्र से निकला नहीं जा सकता।

शुक्लोत्तर हिंदी आलोचना का विकास शुक्ल जी मान्यताओं के साथ टकराहट के साथ शुरू हुआ। टकराने वालों में छायावाद के प्रति सहानुभूति रखनेवाले रचनाकार और समीक्षक थे। हिंदी अलोचना को जो प्रौढ़ता और सुव्यवस्था आचार्य शुक्ल ने प्रदान की थी, उसे आगे ले जाने का चुनौतीपूर्ण कार्य नन्द दुलारे वाजपेयी, हजारी प्रसाद द्विवेदी और डॉ. नगेन्द्र की महान त्रयी ने किया। ये तीनों अलग-अलग विषयों पर शुक्ल जी से टकराये भी।

समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र, और राजनीति के क्षेत्र में जो कुछ मार्क्सवाद है, साहित्य में वही प्रगतिवाद है। संकुचित और साम्प्रदायिक अर्थ में मार्क्सवादी जीवन-दर्शन के आधार पर साहित्य की श्रेष्ठता, उपादेयता और स्थायित्व का मूल्यांकन करना प्रगतिवादी समीक्षा हैं। मार्क्सवादी समीक्षा-पद्धतिका प्रादुर्भाव वस्तुत: रूप-पक्ष पर विशेष रूप से अवलम्बित स्वच्छन्दतावादी समीक्षा-पद्धति के विरोध में हुआ है।

स्वच्छंदतावादी समीक्षा-पद्धति के मूल में व्यक्ति-विकास की भावना से अनुप्राणित जीवन-दृष्टि समाहित है। जबकि मार्क्सवादी समीक्षा-पद्धति के मूल में समाज-चिंतन एवं व्यापकता का अभाव है। पर विश्लेषण क्षमता तथा साहित्य को समाज के परिप्रेक्ष्य में देखने की दृष्टि है।

प्रयोगवाद का प्रारंभ 'तारसप्तक' (1943) से माना जाता है। इसके उन्मेषकाल में आलोचकों के पास कुछ ठोस एवं दृढ़ विचारधारा न होने के कारण वे मात्र शिल्पक तथा मार्ग-अन्वेषक कहलाये। वे कवि इस युग की काव्य-प्रवृत्ति के आलोचक है, जो इस प्रवृत्ति को छायावादी प्रवृत्ति से श्रेष्ठ मानते हैं। प्रयोगवादी कवि एवं आलोचक जीवन में प्रयोग को महत्व देते हुए प्राचीन रूढ़िवादी परम्पराओं को तोड़ना चाहते हैं। उनके अनुसार, छायावाद और प्रयोगवाद अब पुराने हो चुके हैं। इन वादों के काव्य-प्रतिमान भी घिसे-पिटे हैं। अत: ये कवि-आलोचक नवीन प्रयोग के हिमायती हैं। ये आलोचक स्वयं अपने समर्थन में तर्क प्रस्तुत करते हैं, किन्तु उनके विचारों में एकमानता का अभाव होने के कारण किसी तर्क के द्वारा उन्हें पुष्टि प्रदान करना असंभव सा प्रतीत होता है।

स्वतन्त्रयोत्तर हिंदी आलोचना बहुआयामी रही। डॉ. नन्ददुलारे वाजपेयी, डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी, डॉ. नगेन्द्र, डॉ. रामविलास शर्मा आदि आलोचक संक्रांति काल के समीक्षक रहे। हजारी प्रसाद जी का सांस्कृतिक मानवतावाद, आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी का सौन्दर्यवाद तथा सौष्ठववाद, डॉ. नगेन्द्र की मनोवैज्ञानिक पद्धति तथा भाषा शैली की सुस्पष्टता, डॉ. रामविलास शर्मा की मार्क्सवादी भारतीय दृष्टि आदि ने अपने युग पर व्यापक प्रभाव डाला। डॉ. द्विवेदी ने कबीर को मानवतावादी दृष्टि से

देखा और नवीन मूल्यांकन प्रस्तुत किए, तो नन्ददुलारे वाजपेयी ने प्रसाद के काव्य-सौन्दर्य को अपनी समीक्षा का आधार बनाया।

स्वच्छन्दतावाद एक ऐसा साहित्यिक आन्दोलन है, जिसने नये विज्ञान की यथार्थवादी मान्यताओं को आत्मस्त् करते हुए उसे मानवतावादी रूप दिया है। इस आन्दोलन ने भावुकतापूर्ण होने के कारण अत: संश्लिष्ट जीवन रचना-प्रणाली को जन्म दिया। इस गतिशील स्वच्छन्दतावादी आन्दोलनने तर्क के बल पर प्राचीन रूढ़िवादी परम्पराओं को समाप्त करके उनके स्थान पर भावात्मक ढंग से नवीन संस्कृति के पुनर्निर्माण का कार्य किया। स्वच्छन्दतावादी कवियों को युग के परम्परावादी विचारकों के प्रबल आघातों को सहन करते हुए अपना रास्ता बनाना पड़ा। अत: इनका मार्ग कांटों से भरा था। किन्तु इस युग के कवियों ने बड़े साहस के साथ बाधाओं को दूर कर अपना मार्ग प्रशस्त किया। हिंदी में इस महत्वपूर्ण काव्य-चिंतन की हल्की-फुल्की समीक्षाएँ तो दृष्टिगत हो जाती है, किन्तु सिधान्तों पर अधिक विचार नहीं हुआ।

समकालीन हिंदी आलोचना 'आलोचना' को भी रचना के रूप में देखे जाने की प्रस्तावना करती है। यह आलोचना में रचनात्मक के लिए पर्याप्त स्पेस की माँग करती है। अपनी राजनीतिक दृष्टि में यह अपनी पूर्वर्ती आलोचना से अधिक संतुलित दिखाई पड़ती है। इस दौर में कविता की आलोचना के साथ-साथ कथालोचना और नाट्यलोचना का भी विकास हुआ है। हिंदी आलोचना के समकालीन परिदृश्य में परम्परा संवाद की प्रवृत्ति भी बढ़ी है।

अंततः इस प्रकार हिंदी आलोचना भारतेंदु युग से लेकर समकालीन परिदृश्य तक एक निरंतर आरोही क्रम में विकसित होती रही है। आरंभिक दौर में जहाँ साहित्य के मानकीकरण और आलोचना की भाषा के निर्माण की चिंता केंद्र में थी, वहीं बीच के दौर में आलोचना विभिन्न गुटों में बटीं हुई। समकालीन दौर काफी हद तक हिंदी

आलोचना की परिपक्वता का दौर है। और आज आलोचना में विचार का आग्रह तो है पर वह विचारधारा के खूंटे में बंधी हुई नहीं है। वह न तो कला को ही साहित्य का पर्याय मान रहीं है, न तो वह रचना के रूप के प्रति पूर्णत: उदासीन है।

आलोचना की बात करते हैं तो कथा-साहित्य के आलोचकों में एक ऐसा श्रेष्ट आलोचक सामने आता है जिन्होंने हिंदी साहित्य को कुछ ऐसी आलोच्य कृतियां प्रदान की है जिसके तोड़ की रचनाएँ आलोचक नहीं कर पाये है वह आलोचक है 'गोपाल राय'। जिन्होंने हिंदी कथा-साहित्य को एक अलग ही नजरिए से देखा और उसकी व्याख्या भी एक अलग तरह से की। गोपाल राय के आलोचना कर्म में रचना का सत्य और उसकी अवधारणा अथवा उद्घाटन ही प्रमुख है। इसके पीछे उनकी यह दृष्टि थी की आलोचकीय तटस्थता, धैर्य और विवेक और वाद तथा विवाद संचालित आलोचना मूलतः आलोचना नहीं हैं। इसलिए उनके विविध पहलू हमारे सामाने प्रस्तुत होते हैं।

गोपाल राय के सम्पादकीय व्यक्तित्व के महत्व को दो कार्यो से देखा जा सकता है। पहला है तैमासिक पत्रिका 'समीक्षा', दूसरा है 'हिंदी साहित्याब्द कोश' और अन्य विषयों पर उनका संपादन कार्य। 'हिंदी साहित्याब्द कोश' में वस्तुत: एक वर्ष में प्रकाशित हिंदी रचनाओं का आलेखन और सिंहावलोकन करने का प्रयास किया था। गोपाल राय ने 'साहित्याब्द कोश' के अलावा और अन्य प्रमुख पुस्तकों का सम्पादन किया है। गोपाल राय 'समीक्षा पत्रिका' के संपादक थे और स्वामित्व आधिकार उन्हीं के पास था। ऐसा संपादक समाज का अगुआ होता है। वह अपने परिवेश के प्रति सहग रहता है। उसके लिए यह पद व्यापार, पेशा नहीं होता बल्कि नैतिक जिम्मेदारी है।

गोपाल राय अपने लेखन में आलोचना को बहुत महत्व देते हैं। साहित्यिक क्षेत्र में उनकी आलोचना अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान रखती है। जिस प्रकार उन्होंने हिंदी

उपन्यास या अन्य विधाओं की आलोचना की उसी प्रकार कहानियों से लेकर भी उनके लेखन में आलोचनात्मक दृष्टि पायी जाती है। उन्होंने हिंदी कहानी का इतिहास में कहानी लेखन को लेकर अपने विचार व्यक्त किया है। 'हिंदी कहानी का इतिहास' अब तक तीन भागों में विभाजित हैं। उन्होंने कहानी के इतिहास को बढे विस्तार से विश्लेषण करने की कोशिश की है। कहानी के इतिहास में गोपाल राय ने कहानी का उद्भव एवं विकास से लेकर अब तक की यात्रा और हिंदी कहानी शब्द से लेकर भाषा की संरचना तक को ध्यान में रखकर कहानियों की आलोचना की है।

गोपाल राय ने उपन्यासों की आलोचना कर अनेक उपन्यासों को हिंदी आलोचना में महत्वपूर्ण स्थान दिलाया है। गोपाल राय के विवेचन से किसी की असहमति हो सकती है पर ध्यान रहे कि किसी भी आलोचक या इतिहासकार की अपनी समझ, दृष्टि और विचारधारा होती है। अर्थो की सहमती असहमति की संभावना होते रहती है। गोपाल राय हिंदी कथा साहित्य पर एक लम्बे समय तक विचार करते रहे और हिंदी आलोचना के विकास को भी आगे ले जाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते रहे। उनकी कथालोचना से हम परिचित है, अब यहाँ उपन्यास के विषय से संबंधित उनकी आलोचना दृष्टि देखना संगत है। वैसे उन्होंने उपन्यासों को लेकर 'साहित्याब्द कोश' रचा और 'उपन्यास कोश' भी तैयार किया। इतना हीं नहीं बल्कि 'उपन्यास की संरचना' , 'हिंदी उपन्यास का इतिहास' और उपन्यासों से संबंधित स्वतंत्र आलोचनात्मक पुस्तकें लिखकर हिंदी कथालोचना में उल्लेखनीय योगदान दिया।

गोपाल राय हिंदी साहित्य में एक महत्वपूर्ण इतिहासकार और आलोचक के रूप में बड़ी पहचान बनायी है। क्योंकि उन्होंने समीक्षा पत्रिका का संपादन करते हुए पिछले बीस-तीस वर्षो से उनकी पहचान एक गंभीर आलोचक के रूप में बन गयी। उन्होंने हिंदी में कथा साहित्य का इतिहास बड़े ही सटीकता से साहित्य को दिया है।

ख़ास तौर पर हिंदी उपन्यास हिंदी कहानी की विस्तृत इतिहास सम्बंधित बड़ी महत्वपूर्ण किताबें हिंदी पाठाकों के लिए लिखी है।

गोपाल राय को गूढ़, गंभीर और आलोचनवादी प्रवृत्ति के व्यक्ति कहा जा सकता है। उन्हें परिपूर्ण रूप से उपन्यास के आलोचक माना जाता है। उन्होंने अपने विचार और चिंतनशीलता पर उपन्यास के आलोचना क्षेत्र में नया क्षितिज प्रदान किया। हिंदी उपन्यास आलोचना के मार्ग पर चलकर हिंदी उपन्यासों को नया मोड दिया। उपन्यास आलोचना के क्षेत्र में गोपाल राय का पदार्पण 1965 में हुआ। इनका प्रथम शोध प्रबंध 'हिंदी कथा साहित्य और उसके विकास पर पाठकों की रूचि का प्रभाव' ग्रंथ निकेतन, पटना से प्रकाशित हुआ। इस शोध प्रबंध उन्होंने हिंदी कथा साहित्य पर विचार करते हुए उपन्यास के विषय, भाषा और शिल्प पर अधिक ज़ोर दिया था।

गोपाल राय के शोध प्रबंध से लेकर अपनी पुस्तक 'हिंदी उपन्यास का इतिहास' तक का समय उनके शैशव से प्रौढ़ होने को दर्शाता है। इस समय काल में हुए परिवर्तनों में लगातार उन्होंने अपने आप को संतुलित किया है। 'हिंदी उपन्यास का इतिहास' में किया गया काल विभाजन गोपाल राय के उत्तरोत्तर प्रौढ़ होती आलोचकीय दृष्टि का परिचय देता है।

अपनी रचनात्मका को आगे बढ़ाते हुए गोपाल राय ने 'हिंदी उपन्यास कोश' का निर्माण किया जो दो खंडो में लिखा गया है। प्रथम खंड का प्रकाशन 1968 और द्वितीय खंड का प्रकाशन 1969 में हुआ। अपने इस उपन्यास कोश के पहले खंड में गोपाल राय ने 1870 से 1917 तक के उपन्यासों को एकीकृत किया तथा दूसरे खंड में 1918

से 1936 तक के उपन्यासों को। 'हिंदी उपन्यास कोश' लेखन का कार्य आज हिंदी साहित्य में सराहा जा रहा है। उनके द्वारा किया गया यह कार्य घास पर बिखरे ओस कण को सवारने सा है।

गोपाल राय ने पाश्चात्य संरचना के प्रभाव को हिंदी उपन्यास पर लागू करने का सफल प्रयास किया है। यहा पर वे किसी प्रकार की नकल करते हुए नहीं दिखते बल्कि पाश्चात्य की इस प्रविधि को वे तकनीक के साथ एक विशेष शैली में सामने रखते हैं। वे पाश्चात्य संरचना का प्रयोग करते हुए बड़ी खूबी से रचनाओं का मूल्यांकन करते हैं।

गोपाल राय सदा ही अपनी विशिष्ट आलोचकीय दृष्टि के लिए जाने जाते रहे है। इन्होंने हिंदी साहित्य की कालजयी कृतियों को चुनकर अपनी आलोचन के विविध गुणों को दर्शाया। 'गोदान, 'मैला आंचल, 'रंगभूमि, 'शेखर : एक जीवनी', 'दिव्या', 'महाभोज' आदि उपन्यासों पर स्वतंत्र आलोचना करते हुए गोपाल राय ने उपन्यासों में स्थित शिल्प के को पूरा न्याय दिया है। वे उपन्यास विश्लेषण की प्रक्रिया में कथ्य वैविध्य, चरित्र, शिल्प और भाषा को महत्वपूर्ण मानते हैं।

गोपाल राय केवल आलोचना करने हेतु आलोचना के रणक्षेत्र में नहीं उतरे थे। उन्होंने अपने नये मानदंड, नई विचार दृष्टि के साथ उपन्यास के नये क्षेत्र को चुना था। इसका परिचय उनके 'हिंदी उपन्यास का इतिहास' पुस्तक में मिलता है। केवल 'उपन्यास' शब्द को लेकर उनकी गंभीर शोध दृष्टि को महसूस किया जा सकता है।

गोपाल राय प्रमुख रूप से उपन्यास के आलोचक है, उन्होंने अपने शोध दृष्टि से उपन्यास आलोचना को एक नई दिशा दी है। वे अकादमिक आलोचना क्षेत्र में गंभीर व्यक्तित्व थे, जिन्होंने तटस्थ होकर हिंदी उपन्यासों पर काम किया है। गोपाल राय ने

अपने इस शोध में हिंदी कथा साहित्य पर चर्चा करते हुए उपन्यासों के विषय, शिल्प और भाषा तीनों पर दृष्टि बनाये रखी है। 21 वीं सदी के साहित्य पर नज़र दी जाए तो अनगिनत आलोचक उपस्थित है जो आये दिन किसी न किसी विषय पर आलोचना करते हैं। लेकिन गौर किया जाये तो ऐसे कितने आलोचक है जिन्होंने 'आलोचना' के पथ को सही रूप में आगे बढाया है। लेकिन गोपाल राय ने तटस्थ होकर आलोचना को आगे बढाने का कार्य किया है।

सर्वमान्य है कि भाषा अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है। भाषा द्वारा ही व्यक्ति अपनी अभिव्यक्ति को अन्य तक पहुँचाता है। किसी कवि की सार्थकता को परखने हेतु उसकी काव्यानुभूतियों को परखा जाता है, जबकि आलोचना के कर्म की विश्वनीयता, विचारशीलता और उसकी गहनता के लिए आलोचक की भाषा को मापा जाता है। अतः किसी साहित्यिक कृति की भाषा की तरह आलोचना की भाषा में भी शब्द और अर्थ का संबंध गहरा होना आवश्यक है।

शब्दों के योग्य मेल से ही भाषा की उत्पत्ति होती है और किसी विषय को पूर्णत्व की और ले जाया जा सकता है। शब्द भाषा का विशिष्ट अंग माने जाते हैं। इसलिए आलोचना में शब्दों का विशिष्ट ध्यान रखा जाता है। गोपाल राय अपनी आलोचना में शब्दों के प्रति हमेशा सजग दिखाई देते हैं। अपनी कृतियों में वे शब्दों का प्रयोग बड़ी बारीकियों से करते हैं, जिस कारण उनकी भाषा शैली में गहनता दृष्टिगत होती है।

गोपाल राय उन आलोचकों में से हैं जिन्होंने आलोचना के माध्यम से जनता के यथार्थ पर रचित साहित्य का मूल्यांकन जनता की भाषा में किया है। भाषा के संदर्भ में गोपाल राय की केवल एक मात्र मौलिक कृति 'हिंदी भाषा का इतिहास' उपलब्ध होती है। जिसमें वे हिंदी भाषा के इतिहास को उजागर करते हुए नजर आते हैं। इसके

अतिरिक्त वे अपनी लिखित एवं वाचिक आलोचना में कई नये प्रतिमानों की सृष्टि करते हैं।

गोपाल राय की आलोचनात्मक कृतियों को पढ़ने के बाद ज्ञात होता है कि वे भाषा को सहज उत्पन्न नहीं मानते, वह अथाह संघर्षों से निर्मित होती है। वे भाषा को अन्य आलोचकों की भाँति सरल किन्तु गूढ़ न बनाते हुए आलोचना में नये आदर्शों को स्थापित करने के आकांक्षी है। गोपाल राय ने हमेशा अपनी भाषा का स्वरूप सामने प्रस्तुत आलोच्य कृति को देखकर निर्धारित किया है। वैसे तो सरलता उनकी भाषा की प्रमुख विशेषता है किन्तु जहाँ आलोच्य कृति के तेवर दिखाई देते हैं वहाँ वे तीखे प्रहार करने से नहीं चूकते।

गोपाल राय को भाषा के गिरते स्तर पर चिंता रही है। इसलिए वे शास्त्रीयता के बंधन से भाषा को मुक्त करना चाहते हैं। उनकी रचनाओं को पढ़ने से ज्ञात होता है कि वे कहीं न कहीं संकेतात्मक रूप में भाषा की जकड़न को तोड़ना चाहते हैं जिससे आलोचना सदा पठनीय बनी रहे। गोपाल राय की भाषा लोकजीवन से स्वयं को समृद्ध करती है। उनकी आलोचनात्मक कृतियों में लोकनुभव की भाषा का उत्तम उदाहरण देखा जा सकता है। लोकोक्तियों और मुहावरों का प्रयोग इनकी रचनाओं में कम दिखाई देता है किन्तु वे भाषा के संदर्भ में इनकी महत्ता को स्वीकारते हैं।

अंत कहा जा सकता है कि गोपाल राय की आलोचना विवेकसम्मत बुद्धि पर आधारित है। गहन अध्ययन और चिंतनशीलता उनकी आलोचना को प्रखर बनाते हैं। उनके द्वारा की गई कथालोचना और उपन्यास की आलोचना से पाठक, अध्यापक तथा शोधार्थी वर्ग सदा लाभान्वित होता रहेगा। साहित्यिक क्षेत्र में उनकी आलोचनात्मक कृतियाँ सृजनात्मक आयामों को खोलने और निरंतर संवाद बनाए रखने का प्रयास करती रहेंगी। उनकी भाषा में सौज्वलता, प्रभावमयता और आत्मीयता दिखाई देती है वह उन्हें अन्य आलोचकों से अलग करती है।

-: परिशिष्ट :-
गोपाल राय जी का साक्षात्कार

परिशिष्ट

गोपाल राय का साक्षात्कार

हिंदी उपन्यास एवं कहानी के इतिहासकार, संपादक और आलोचक के रूप में विख्यात डॉ. गोपाल राय साहित्य क्षेत्र में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। इनके जैसी दूरदृष्टि रखानेवाले आलोचक बहुत कम है। मैं पी. जयसिंह, अपने आप को सौभाग्यशालि समझता हूँ कि मुझे ऐसे दूरदृष्टा, गंभीर, चिंतनशील आलोचक का साक्षात्कार लेने का मौका मिला। मैंने अपना एम. फिल का शोधकार्य “हिंदी आलोचना के विकास में ‘समीक्षा’ पत्रिका का योगदान” इस विषय पर किया है। पीएच. डी के लिए मैंने “गोपाल राय का आलोचना कर्म” विषय का चयन किया। विषय के अनुसार मैं डॉ. गोपाल राय जी का साक्षात्कार लेने के लिए बहुत दिनों से उत्सुक था, लेकिन अपने एम. फिल. दौरान कुछ कारणों से मैं उनका साक्षात्कार लेने के लिए दिल्ली नहीं जा सका। पीएच. डी. शोधार्थी के रूप में नियुक्ति के बाद सौभाग्यवश मुझे प्रो. आलोक पाण्डेय सर के निर्देशन में “गोपाल राय का आलोचना कर्म” इस विषय पर शोधकार्य करने का अवसर प्राप्त हुआ। इस शोधकार्य दौरान मेरे शोधनिर्देशक प्रो. आलोक पाण्डेय सर मुझे बार-बार प्रोत्साहित करते रहें कि शोध विषय के अनुरूप डॉ. गोपाल राय जी के साथ आपकी मुलाखात आवश्यक है। अपने गुरूवर्य के प्रोत्साहन से प्रेरित होकर मैंने प्रसिद्ध आलोचक गोपाल राय जी का साक्षात्कार लेने के लिए तैयारी शुरू कर दी। गोपाल राय जी से मिलने के लिए मैंने उनके पुत्र प्रो. सत्यकाम से फ़ोन पर बात की और अपना परिचय दिया। वार्तालाप के दौरान उन्होंने मेरे शोध विषय को लेकर काफी गहराई से चर्चा की और सहमति दर्शाते हुए गोपाल राय जी से मिलने की अनुमति प्रदान की। शायद आप सोच रहे होंगे कि गोपाल राय जी से मिलने के लिए उनके पुत्र प्रो. सत्यकाम जी से अनुमति क्यों चाहिए? वर्ष 2015 का समय गोपाल राय जी के लिए काफी विकट था। वृद्धावस्था के कारण उनकी तबीयत दिन-पर-दिन बिगड़ते जा

रही थी। ऐसे में प्रो. सत्यकाम ही उनका ख़याल रखते थे। उन्हें कोई परेशानी न हो इस बात को लेकर वे बड़े सजग थे। इसी कारण उनकी अनुमति मेरे लिए महत्वपूर्ण थी। उस समय दिल्ली में विभिन्न प्रकाशनों द्वारा पुस्तक मेले का आयोजन (15 फ़रवरी से 19 फ़रवरी 2015 के बिच) किया गया था और इसी समय मैं दिल्ली पहुँचा। यह वह समय था जब मुझे गोपाल राय जी से मिलने का सुअवसर प्राप्त हुआ।

18 फ़रवरी 2015 की शाम, लगभग 7 बजे मैं उनके इग्नू परिसर में स्थित आवास पर पहुँचा। डॉ. गोपाल राय जी यहीं अपने पुत्र प्रो. सत्यकाम के साथ रहते थे। मैं अत्यंत हर्षित था। मैंने प्रो. सत्यकाम जी से वार्तालाप करते हुए अपना परिचय दिया और शोध विषय की गहराई के बारे में बताया। मैं मन-ही-मन अत्यंत आनंदित था कि आखिरकार मैं गोपाल राय जी के घर पहुँच गया। प्रो. सत्यकाम जी ने मेरे शोध विषय के संबंध में कुछ समय तक बात की, शोध विषय में कुछ सुधार किया और विषय से सम्बंधित कुछ उचित सलाह दी।

गोपाल राय वरिष्ठ आलोचक और 'समीक्षा' पत्रिका के संस्थापक एवं संपादक रहे थे। वे कई सारी महत्वपूर्ण आलोचनात्मक पुस्तकें लिख चुके है परन्तु 2002 में प्रकाशित 'हिंदी उपन्यास का इतिहास', हिंदी कहानियों का इतिहास' (अब तक तीन भागों में प्रकाशित) आलोचना क्षेत्र में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। इसके अलावा उनका 'उपन्यास कोश', 'साहित्याब्द कोश' आदि पुस्तके अत्यंत महत्वपूर्ण मानी जाती है।

मैं:- साहित्य की अन्य कई सारी विधाओं को छोड़कर आपने आलोचना की ओर अपना ध्यान केन्द्रित क्यों किया इसकी कोई खास वजह थी?

गोपाल राय:- इस क्षेत्र में आने की यह वजह रही कि मेरा अध्यापन करना और आलोचना के प्रति मेरी रूचि। मैंने जब एम.ए के छात्रों को पढ़ाना शुरू किया तब से ही कुछ न कुछ लिखता रहा। पढ़ते-पढ़ाते समय मेरी जिज्ञासा बढ़ती रहती थी इसलिए मै लिखता रहता था। आलोचना के क्षेत्र में आने की वजह मेरे छात्र भी रहे, क्योंकि उनकों बेहतर से बेहतर ज्ञान देने के लिए मैं हमेशा ललायित रहता था। और मैंने जितनी भी पुस्तकें लिखी वे अपने छात्रों के लिए, शोधर्थियों के लिए और अध्यापकों के लिए लिखी है। विद्वानों के लिए मेरी पुस्तकें नहीं है और न ही मैं अपने आपकों विद्वान मानता हूँ। मेरा मूल उद्देश यह था और है कि मैं लोगों को उन पहलुओं से परिचत कराऊँ जिनसे वह अनभिज्ञ है जैसे 'उपन्यास की संरचना' पर पुस्तक इसलिए लिखी कि उस समय संरचना का सही अर्थ कोई नहीं जानता था। हमने इस पुस्तक में उसके अर्थ को समझने की ही कोशिश की ताकि विद्यार्थी सही रूप में उपन्यास और उससे जुड़े पहलुओं को समझ पाएँ। आज तक हमने जितनी पुस्तकें लिखी हैं उन्हें विद्यार्थी आज भी पढ़ते हैं। अब मुझे लगता है अपना काम कर दिया अब आप उसका खंडन करे या इस परंपरा को आगे बढ़ाएं।

मैं:- एक आलोचक के रूप में आज आप काफी प्रसिद्ध है आपकों किस आलोचक ने प्रभावित किया?

गोपाल राय:- आज का आलोचक अध्ययन कम करता है, पढ़ता कम है, लेकिन उसमें अपने आपकों प्रतिष्ठित करने की चाह अधिक होती हैं। आज के आलोचक किसी पहलू पर सोचे बिना, उसे समझे बिना जल्दी आलोचना लिख लेना चाहता है। वह चाहता है

कि आलोचना के जरिये उसका नाम हो जायेगा। आज के आलोचक परिश्रम करके किसी विषय का सारतत्व खोजने का प्रयास नहीं करतें। आज की आलोचना में विश्वसनीयता नहीं हैं इसलिए आज की आलोचना का स्वरूप एकपक्षीय हो गया। लेकिन हमने जितना भी आलोचना का काम किया है वो सब तटस्थ होकर किया। आलोचक बनने लिए आलोचक नलिन विलोचन शर्मा, आचार्य देवेन्द्रनाथ शार्म और आर. के. सिन्हा इन विद्वानों का प्रोत्साहन आधिक मिला और मैं धीरे-धीरे अन्य विषयों पर आलोचना कर एक आलोचक के रूप में विख्याता बन गया। सन् 1967 में 'समीक्षा' पत्रिका का प्रकाशन कर लगभग तीस-चालीस वर्षों तक आलोचना के कार्य को आगे बढ़ाते रहे हैं।

मैं:- आपने कई सारे आलोचनात्मक ग्रन्थ लिखे आप अपनी ही लिखी हुई सबसे महत्वपूर्ण किताब का नाम लेना चाहेंगे तो वह कौनसी होगी?

गोपाल राय:- हमने कई सारे आलोचनात्मक ग्रन्थ लिखे है और कई पुस्तक समीक्षाएँ भी की। जब मैं पटना विश्वविद्यालय में अध्ययन कार्य कर रहा था तब 'हिंदी साहित्याब्द कोश' लिखा। उस समय इस कोश को छापने को कोई भी प्रकाशन तैयार नहीं था। उस समय पटना में इतनी आसानी से प्रकाशक मिलते नहीं थे और मैं दिल्ली में नहीं था। इसलिए हमने स्वयं ही अपना 'ग्रन्थ निकेतन' नामक प्रकाशन खोलकर इस ग्रन्थ को प्रकाशित कराया और एक महत्वपूर्ण पुस्तक से साहित्य के लोग परिचित हो सके। इस तरह हमने लेखन को आगे बढ़ाया और मैं मानता हूँ कि 'उपन्यास का इतिहास', 'हिंदी उपन्यास कोश' आदि रचनाएँ हिंदी साहित्य के छात्रों, शोधार्थियों और लेखकों के लिए बहुत महत्वपूर्ण किताबे मानी जाती है।

मैं:- आप किस विचार धारा से प्रभावित हैं?

गोपाल राय:- कोई भी आलोचक, लेखक रचनाओं के मूल्यांकन में अपने चुनाव से अपनी विचारधारा का संकेत देता है, लेकिन मैं स्वतंत्र विचारक के रूप में अपनी आलोचनाएँ की है। मैं किसी विचारधारा के साथ प्रतिबद्ध नहीं हूँ। मैं हमेशा मानवता का पक्षधर ही रहा, इसलिए हमने साहित्य का इतिहास, आलोचनाएँ, समीक्षाएँ लिखी। उन सभी रचनाओं में केवल मानवता का पक्ष लिया है और मैंने किसी लेखक की आलोचना उनकी कृतियों के आधार पर नहीं की, उनके हिंदी विचारों के आधार पर की है।

मैं:- 'समीक्षा' पत्रिका निकालने की प्रेरणा आपको कहा से प्राप्त हुई?

गोपाल राय:- 'समीक्षा' पत्रिका निकालने का श्रेय उस समय अंग्रेजी में पुस्तक समीक्षा को धेय बनाकर 'दि-रिव्यू' (The Review) नामक पत्रिका निकलती थी। तब मैंने यह निर्णय लिया कि हिंदी में भी एक सुब्ध समीक्षा की पत्रिका हो, जो केवल पुस्तक समीक्षा का विवेचन करे। इस विषय से सम्बंधित मेरे मित्र अंग्रेजी के प्रोफ़ेसर रामचरण प्रसाद की सहायता ली और सन् 1967 जुलाई से यह पत्रिका निकालनी शुरू कर दी। इस पत्रिका को शुरू करने में मुझे आचार्य देवेन्द्रनाथ शार्म से किस तरह तैयार करना चाहिए और इसका स्वरूप किस प्रकार का होना चाहिए आदि बातों पर बहुत सहयोग मिला। इतना ही नहीं बल्कि उन्होंने प्रधान संपादक का दायित्व भी संभाला था। इस प्रकार हमने 'समीक्षा' पत्रिका निकालना शुरू कर दिया और इस पत्रिका को आगे बढ़ाया, उतना ही नहीं बहुत लम्बे समय तक बड़ी तटस्थता के साथ संपादन किया।

अब इस पत्रिका की उम्र लगभग चालीस, पचास वर्ष हो रही है इससे बड़ी ख़ुशी क्या चाहिए और अब पिछले कुछ वर्षो से 'समीक्षा' पत्रिका का संपादन प्रो.सत्यकाम जी कर रहे हैं।

मैं:- 'समीक्षा' पत्रिका जिसके आप संपादक रह चुके है, क्या अब इस पत्रिका के प्रारूप में, आकार में कुछ बदलाव हुआ या नहीं?

गोपाल राय:- हमारे संपादन में 'समीक्षा पत्रिका' का प्रकाशन शुरू हुआ था तब कई तरह की मुश्किलों का सामना करना पढ़ा था। क्योंकि उस समय पत्रिका निकालना उतना आसान कार्य नहीं था। जब 'समीक्षा' पत्रिका का प्रकाशन शुरू हुआ था तब अनेक समस्याओं का सामना करना पढ़ा था। जैसे कि आर्थिक समस्या और भी कई समस्याओं का सामना करना पढ़ा। लेकिन मैं मानता हूँ कि अब इस पत्रिका को कोई समस्याएँ नहीं है और कह सकता हूँ की अब इस पत्रिका के प्रारूप, आकार आदि में काफी बदलाव हुआ है। हमारे संपादन के समय 'समीक्षा' को एक परिवार बनकर प्रकाशित कर रहे थे। लेकिन अब इस पत्रिका में जाने-माने लोग भी लिखते और नये लोग भी लिखते हैं तो इसका प्रारूप पहले से अब बिल्कुल अलग है। अब इस पत्रिका का क्षेत्र काफी व्यापक हो चुका है, और यह कह सकता हूँ कि हर इंसान का अपना एक नजरिया होता है और उसके आधार पर ही वह अपने प्रत्येक काम को अंजाम देता है। इसलिए हमारे संपादन के समय में और अब के संपादन में काफी अंतर है यहाँ तुलना करना उचित नहीं होगा। अब मेरे पुत्र प्रो. सत्यकाम अपनी तरफ से इस पत्रिका का संपादन कर उसे बेहतरीन ढंग से निकालने की पूरी कोशिश कर रहे हैं।

मैं:- आज आलोचना का अर्थ एक-दुसरे पर दोषारोपण करना हो गया है, आज के आलोचक अपने आपको स्वयं आलोचक मानते हैं। इस दृष्टी से आलोचना के भविष्य को आप किस प्रकार देखेंगे?

गोपाल राय:- आलोचना का भविष्य बताना बहुत कठिन है। आज के आलोचक एक-दूसरे पर केवल आरोप लगा रहे हैं, यह बात बिल्कुल सही है। आज कोई भी व्यक्ति एक या दो आलोचनाएँ लिखकर अपने आपको बड़ा आलोचक समझने लगता है। किसी पर कीचड़ उछाल देना और किसी कृति की झूठी तारीफ कर देना आज आलोचना के क्षेत्र में यह सब हो रहा है। जब की आलोचना का मापदंड ये सब दिखावा करना नहीं है। अगर एक अच्छी और सही आलोचना पुरानी विचारधाराओं से टकराती है और नये विचारों को स्थापित करती है, एक नया विजन प्रदान करती है, इस नजरिए को ध्यान में रखकर आलोचना करेंगे तो ये एक विधा के रूप में अपने स्थान पर बनी रहेगी नहीं तो जिस तरह के हालत है उनसे तो दिख ही रहा है कि आलोचना का भविष्य खतरे में हैं।

मैं:- आपने कथा साहित्य की आलोचना की है कविता और नाटक आपसे क्यों अछूते रहे, जबकि कविता को तो कूछ आलोचक साहित्य की आत्मा मानते हैं?

गोपाल राय:- कथा साहित्य की आलोचना की ओर आना मेरा सौभग्य था। कथा साहित्य की आलोचना में आने की खास वजह मेरा अध्ययन करना। और नलिन विलोचन शार्म के निर्देशन में डी.लिट् की उपाधि के लिए मेरे शोध विषय का 'कथा साहित्य' से संबंधित रहना, यह भी एक वजह रही है। इतना ही नहीं मैं एम. ए. के विद्यार्थियों को पढ़ाते-पढ़ाते कुछ न कछ लिख देता था। इस प्रकार हमने कथा साहित्य की आलोचना को अपना विषय बना लिया। हमने शुरू में कुछ कविता, नाटक पर भी

आलोचनाएँ लिखी जैसे कि केदारनाथ सिंह की कविता 'बाघ', इस तरह और अन्य विषयों पर भी लिखा लेकिन धीरे-धीरे मेरी रुचि कविता, नाटक न होकर कथा साहित्य से अधिक प्रभावित हुई। कविता को कुछ आलोचक साहित्य की आत्मा मानते हैं और मैं भी मानता हूँ। लेकिन कोई भी आलोचक हो या लेखक साहित्य की सारे विषयों पर अपना लेखन कार्य नहीं करता क्योंकि उसे जिस विषय में अधिक रूचि हो वह उस विषय पर अधिक काम कर लेता है।

मैं:- 'हिंदी साहित्याब्द कोश' को 14 खंडों में प्रकाशित करने के लिए आपको प्रेरणा कहाँ से मिली हैं?

गोपाल राय:- 'हिंदी साहित्याब्द कोश' विद्यार्थियों, शोधर्थिओं और लेखकों के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण कोश है। इस में 14 साल के साहित्य का पूरा वर्णन मिलता है। मैंने पहले भी कहा कि एक अध्यापक समाज को ज्यादा से ज्यादा ज्ञान देना चाहता है यही धारण इस कोश को निकालने के पीछे रही। इस कोश को कोई भी प्रकाशक उस समय छापने के लिए तैयार नहीं था उस समय पटना में इतनी आसानी से प्रकाशक नहीं मिलते थे और उस वक्त मैं दिल्ली में था नहीं। इस लिए हमने खुद ही पटना में 'ग्रंथ निकेतन' नामक प्रकाशन खोलकर इस ग्रन्थ को प्रकशित करवाया ताकि एक महत्वपूर्ण पुस्तक से साहित्य के लोग परिचित हो सके। अगर आप में किसी भी कार्य को संपन्न करने की इच्छा है तो उसके लिए प्रेरणा अपने आप ही मिल जाती है, जैसे कि मुझे मिली।

मैं:- 'परीक्षा गुरु' को हिंदी का पहला उपन्यास माना जाता है परन्तु आपने 'देवरानी-जेठानी की कहानी' को हिंदी का पहला उपन्यास माना है। इस विचारधारा को स्थापित करने के पीछे कौन सा कारण था?

गोपाल राय:- हमने उपन्यास की कुछ परिभाषाएँ तय की और उन परिभाषाओं की सबसे पहली विशेषताएँ यह थी की उपन्यास की कथा मौलिक होनी चाहिए। 'देवरानी-जेठानी की कहानी' एक मौलिक कहानी थी। उस समय कथाओं में समकालीन जीवन का भी चित्रण नहीं होता था। उस समय अधिकतर कथाएँ राजा-रानियों से सबंध में रची जाती थी। लेकिन 'देवरानी-जेठानी की कहानी' समकालीन जीवन को कथा का आधार बनाकर प्रकाशित हुई थी। इसके अलावा इस कथा की भाषा सहज एवं सरल खड़ी बोली थी, यह कह सकते हैं की उसमे यथार्थ का वातावरण बनता था।

मैं:- गोपाल राय जी आपके सहयोग और मार्गदर्शन से मैं बहुत लाभान्वित हुआ हूँ। मैं सदैव आपका आभारी रहूँगा। धन्यवाद।

गोपाल राय:- धन्यवाद।

-: संदर्भ ग्रंथ सूची :-

संदर्भ ग्रंथ सूची

आधार ग्रंथ सूची :-

(उपन्यास की पहचान, श्रृंखला के अंतर्गत)

1. अज्ञेय और उनका कथा साहित्य, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010
2. अज्ञेय और उनके उपन्यास, प्र. ग्रंथ निकेतन, पटना 1975, आउट ऑफ प्रिंट
3. उपन्यास का शिल्प, प्र. बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना, 1973, आउट ऑफ प्रिंट
4. उपन्यास की संरचना, प्र. राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2005
5. गोदान ; नया परिप्रेक्ष्य, प्रकाशन. अनुपम प्रकाशन, पटना 1982
6. दिनकर: व्यक्तित्व और रचना के आयाम, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली 2009
7. दिव्या, प्र. अनुपम प्रकाशन, पटना 2001
8. पं. गौरीदत्त कृत देवरानी जेठानी की कहानी, प्र. ग्रंथ निकेतन, पटना 1966 आउट ऑफ प्रिंट
9. महाभोज, प्र. अनुपम प्रकाशन, पटना 2002
10. मैला आँचल, प्रकाशन. अनुपम प्रकाशन, पटना 2000
11. रंगभूमि: पुनर्मूल्यांकन, प्रकाशन.अनुपम प्रकाशन, पटना 1983
12. शेखर एक जीवनी, प्र. अनुपम प्रकाशन, पटना 1975
13. हिन्दी उपन्यास का इतिहास, प्र. राजकमल प्रकशन, दिल्ली, 2002
14. हिन्दी उपन्यास कोश खंड -2, प्र. ग्रंथ निकेतन पटना, 1969, आउट ऑफ प्रिंट
15. हिन्दी उपायनस कोश खंड-1, प्र. ग्रंथ निकेतन पटना, 1968, आउट ऑफ प्रिंट

16. हिन्दी कथा साहित्य और उसके विकास पर पाठकों की रुचि का प्रभाव, प्र. ग्रंथ निकेतन, पटना 1966, आउट ऑफ प्रिंट

17. हिन्दी कहानी का इतिहास (1900-1950), प्र. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008

18. हिन्दी कहानी का इतिहास (1951-1975), प्र. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 2011

19. हिन्दी कहानी का इतिहास (1976-2000), प्र. राजकमल प्रकशन, नई दिल्ली, 2014

20. हिन्दी भाषा का विकास, प्र. अनुपम प्रकशन, पटना, 1995

21. हिन्दी साहित्याब्द कोश 14 खंडों मे, 1967-1980, प्र. ग्रंथ निकेतन पटना, आउट ऑफ प्रिंट

सहायक ग्रंथ सूची :-

1. आलोचक और आलोचना सिद्धान्त, डॉ. रतनकुमार पाण्डेय वाणी प्रकाशन नई दिल्ली 2008
2. उत्तर आधुनिकता और समकालीन हिंदी आलोचना, बली सिंह स्वराज प्रकाशन नई दिल्ली 2015
3. नामवर सिंह का आलोचना कर्म एक पुन: पाठ, भारत यायावर किताबघर प्रकाशन नई दिल्ली 2013
4. बालकृष्ण भट्ट और आधुनिक हिंदी आलोचना का आरम्भ, लेखक अभिषेक रौशन, प्रकाशन अंतिका. उ. प्र 2009
5. भारतेंदु युग, रामविलाश शर्मा विनोद पुस्तक मंदिर आगरा 1956

6. महाभोज, मन्नू भंडारी राधाकृष्ण पेपर बैक्स नई दिल्ली 2015
7. मैला आँचल, फणीश्वरनाथ रेणु राजकमल पेपर बैक्स नई दिल्ली 2014
8. वाद विवाद संवाद, नामवर सिंह , राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली 2011
9. विचार और वितर्क, डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी प्रकाशक साहित्य भवन इलाहबाद 1969
10. शेखर : एक जीवनी भाग एक, अज्ञेय राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली 1941
11. शेखर : एक जीवनी भाग दो, अज्ञेय राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली 1944
12. समकालीन हिंदी आलोचना दशा और दिशा, डॉ.पशुपतिनाथ उपाध्याय प्रकाशन, गोविन्द पचौरी(जवाहर पुस्तकालय) उ.प्र. 2013
13. हिंदी आलोचना का दूसरा पाठ, निर्मला जैन राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली 2014
14. हिंदी आलोचना का विकास, नंदकिशोर नवल राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली 2003
15. हिंदी आलोचना का विकास, मधुरेश सुमित प्रकाशन इलाहबाद 2004
16. हिंदी आलोचना की परंपरा और डॉ. रामविलास शर्मा, कालूराम परिहार अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स नई दिल्ली 2009
17. हिंदी आलोचना की बीसवी सदी, निर्मला जैन राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली 2008
18. हिंदी आलोचना के आधार स्तंभ, रामेश्वर लाल, खंडेलवाल और सुरेशचंद्र गुप्त, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद 2004

19. हिंदी आलोचना शिखरों का शाक्षात्कार, रामचन्द्र तिवारी लोकभारती प्रकाशन इलाहबाद 2000
20. हिंदी आलोचना समकालीन परिदृश्य, कृष्णदत्त पालीवाल प्रकाशक सामयिक बुक्स नई दिल्ली 2014
21. हिंदी आलोचना, विश्वनाथ त्रिपाठी राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली 2016

कोश :-

1. 'अमर मानक हिंदी शब्दकोश' प.नित्यानंद तिवारी, कमल प्रकाशन नई दिल्ली
2. 'आदर्श हिंदी शब्दकोश', पं. रामचंद्र पाठक सं. भार्गव बुक डिपो, वारासणी.
3. ऑक्सफ़ोर्ड इंग्लिश हिंदी शब्दकोश सं.एस.के.वर्मा और आर.एन.सहाई, ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी 2003
4. 'प्रामाणिक हिंदी कोश', आ.रामचंद्र वर्मा सं.लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, सं. 2009.
5. 'मानक हिंदी कोश' पाँचवाँ खंड आ.रामचंद्र वर्मा सं. हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयोग, सं.1966.
6. 'हिंदी साहित्य कोश' भाग-1- डॉ. धीरेंद्र वर्मा (सं.) ज्ञानमण्डल लिमिटेड, सं. 2013.'दर्शन-कोश', पीपल्स - पब्लिशिंग हाउस प्रा.लि.सं.2000.

पत्र-पत्रिकाएँ :-

1. आलोचना - नामवर सिंह (प्र. सं.), राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, वर्ष - अप्रैल 2011
2. कथादेश - हरीनारायण (सं.), सहयात्रा प्रकाशन, दिल्ली, वर्ष - अक्टूबर 1998

3. कथादेश - हरीनारायण (सं.), सहयात्रा प्रकाशन, दिल्ली, वर्ष - फरवरी 2005
4. कथादेश - हरीनारायण (सं.), सहयात्रा प्रकाशन, दिल्ली, वर्ष - मार्च 2005
5. नया ज्ञानोदय - प्रभाकर श्रोत्रिय (सं.), भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, वर्ष - मार्च 2004
6. नया ज्ञानोदय - प्रभाकर श्रोत्रिय (सं.), भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, वर्ष - मार्च 2006
7. पुस्तक वार्ता - ज्ञानरंजन (सं.), महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा, वर्ष - जुलाई 2008
8. बीजशब्द - केदारनाथ सिंह (सं.), प्रकाशन संतान, दिल्ली, वर्ष - जनवरी-जून 2005
9. वागर्थ - एकांत श्रीवास्तव/कुसुम खेमानी (सं.), भारतीय भाषा परिषद, कोलकाता, वर्ष - दिसंबर 2012
10. वागर्थ - एकांत श्रीवास्तव/कुसुम खेमानी (सं.), भारतीय भाषा परिषद, कोलकात, वर्ष -जनवरी 2013
11. वागर्थ - एकांत श्रीवास्तव/कुसुम खेमानी (सं.), भारतीय भाषा परिषद, कोलकाता, वर्ष -फरवरी 2013
12. समीक्षा पत्रिका संपादक गोपाल राय जनवरी- मार्च 1968
13. समीक्षा पत्रिका संपादक गोपाल राय जनवरी- मार्च अंक एक 1967
14. समीक्षा पत्रिका संपादक प्रो.सत्यकाम जुलाई-दिसम्बर 2016

-: परिशिष्ट :-

- प्रकाशित आलेख – 1
- प्रकाशित आलेख – 2
- अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी में प्रस्तुत शोध – पत्र का प्रमाण पत्र – 1
- अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी में प्रस्तुत शोध – पत्र का प्रमाण पत्र – 2

प्रकाशित आलेख – 1

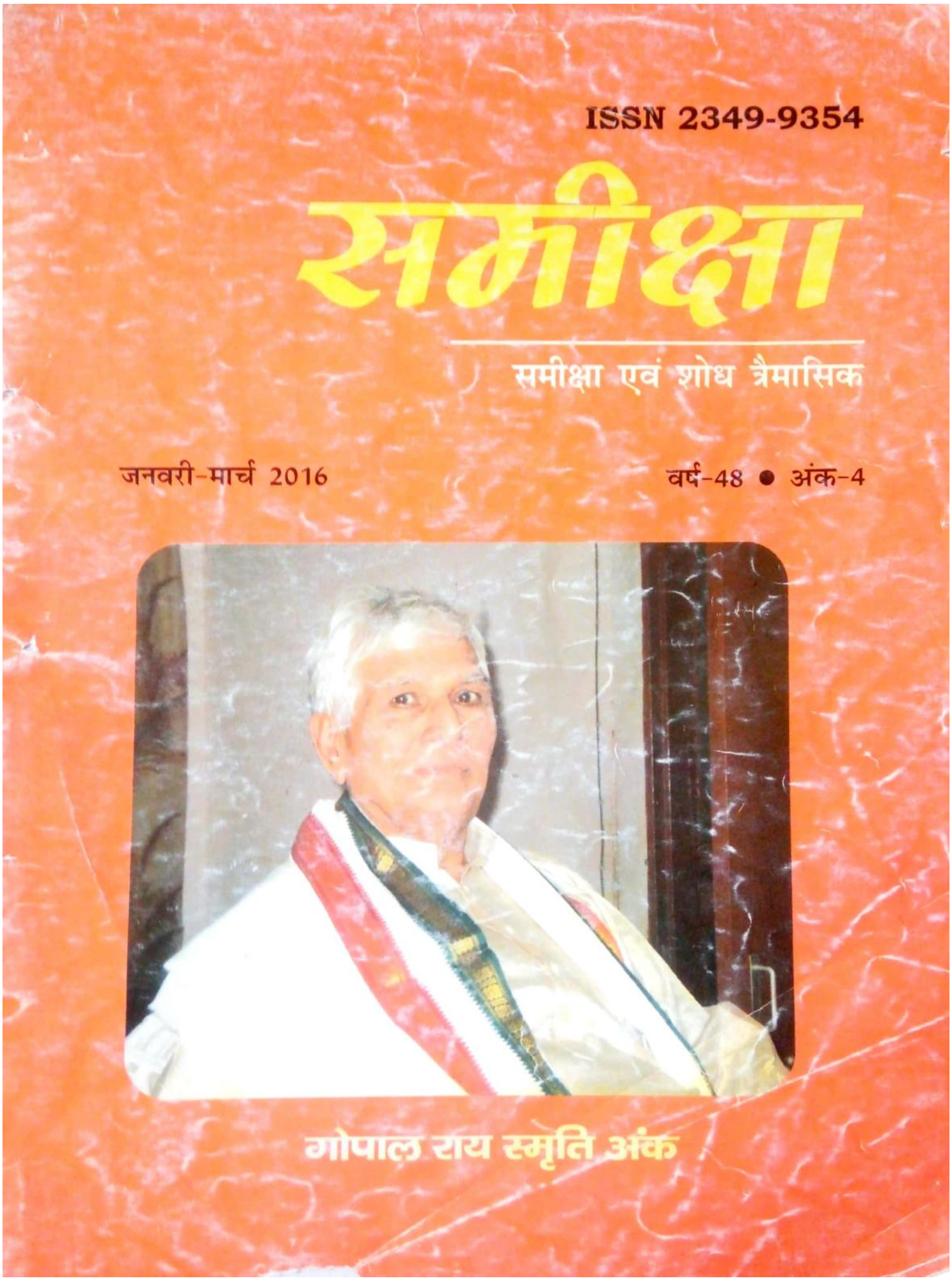
ISSN 2349-9354
समीक्षा
समीक्षा एवं शोध त्रैमासिक
जनवरी-मार्च 2016
वर्ष-48 ● अंक-4
गोपाल राय स्मृति अंक

समीक्षा

समीक्षा एवं शोध त्रैमासिक

जनवरी-मार्च, 2016

वर्ष 48, अंक 4

गोपाल राय स्मृति अंक

संस्थापक सम्पादक

गोपाल राय

सम्पादक

सत्यकाम

संयुक्त सम्पादक

अमिताभ राय

प्रबन्धन

सीमा

समीक्षा

ISSN : 2349-9354

जनवरी-मार्च, 2016

वर्ष: 48, अंक : 4

प्रकाशन तिथि : 15 मार्च, 2016

मूल्य :

एक प्रति: *तीस रुपये*

संस्थाओं के लिए : *पचास रुपये*

वार्षिक सदस्यता : *दो सौ रुपये (डाक खर्च सहित)*

संस्थाओं के लिए : *तीन सौ रुपये (डाक खर्च सहित)*

आजीवन सदस्यता : *पांच हजार रुपये (डाक खर्च सहित)*

इस अंक का मूल्य:

व्यक्तिगत: पचास रुपये

संस्था: सौ रुपये

सम्पर्क:

समीक्षा

द्वारा *अमिताभ राय*

ए-305, प्रियदर्शिनी अपार्टमेन्ट,

17-इन्द्रप्रस्थ प्रसार,

पटपड़गंज, दिल्ली-110092

मोबाइल : 09582502101

ईमेल : sameekshatraimasik@gmail.com

निवेदन: कृपया सारे भुगतान केवल बैंक ड्राफ्ट अथवा ई-ट्रांसफर द्वारा निम्न चालू खाता संख्या: 2257002100004645, IFSC Code : PUNB0225700, पंजाब नेशनल बैंक, इग्नू, मैदानगढ़ी, दिल्ली-110068 में कीजिए। बैंक ड्राफ्ट 'समीक्षा' को नई दिल्ली में देय होगा। ड्राफ्ट उपरोक्त पते पर भेजें।

पत्रिका का अंक न मिलने पर इसकी सूचना उपरोक्त पते पर दें अथवा उपर्युक्त नं. पर सम्पर्क करें।

'समीक्षा' में प्रकाशित रचनाओं के विचारों से सम्पादक की सहमति आवश्यक नहीं है।

सम्पादक, संयुक्त सम्पादक पूर्णतया अवैतनिक और अव्यावसायिक।

किसी भी विवाद की स्थिति में न्यायाधिकरण, दिल्ली होगा

अनुक्रम

		पृ.सं.
सम्पादकीय :		
हिन्दी साहित्य के पुरातत्ववेत्ता: गोपाल राय		4
धरोहर: समीक्षा		
समीक्षा: इकतीस सालों का सफर	गोपाल राय	14
क्यों नहीं साफ हो रही 'हिंदी' पद की अवधारणा	गोपाल राय	25
घर-परिवार		
जौ लरिका कुछ अचगरी करहीं	ऋत्विक	32
उड़ गये फुलवा रह गये वास	रागिनी सांकृत	33
सन्नाटे का छंद	सत्यकेतु सांकृत	36
यादों के कोने में		
मेरा हमदम मेरा दोस्त	मुचकुंद दुबे	46
स्मृति-शेष बंधुवर	निर्मला जैन	48
लोकतांत्रिक और पेशेवर ईमानदारी	प्रदीप सक्सेना	51
जैसा मैंने देखा	अहमद रज़ा खान	52
मत पूछ कि क्या हाल है मेरा तेरे पीछे	सलिल मिश्र	54
पत्रों में प्रतिबिम्बित व्यक्तित्व	वेदप्रकाश अमिताभ	60
मेरे गुरुदेव, गाइड और बाबूजी	सकलदेव शर्मा	63
जीवन और लेखन प्रेरणादायी है	कृष्ण चन्द्र लाल	68
मेरे प्राध्यापक	कर्मेन्दु शिशिर	71
ऐसे थे हमारे सम्माननीय	तरुण कुमार	73
कर्मठ साहित्य-साधक	अजय तिवारी	75
एक साहित्य-साधक के साथ संवाद	पूनम सिन्हा	77
कर्म का वह प्रकाश, जिसे अंधेरा कभी ढँक नहीं सकेगा	रीता सिन्हा	82
रचनात्मक संसार		
समावेशी दृष्टि से लिखा हिन्दी उपन्यास का इतिहास (हिन्दी उपन्यास का इतिहास)	मैनेजर पाण्डेय	85
इतिहासकार गोपाल राय (हिन्दी उपन्यास का इतिहास/हिन्दी कहानी का इतिहास : भाग-1, 2, 3)	अमिता पाण्डेय	89
उपन्यास की संरचना: संदर्भ-प्रेमचन्द के उपन्यासों की यथार्थवादी संरचना (उपन्यास की संरचना)	पूनम सिन्हा	93

अज्ञेय को ज्ञेय बताने का प्रयास (अज्ञेय और उनके उपन्यास)	लव कुमार	98
हिन्दी भाषा का विकास (हिन्दी भाषा का विकास)	एम. शेषन	101
हिन्दी कथा-साहित्य: अन्वेषण एवं विश्लेषण (हिन्दी साहित्य और उसके पाठकों पर रुचि का प्रभाव)	राजेन्द्र प्रसाद पाण्डेय	106
रंगभूमि की वैचारिकी बरजिए गोपाल (रंगभूमि: पूनर्मूल्यांकन)	बजरंग बिहारी तिवारी	112
पचास साल बाद एक आलोचना पुस्तक का महत्त्व (गोदान: नया परिप्रेक्ष्य)	जितेन्द्र श्रीवास्तव	114
दिव्या: इतिहास, कल्पना और स्त्री प्रश्न (उपन्यास की पहचान: दिव्या)	कल्पना पन्त	117
नाटकीय विधान के रूप में उपन्यास की महत्ता (उपन्यास की पहचान: महाभोज)	प्रणव कुमार ठाकुर	120
बहुवर्णी व्यक्तित्व पर रोशनी डालने का प्रयास	लव कुमार	123
अज्ञेय के कथा साहित्य का मूल्यांकन (अज्ञेय और उनका कथा साहित्य)	हेमराज कौशिक	125
समीक्षा का महत्त्व	पी. जयसिंह	130
हिन्दी-उर्दू साहित्य की विरासत की पड़ताल (उन्नीसवीं शताब्दी का हिन्दी साहित्य)	वेंकटेश कुमार	133
श्रमशील साधक	अमिताभ राय	136
साक्षात्कार		
किसी समाज का बौद्धिक स्तर उसकी आलोचना से नापा जा सकता है	प्रकाश मनु	140
श्रद्धांजलि	विश्वनाथ प्रसाद तिवारी	100

समीक्षा का महत्त्व

पी.जयसिंह

(लेखक हिन्दी-विभाग, हैदराबाद केन्द्रीय विश्वविद्यालय, हैदराबाद में "गोपाल राय का आलोचना कर्म" पर शोध कार्य कर चुके हैं।)

आलोचना हर युग में उस युग का चेहरा आम जनता को दिखाती है। किसी विशेष कृति का महत्व बिना आलोचना के संभव नहीं है। अगर किसी भी कालजयी कृति को उठाया जाए तो उसे बड़े पाठक समूह तक पहुँचने में आलोचना का महत्वपूर्ण योगदान होता है। किसी कृति का महत्व तत्काल न होने पर भी समय के साथ-साथ वह कृति अपना महत्व बदलती है और वर्तमान दौर में वह महत्वपूर्ण प्रतीत होती है। उस कृति को महत्वपूर्ण एवं वर्तमान दौर में प्रासंगिक बनाने का कार्य आलोचक और आलोचना करती है। जैसे कि भारतेन्दु युग में पंडित बालकृष्ण भट्ट ने लिखा है, "साहित्य जिस देश के जो मनुष्य हैं, उस जाति की मानवी सृष्टि के हृदय का आदर्श रूप है। जो जाति जिस समय जिस भाव से परिपूर्ण या परिलुप्त रहती है, वह सब उनके भाव उस समय के साहित्य की आलोचना से अच्छी तरह प्रकट हो सकता है।...किसी देश का इतिहास पढ़ने से केवल बाहरी हाल हम उस देश का जान सकते हैं, पर साहित्य के अनुशीलन से कौम के सब समय-समय के आभ्यंतरिक भाव हमे परिस्फुट हो सकते हैं।"[1] किसी भी कृति के अर्थ की अनेक छटाएँ होती हैं, अनेक आयामों से उसे देखने की जरूरत होती है। पाठक वर्ग कभी-कभी उस कृति को एकांगी दृष्टि से देखता है। पर आलोचक उस कृति को अनेक आयामों में देखकर आलोचना के माध्याम से पाठकों को नए अर्थ की प्रतीति करवाता है। भारतेन्दु युग से ही आलोचना की सटीक शुरुवात मानी जाती है। जैसे हिन्दी प्रदीप, आनंद कादम्बिनी और इस तरह कई सारी पत्रिकाएँ भारतेन्दु युग में प्रकाशित हुई। द्विवेदी युग की सरस्वती पत्रिका, प्रेमचंद का हंस, आलोचना आदि पत्रिकाएँ कृति के आलोचनाओं के माध्यम से साहित्य को जन-जन तक पहुँचाया और साहित्य के लिए एक विशाल पाठक वर्ग बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते रहे। इससे पता चलता है कि विशाल पाठक वर्ग की सृष्टि करने में आलोचक, आलोचना और पत्र-पत्रिकाओं का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इसी कड़ी में गोपाल राय भी आते हैं जिन्होंने अपनी 'समीक्षा' पत्रिका के माध्यम से अनेक नये आलोचकों को हिन्दी जगत से परिचित कराया है यह हिन्दी आलोचना के विकास में महत्वपूर्ण योगदान है। बड़ी से बड़ी कृति से लेकर छोटी छिटपुट कृतियों की भी आलोचनाएँ इस पत्रिका में प्रकाशित होती हैं। हिन्दी साहित्य में पुस्तक समीक्षा को अपना ध्येय बनाकर जितनी भी पत्र-पत्रिकाएँ निकलती हैं उनमें से बहुत पुरानी त्रैमासिक पत्रिका है 'समीक्षा'। यह पत्रिका लगभग पिछले चालीस-पचास सालों से निकल रही है। हिन्दी साहित्य में अगर देखा जाए तो किसी भी पत्र-पत्रिकाओं का निरंतर प्रकाशित होना कोई आसान काम नहीं है।

1967 जुलाई महीने की एक शाम को डॉ. रामचन्द्र प्रसाद के राजेंद्र नगर स्थित मकान की छत पर पांच व्यक्तियों की बैठक में एक ऐसी पत्रिका निकालने का निर्णय लिया जो शुद्ध 'समीक्षा की पत्रिका' हों। इस बैठक में शामिल होने वाले पांच व्यक्ति थे, डॉ. रामचन्द्र प्रसाद, डॉ. वचनदेव कुमार, डॉ. सियाराम तिवारी, डॉ. सीताराम सिंह दीन और गोपाल राय। कुछ लोगों ने मतभेदों के कारण इस बैठक से अपने आपको अलग कर दिया, पर शेष बचे विद्वानों ने इस योजना को पूरा करने के लिए दृढ़ संकल्प लिए। लेकिन गोपाल राय के आचार्य देवेन्द्रनाथ शर्मा ने इस पत्रिका को किस तरह तैयार करना चाहिए और इसका स्वरूप किस प्रकार का होना चाहिए आदि बातों पर गोपाल राय को बहुत सहयोग दिया। इतना ही नहीं बल्कि उन्होंने प्रधान संपादक का दायित्व भी संभाला था। इस पत्रिका के

मुद्रक के रूप में लक्ष्मी पुस्तकालय के स्वामी श्री परमेश्वर प्रसाद का सहयोग मिला था। जिन्होंने प्रथम अंक का मुद्रण-व्यय वहन करने का आश्वासन दिया था। इतना ही नहीं बल्कि प्रबन्धक के रूप में श्री. गिरीश प्रसाद सिंह ने सेवाएँ देने का निर्णय लिया, और संयोजन का भार गोपाल राय ने संभाला।

इस प्रकार इस पत्रिका का प्रवेशांक जुलाई 1967 में प्रकाशित हुआ है। गोपाल राय के संपादकत्व में हिन्दी साहित्य में केवल रचनाओं की समीक्षा को आधार बनाकर निकलने वाली पहली पत्रिका है। जिसका लक्ष्य हिन्दी की अन्य पत्र-पत्रिकाओं से अलग था। समीक्षा और गोपाल राय के इस प्रयास का अनुमान इन तथ्यों को देखकर खुद ही लगाया जा सकता है कि समीक्षा पत्रिका के पहले ही वर्ष की समाप्ति पर 45 उपन्यास, 18 कहानी संग्रह, 77 कविता पुस्तकें, 5 नाटक, 30 आलोचना ग्रंथ तथा 45 विविध विषयों की पुस्तकों की समीक्षाएं प्रकाशित की जा चुकी थी। जब समीक्षा पत्रिका का प्रकाशन हुआ था तब हिन्दी साहित्य के अलावा पुस्तक समीक्षा पर बंगला में 'ग्रंथ' परिक्रमा और गुजराती में ग्रंथ नामक पत्रिकाएँ यही कार्य कर रही थी।

समीक्षा पत्रिका अपने प्रारंभिक अंकों में पुस्तक समीक्षाओं के साथ-साथ समीक्षा की बारीकियों से भी पाठकवर्ग को परिचित कराया गया था।...समीक्षा के प्रथम वर्ष के परिणाम पर अति उत्साह प्रकट करने के बजाय गोपाल राय ने संपादकीय में केवल इतना ही कहा कि...''समीक्षा पत्रिका का प्रथम वर्ष बहुत संतोषजनक रहा है।'' संभावत: यह सयमित दृष्टि अनेक धैर्य और उत्साह का आजीवन आधार रही है।

गोपाल राय के शब्दों में...''कोई भी पाठक जब किसी पुस्तक का पढ़ना आरंभ करता है तो वह बहुत सारी प्रतिक्रियाओं के बीच से गुजरता है और जब तक पुस्तक समाप्त होती है तब तक उसके संबंध में वह कोई न कोई धारणा बना लेता है प्राय: हम कोई पुस्तक पढ़ने बाद मित्रों के बीच अपनी प्रतिक्रिया को व्यक्त भी करते हैं। हमारी समझ से यह प्रतिक्रिया अथवा पठित पुस्तक के संबंध में मुक्त चिंतन समीक्षा का प्रमुख आधार है।'' इब्राहीम शरीफ समीक्षा पत्रिका पर प्रतिक्रिया देते हुए लिखा...''अब समीक्षा पत्रिका निश्चित रूप से हिन्दी में ही नहीं जहाँ तक मेरी पहचान है, भारतीय भाषाओं में अपने ढंग की अकेली पत्रिका है। साहित्य के संदर्भ में समीक्षा पत्रिका महत्वपूर्ण काम कर रही है।''[2]

गोपाल राय एक श्रेष्ठ अध्यापक, तटस्थ आलोचक, और जिम्मेदार संपादक के रूप अपना जीवन व्यतीत किया है। अपने संपादकीय के समय में कई विषयों पर अपनी लेखनी चलाई है। जैसे त्रैमासिक 'समीक्षा' पत्रिका हिन्दी उपन्यास कोश, हिन्दी साहित्याब्द कोश, आदि। हिन्दी साहित्याब्द कोश वस्तुत: एक वर्ष में प्रकाशित हिन्दी रचनाओं का आलेखन और सिंहवालोकन करने का भी प्रयास था, उन्होंने साहित्याब्द कोश 1967 की भूमिका में लिखा है ''हिन्दी साहित्याब्द कोश 1967 में 1967 प्रकाशित समस्त नई और उल्लेखनीय पुस्तकों की समीक्षा, परिचय और सूचना देने का प्रयास किया गया है। हम यह दावा नहीं करते कि कोई पुस्तक नहीं छूटी है। हिन्दी का क्षेत्र इतना विशाल है कि उसे देखते हुये इस तरह का दावा संगत नहीं होगा पर हमने इस बात का प्रयास जरूर किया है कि कोई भी महत्वपूर्ण पुस्तक हिन्दी साहित्याब्द कोश में अचर्चित नहीं रहे।''[3]

हिन्दी साहित्याब्द कोश लिखने में समीक्षा पत्रिका में प्रकाशित कई रचनाएँ और उल्लेखनीय पुस्तकों की आलेखन और अवलेखन करने का प्रयास था। हिन्दी में इस तरह का एक अनूठा कार्य है 1967 से 1980 तक लगातार प्रकाशित होने वाले इस संदर्भ ग्रंथ के विषय में गोपाल राय ने कहा कि...''व्यावसायिक स्तर पर यह योजना असफल रही है। इस ग्रंथ के प्रत्येक खंड की पांच सौ प्रतियाँ छपती रही है पर अधिकांश प्रतियाँ अनबिकी गोदाम में कीड़ों और चूहों का खाद्य बनने को बाध्य हुई हैं। हिन्दी जगत में शताधिक , विश्वविध्यालय, हजारों कॉलेज और सार्वजनिक पुस्तकालय तथा अनेक शोध संस्थानों के होते हुए एक उपयोगी संदर्भ प्रकाशन योजना का यह श्रम आश्चर्य नहीं तो चिंता की बात अवश्य है।''[4]

गोपाल राय की श्रम-साधना, निष्ठा एवं कर्मठता का सफल एवं महत्वपूर्ण रूप उनके रचनाओं के रूप में हमारे सामने आता है। इन रचनाओं और अपने आलोचना कर्म से उन्होंने हिन्दी आलोचना को नई दिशा और गति प्रदान की है। गोपाल राय का सबसे महत्वपूर्ण काम हिन्दी कथा साहित्य से सबंधित शृंखलाबद्ध इतिहास है। हिन्दी कथा साहित्य से संबन्धित जो भी पुस्तकें गोपाल राय ने लिखी या संपादित की इस तरह का कार्य कोई प्राध्यापक, आलोचक, लेखक और विद्वानों ने भी नहीं किया होगा।

साहित्योतिहास-''लेखन के रूप में 2002 में प्रकाशित इनका 'हिन्दी कहानी का इतिहास' जिसमें उन्होंने प्रत्येक दशक में प्रकाशित, उपन्यास लेखन का आरंभ करने वाले रचनाकारों को उनके कालक्रम में रखकर प्रत्येक उपन्यासकार की समस्त रचनाओं का विवेचन उनके कालक्रम से किया है।''[5] 2008 में प्रकाशित 'हिन्दी कहानी का इतिहास' भाग एक में 1900 से 1950 तक की कहानियों का विकास यात्रा का विवेचन है। 2011 में प्रकाशित 'हिन्दी कहानियों का इतिहास' भाग दो में 1951 से 1975 तक की कहानियों का

इतिहास प्रस्तुत किया है और 2014 में प्रकाशित 'हिन्दी कहानी का इतिहास' भाग तीन में 1976 से 2000 के बीच प्रकाशित कहानियों का विवेचन कर शोधार्थियों के लिए महत्वपूर्ण बनाया जो शोध एवं अन्य लेखन के लिए अधिक सहायक बनने में बड़ी भूमिका निभाती है।

साहित्येतिहास लेखन केवल अत्यंत दुरूह ही नहीं होता है बल्कि एक उत्तरदायित्वपूर्ण कर्म भी होता है। इसका कारण यह है कि अधिकांश साहित्यकार इस क्षेत्र में प्रवेश नहीं करना चाहते है। इस विषय में गोपाल राय कहते है कि ''पर यह काम बहुत कठिन है यह मैं हिन्दी साहित्य का इतिहास लेखन के क्रम में समझ रहा हूँ और मुझे लगता है कि इस कठिनाई का सामना न कर पाने की विवशता ने ही हिन्दी विद्वानों को इतिहास लेखन की अनुपयोगिता का फतवा देने का बाध्य किया है''।[6]

गोपाल राय इसके अतिरिक्त हिन्दी कथा साहित्य की आलोचना के रूप में अन्य पुस्तकें भी महत्वपूर्ण मानी जाती हैं। अपनी आलोचनात्मक पुस्तकें और उनके द्वारा दिये वक्तव्यों में उनका दृष्टिकोण हमेशा वस्तु परक ही रहा है न कि व्यक्ति परक। उन्होंने हमेशा यह ध्यान में रखा कि उनके द्वारा लिखी गई आलोचना, लेखक, लेखिकाओं की रचनाओं के आधार पर हो न उनकी पद प्रतिष्ठा के आधार पर। उनका भाषा विज्ञान में भी विशेष रूचि रही जो 1995 में 'हिन्दी भाषा का विकास' नामक पुस्तक के रूप में हमें मिलती है। गोपाल राय हिन्दी में विदेशी शब्दों के प्रयोग को वे हिन्दी भाषा के लिए घातक मानते हैं और उमका मानना है कि..''किसी भाषा के लिए अपने दरवाजे, खिड़कियाँ इस प्रकार बंद नहीं करने चाहिए कि उसमें बाहरी शब्द घुस ही नहीं पाये पर विदेशी अपरिहार्य शब्दों को अपनाना और उनसे अपनी भाषा को आक्रांत कर देना एक बात नहीं है।'' इस प्रकार उनके द्वारा प्रकाशित कुछ पुस्तकें पढ़ने -पढ़ाने की प्रक्रिया में ही पूरी हो गई हैं जैसे कि गोपाल राय ने कहा-''शेखर एक जीवनी: मूल्यांकन (1975) की भूमिका में लिखा यह पुस्तक पढ़ने-पढ़ाने के क्रम में बन गई है।''[7]

यह कह सकते हैं कि गोपाल राय बहुत निष्पक्ष, परिश्रम, कर्तव्यनिष्ट, संपादक के रूप में बहुत लंबे समय तक 'समीक्षा' पत्रिका निकाली और अब भी निकल रही है। इस पत्रिका ने अपना एक इतिहास बनाया है और हिन्दी साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं के इतिहास में भी एक महत्वपूर्ण स्थान स्थापित हुआ है। इस पत्रिकाओं को इस मुकाम तक पहुँचाने के लिए गोपाल राय तथा उनके बेटे प्रो.सत्यकाम का बहुत ही महत्वपूर्ण योगदान रहा है। पिछले कुछ वर्षों से समीक्षा पत्रिका के संपादकीय के रूप में प्रो. सत्यकाम कार्य कर रहे हैं। जिस तरह गोपाल राय ने समीक्षा पत्रिका को हिन्दी पत्रिकाओं में सर्वश्रेष्ट बनाने की कोशिश करते रहे ठीक उसी प्रकार आज भी प्रो. सत्यकाम उसी परम्परा को आगे ले जाने में सफलता पूर्वक कार्यरत हैं।

हम यह कह सकते है कि गोपाल राय ने अपने अध्ययन, अध्यापक और संपादकीय जीवन से ही अनेक सफल कार्य करते नजर आते हैं। उसी सफल कार्य में हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं के इतिहास में समीक्षा पत्रिका का एक विशेष रूप सामने रखकर हिन्दी जगत में समीक्षा के द्वारा नई राह प्रदान की है। ऐसे महान आलोचक का अक्टूबर 2015 में देहांत हो गया लेकिन वह साहित्य के माध्यम से हमेशा हमारे बीच उपस्थित रहेंगे। उनके साहित्यिक योगदान को हिन्दी जगत कभी भी नहीं भूल सकता।

संदर्भ:

1. हिन्दी आलोचना की परंपरा और डॉ. रामविलास शर्मा, संपादक. कालूराम परिहार, पृष्ठ 13
2. 'समीक्षा' पत्रिका, वर्ष-1974, अंक-4, पृष्ठ-8
3. वही, वर्ष-1973 पृष्ठ-16
4. वही, वर्ष-2010 अक्टूबर, पृष्ठ-24
5. हिन्दी उपन्यास का इतिहास, सं. -गोपाल राय, पृष्ठ-11
6. 'समीक्षा' पत्रिका, दिसम्बर-2008, पृष्ठ-6
7. वही, वर्ष-2010, जुलाई, पृष्ठ.10

हिन्दी-विभाग, हैदराबाद केन्द्रीय विश्वविद्यालय, हैदराबाद

प्रकाशित आलेख – 2

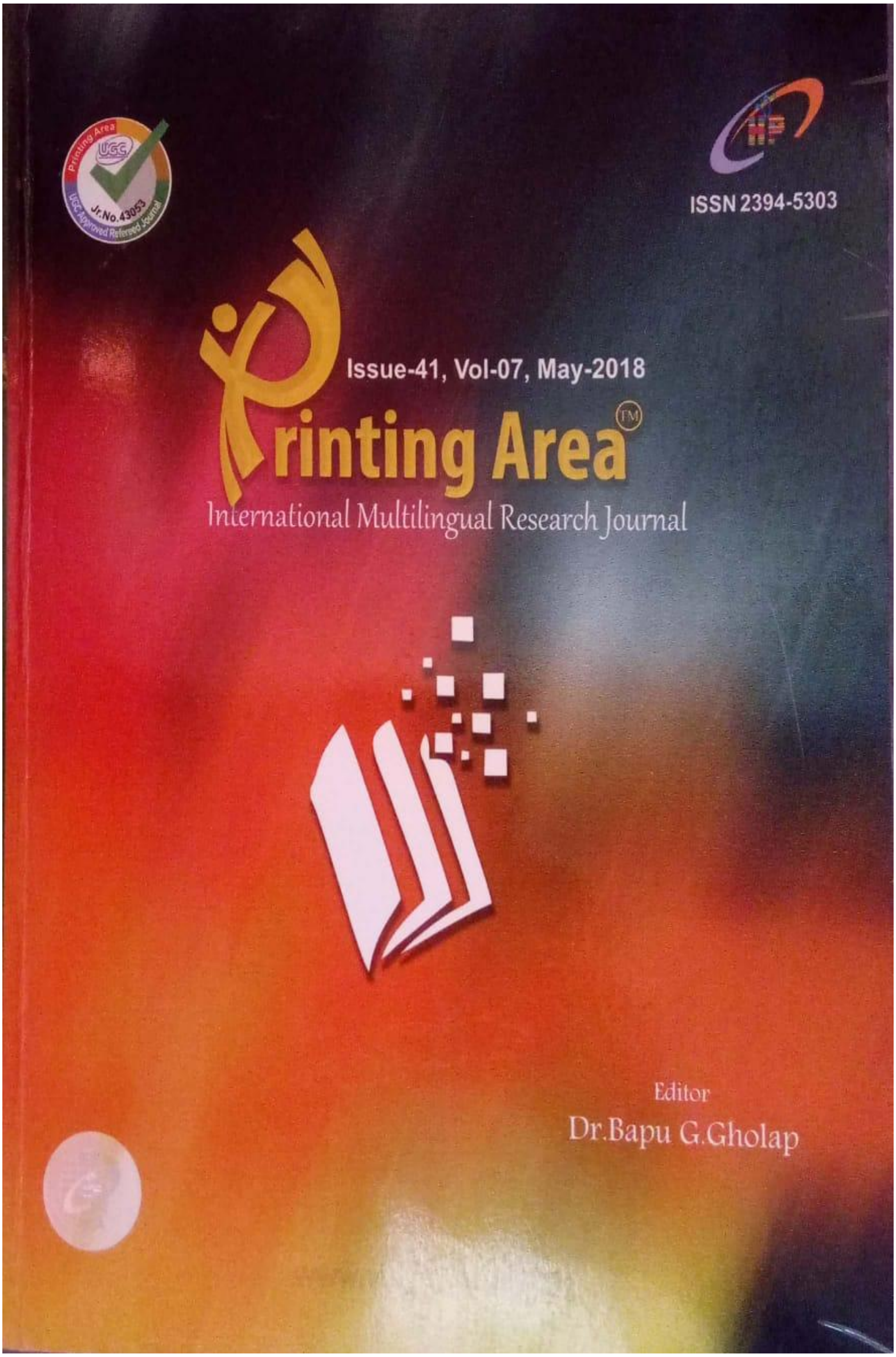
Printing Area
UGC
Jr.No.43053
UGC Approved Refereed Journal
ISSN 2394-5303
Issue-41, Vol-07, May-2018
Printing Area(TM)
International Multilingual Research Journal
Editor
Dr.Bapu G.Gholap

UGC Approved Jr.No.43053

आंतरराष्ट्रीय बहुभाषिक शोध पत्रिका

प्रिंटिंग एरिया

Printing Area International Interdisciplinary Research Journal in Marathi, Hindi & English Languages

May 2018, Issue-41, Vol-07

Editor
Dr. Bapu g. Gholap
(M.A.Mar.& Pol.Sci.,B.Ed.Ph.D.NET.)

Co-Editor
Dr. Ravindranath Kewat
(M.A. Ph.D.)

"Printed by: **Harshwardhan Publication Pvt.Ltd.** Published by **Ghodke Archana Rajendra** & Printed & published at Harshwardhan Publication Pvt.Ltd.,At.Post. Limbaganesh Dist,Beed -431122 (Maharashtra) and Editor **Dr. Gholap Bapu Ganpat.**

Reg.No.U74120 MH2013 PTC 251205
Harshwardhan Publication Pvt.Ltd.
At Post Limbaganesh,Tq Dist Beed
Pin-431126 (Maharashtra) Cell 07588057695,09850203295
harshwardhanpubli@gmail.com, vidyawarta@gmail.com
All Types Educational & Reference Book Publisher & Distributors / www.vidyawarta.com

Printing Area

Editorial Board & Advisory Committee

1) Dr. Vikas Sudam Padalkar (Japan)
2) M.Saleem, Sialkot (Pakistan)
3) Dr. Momin Mujtaba (Saudi Arebia)
4) N.Nagendrakumar (Sri Lanka)
5) Dr. Wankhede Umakant (Maharashtra)
6) Dr. Basantani Vinita (Pune)
7) Dr. Upadhya Bharat (Sangali)
8) Jubraj Khamari (Orissa)
9) Krupa Sophia Livingston (Tamilnadu)
10) Dr. Wagh Anand (Aurangabad)
11) Dr. Ambhore Shankar (Jalna)
12) Dr. Ashish Kumar (Delhi)
13) Prof.Surwade Yogesh (Satara)
14) Dr. Patil Deepak (Dhule)
15) Dr. Singh Rajeshkumar (Lucknow)
16) Tadvi Ajij (Jalgaon)
17) Dr.Patwari Vidya (Jalna)
18) Dr.Varma Anju (Gangatok)
19) Dr.Padwal Promod (Waranasi)
20) Dr.Lokhande Nilendra (Mumbai)
21) Dr.Narendra Pathak (Lucknow)
22) Dr.Bhairulal Yadav (West Bangal)
23) Dr.M.M.Joshi, (Nainital)
24) Dr.Sushma Yadav (Delhi)
25) Dr.Seema Sharma (Indor)
26) Dr. Choudhari N.D. (Kada)
27) Dr. Yallawad Rajkumar (Parli v.)
28) Dr. Yerande V. L.(Nilanga)
29) Dr. Awasthi Sudarshan (Parli v.)
30) Dr Watankar Jayshree
31) Dr. Saini Abhilasha
32) Dr. Prema Chopde (Nagpur)
33) Dr. Vidya Gulbhile (M.S.)
34) Dr. Kewat Ravindra (Chandrapur)
35)Dr. Pandey Piyush (Delhi)
36) Dr. Suresh Babu (Hydarabad)
37) Dr. Patel Brijesh (Gujrat)
38) Dr. Trivedi Sunil (Gujrat)
39) Dr. Sarda Priti (Hydarabad)
40) Dr. Nema Deepak (M.P.)
41) Dr. Shukla Neeraj (U.P.)
42) Dr. Namdev Madumati (M.P.)
43) Dr. Kachare S.V. (Parli-v)
44) Dr. Singh Komal (Lucknow)
45) Dr. Pawar Vijay (Mumbai)
46) Dr. Chaudhari Ramakant (Ja

Govt. of India,
Trade Marks Registry
Regd. No. 3418002

Note : The Views expressed in the published articles,Research Papers etc. are their writers own. 'Printing Area' dose not take any libility regarding appoval/disapproval by any university, institute,academic body and others. The agreement of the Editor, Editorial Board or Publicaton is not necessary. Disputes, If any shall be decided by the court at **Beed** (Maharashtra, India)

http://www.printingarea.blogspot.com

Printing Area : Interdisciplinary Multilingual Refereed Journal UGC Approved Jr.No.43053

Printing Area

Index

1) Salman Rushdie's Novel Joseph Anton is History Of the Self
Dr. Auradkar Sarika Pradiprao, Ardhapur.Dist.Nanded. || 09

2) Waiting: a Universal Human Condition as Epitomised by Beckett's Waiting for Godot
Mr. Hiralal A. Bansod, Talodhi (Balapur), Dist. Chandrapur || 13

3) The Image Of Woman In The Early Indo – Anglian Fiction
Dr. Suresh B. Bijawe, Morshi Dist. Amravati (M.S.) || 16

4) Title : A Study on Prospects and Potential of Microfinance in India
Prof. Dr. B.M. Chachane, Nagpur || 20

5) A Study of Holomorphic Function With Bubbles (Air and Shop) In Complex Analysis
ALOK CHAKRABORTY, DISTT.-SURGUJA, CHHATTISGARH || 25

6) Status of Higher Education in India: An Analytical Study
Dr. D. Yashwanth Rao. || 27

7) A CRITICAL STUDY OF REGISTERED VALUER'S & VALUATION
Dr, Rohidas Ganpat Godse, Guhagar, Ratnagiri || 32

8) ROLE OF CORPORATE SOCIAL RESPONSIBILITY IN DEVELOPMENT OF NATION
Dr. Madhumita Gupta, Ashiana, -Mukul Saurastri, Lucknow || 37

9) Bitter side of the Truth: A Study of Jhumpa Lahiri's "The Treatment of Bibi Haldar ...
Dr. Ashok Kadam, Barshi. Dist. Solapur || 43

10) DRUG ABUSE AT WORKPLACE: A STUDY OFFINANCIAL AND LEGAL EFFECTS
Sukhjinder Kaur, Sujanpur, Pathankot (INDIA) || 48

11) The Significance of Arabic language in Current scenario- An analytical study
Dr. Mohammad Mustafa Khan, Aurangabad. || 52

www.vidyawarta.com/03 — http://www.printingarea.blogspot.com

12) THE ROLE OF THE SCHOOL LIBRARY IN EDUCATION
Sharada K. Lanjekar, Gadchiroli || 54

13) IMPACT OF RESEARCH AND DEVELOPMENT EXPENDITURE ON PROFITABILITY OF ...
Sarfaraj I Mansuri , Dr. Y M Dalvadi, Anand Gujarat || 58

14) The Contribution of News Papers in the Development of Cricket
Dr. Govind Sadashivrao Martale, Faizpur Dist. Jalgaon || 62

15) STUDIES ON PHYTOPLANKTON DIVERSITY IN CHANDAPUR DAM, BEED DISTRICT .....
Dr. MUNDE V. R., Parli-vaijnath || 68

16) THE PERFORMENCE OF INDIRA AWAAS YOJANA (Pradhan Mantri Awaas Yojana -....
Divya pal Research Scholar || 70

17) HUMANISM DOMINATING THEISM IN TAGORE'S WRITING
Dr. VIJAY BABURAO PANDE, Washim. || 76

18) Content Analysis of Special Issues of Indian Journal of Social Work (1991-2000)
Ms.Varsha B. Patil, Wardha || 80

19) Dhamma: A Way of Cultured Life
Sanjay P. Ramteke, Chandrapur || 84

20) An analysis of contents: School and classroom Environment and implications from the ...
Jignesh N.Rathod, V. V. Nagar, Gujarat, || 88

21) GANDHIAN APPROACH TO DEMOCRACY AND GOOD GOVERNANCE
Dr. Neeraj Ruwali D.Litt., Haldwani (Nainital) || 90

22) CHALLENGING COLONIAL AMNESIA: A FEW EXPLORATIONS
Dr. Pravin Sonune, Aurangabad (MH) || 95

23) Mutual Fund Investment : an overview
Dr. Manoj M. Thaore, Armori, Dist.- Gadchiroli. || 98

24) ISLAMIC BANKING: A STUDY OF AWARENESS IN GUJARAT STATE
Sadamhusen M. Timbaliya,Dr. Y M DALVADI, Vallabh Vidyanagar || 105

www.vidyawarta.com/03 | http://www.printingarea.blogspot.com

25) Women Empowerment in India and their Roles in Indian Society
Dr.Rahul H. Rabari, Ta.Tarapur Dist.Anand Gujarat || 111

26) मध्ययुगीन भारतातील परिवहन व टपाल व्यवस्था
प्रा. राजविरेंद् सिंग गावीत, धुळे || 115

27) भारतात शेतमजूरांचा प्रश्न: एक ऐतिहासिक आढावा
डॉ. आर. जी. जाधव, सांगली || 117

28) 'मसणजोगी' आत्मकथनातील आत्मभान
प्रा.विठ्ठल पुंडलिक भानुसे, लोणार जि.बुलडाणा . || 123

29) गणितीतज्ञ भाष्कराचार्य आणि - बीड
डॉ. प्रशांत अ. साबळे, पाटोदा जि. बीड. || 128

30) कल्याणकारी राज्य व सामाजिक प्रशासन
डॉ. वाघमारे भगवान शंकरराव, आष्टी जि. बीड || 131

31) गांधीजी की साहित्य सैध्दांतिकी
प्रो. कल्पना दुबे, पुलगाव. || 134

32) 'हिंदी आलोचना के विकास में गोपाल राय का योगदान'
पी. जयसिंह, हैदराबाद तेलंगाना || 137

33) डा०दयाकृष्ण विजय के काव्य में समन्वयवाद
डॉ यदुवीर सिह खिरवार, थानागाजी अलवर (राजस्थान) || 142

34) भारत में महिला अपराध एक ज्वलन्त समस्या
कु. रत्ना सोनी, जबलपुर || 147

35) भारत माँ का सच्चा सपूत — गणेश शंकर विद्यार्थी
डॉ० कविता सिंह, इलाहाबाद || 151

36) स्वामी विवेकानंद का शिक्षा दर्शन
डॉ. नवीन दीक्षित, ग्राम—बारला, जि.रायसेन (म.प्र.) || 153

www.vidyawarta.com/03 | http://www.printingarea.blogspot.com

32

'हिंदी आलोचना के विकास में गोपाल राय का योगदान'

नामः पी. जयसिंह
शोधार्ती हिंदी विभाग
हैदराबाद विश्वविद्यालय, हैदराबाद तेलंगाना

==============***********===============

हिंदी आलोचना अपने आरंभिक दौर से ही कविता केन्द्रित रही है। गद्य की अन्य विधाओं के आर्वीभाव के साथ आलोचना का भी आविर्भाव और विकास हुआ। यह महत्वपूर्ण और दिलचस्प बात है कि जो हिंदी आलोचना अपने केंद्र में कविता को रख कर विकसित हुई, उसकी शुरुआत 'नाट्यलोचन' से हुई थी। भारतेंदु हरिश्चंद्र द्वारा १८८३ में लिखी गई संक्षिप्त पुस्तिका 'नाटक' अथाव दृश्य काव्य से हिंदी आलोचना की शुरुआत मानी जाती है। भारतेन्दु युग वास्तव में गद्य विधाओं की उत्पत्ति के संदर्भ में उर्वर काल माना जाएगा। भारतेन्दु युग से लेकर प्रेमचंद युग तक कथा साहित्य का जोरदार विकास हुआ। उसमें उपन्यास विधा के विकास की चर्चा महत्वपूर्ण हो जाती है। यह दौर हिंदी उपन्यास के जासूसी, सुधारवादी, तिलस्मी, आय्यारी दुनिया के बदलने का भी दौर है, क्योंकि प्रेमचंद ने अपने उपन्यासों से सामजिक यथार्थ का जो रास्ता तैयार किया उस पर हिंदी उपन्यास विधा को दूर तक जाना था। जहाँ तक उपन्यास आलोचक का सवाल है "बालकृष्ण भट्ट से लेकर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल तक प्राय:सभी आलोचकों ने उपन्यास पर भी लिखा था, भले ही अनुपात की दृष्टि से बहुत कम हो या फिर उपन्यास की आलोचना के संदर्भ मवन उसका वैसा ऐतिहासिक मूल्य न हो जैसा मराठी, में विश्वनाथ काशीनाथ राजवाड़े (१८६३–१९२६) के 'उपन्यास' शीर्षक से लिखित

एक लम्बे निबंध का है। जिसमें यूरोपीय उपन्यास के संदर्भ में रोमांटिक और यथार्थवादी उपन्यासों की मिम्मास की गंभीर चर्चा की है।"१

वास्तव में रामचंद्र शुक्ल का उपन्यास संबंधी मूल्यांकन कई सन्दर्भ में हिंदी कथा आलोचना को दिशा प्रदान करने वाला था। रामचंद्र शुक्ल की आलोचना दृष्टी की सीमाएं कबीर आदि के मूल्यांकन को लेकर भले ही अलग रही हों पर उपन्यास के संदर्भ में लिखते हुए, अपने आलोचकीय विवेक से जिस तरह उन्होंने देवकीनंदन खत्री और किशोरी लाल गोस्वमी को अलगाया, निश्चित रूप से आलोचना की उनकी यह दृष्टी हिंदी कथा आलोचना को एक सूत्र मुहैया करती है। देवकीनंदन खत्री के उपन्यासों के सन्दर्भ में लिखते हुए कहा है कि "इनके उपन्यासों का लक्ष्य केवल घटना वैचित्र्य रहा, रस संचार भावविभुती या चरित्र चित्रण नहीं। ये वास्तव में घटना प्रधान कथानक या किस्से है, जिसमे जीवन के विविध पक्षों के चित्रण का कोई प्रयत्न नहीं, इससे ये साहित्य की कोटि में नहीं आते।"२ इसके बाद वे किसोरी लाल गोस्वामी के संदर्भ में वे लिखते है "पंडित किशोरी लाल गोस्वामी जिनकी रचनाएँ साहित्य की कोटि में आती है। इनके उपन्यासों में समाज के कुछ सजीव चित्र, वासनाओं के रूप रंग, चित्ताकर्षक वर्णन और थोड़ा बहुत चरित्र–चित्रण भी अवश्य पाया जाता है।" (वहीं पृ.३४३)

अगर शुक्ल जी से आगे बढ़े तो हमे तीन आलोचक पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, इलाचन्द्र जोशी और देवराज उपाध्याय के नाम दृष्टिगत होता है, जो कथा आलोचना में अपने विशेष आलोचकीय समझ के साथ उपस्थित होते दिखाई देते है। बख्शी जी कथालोचना के क्षेत्र में अपनी दो पुस्तकों से चर्चित हुए वे अपनी पहली पुस्तक 'विश्व साहित्य' के माध्यम से भारतीय पाठकों की लिए विश्वसाहित्य की खिड़की खोल देते है। इस किताब में वे विश्व साहित्य के समानांतर भारतीय साहित्य के मूल्यांकन की तुलनात्मक पद्धति की शुरुआत करते है। उनकी दूसरी पुस्तक 'हिंदी कथा साहित्य'जो १९५४ में प्रकाशित हुई, कथालोचना के क्षेत्र में एक अत्यंत महत्वपूर्ण कोशिश रही थी। "लोक प्रियता बनाम कलात्मक्ता के द्वंद में बख्शी जी लोकप्रियता की उपेक्षा नहीं करते, इसलिए आचार्य रामचंद्र शुक्ल से भिन्न वे देवकीनंदन खत्री के चमत्कारी प्रभाव को गहराई से रेखांकित कर पाने में सफल हुये है।"३

उपन्यास की आलोचना में मनोवैज्ञानिक प्रभाव को रेखांकित करने वाले आलोचकों में इलाचंद्र जोशी और देवराज उपाध्याय का नाम प्रमुख है। इसी दौर में विभिन्न पत्र पत्रिकाओं में उपन्यासों की समीक्षाएं प्रकाशित हो रही थी, उस दौर में पुस्तक 'समिक्षा' एक गंभीर आलोचना कर्म माना जाता था, आज की तरह पुस्तक समीक्षा को हल्के में नहीं लिया जाता था, और गंभीर समीक्षाएं लिखी जा रही थी, नलिन विलोचन शर्मा, शमशेर बहादुर सिंह, शिवदान सिंह चौहान, प्रभाकर माचवे, या यूं कहे तो "बालकृष्ण भट्ट से लेकर राम विलास शर्मा, नामवर सिंह, तक सभी ने इस काम (उपन्यास समीक्षा) को गंभीरता से किया।"४ इसी क्रम को आगे बढ़ाने का कार्य आलोचक गोपाल राय ने भी किया है।

नेमिचंद्र जैन और भारत भूषण अग्रवाल ने अपने महत्वपूर्ण आलोचनात्मक कर्म से हिंदी उपन्यास की 'समीक्षा' या 'आलोचना' को समृद्द किया। और नेमिचन्द्र जैन, भारत भूषण अग्रवाल के बाद उपन्यास की आलोचना के क्षेत्र में जिन प्रमुख आलोचकों ने अपने आलोचना कर्म से इसे एक ठोस धरातल पर खड़ा करने का काम किया है, उनमें गोपाल राय, सुरेन्द्र चौधरी, मधुरेश नवल किशोर, वीरेन्द्र यादव, परमानंद श्रीवास्तव, विजय बहदुर सिंह इत्यादि है। लेकिन कथा साहित्य की आलोचना की प्रवृत्ति वैसे प्रबल नहीं दिखाई देती कम ही आलोचकों ने यह बीड़ा उठाया है और इस दिशा में आलोचना के प्रतिमान स्थापित करने का प्रयास किए है। गोपाल राय भी उन थोड़े आलोचकों में है जिन्होंने इस क्षेत्र में गंभीरता और सहृदयता से काम किया है।

ISSN: 2394 5303 | Impact Factor 5.011(IIJIF) | Printing Area™ International Research journal | May 2018 Issue-41, Vol-07 | 0139

गोपाल राय को गूढ़, गंभीर और आलोचनवादी प्रवृत्ति के व्यक्ति कहा जा सकता है। उन्हें परिपूर्ण रूप से उपन्यास के आलोचक मना जाता है। उन्होंने अपने विचार और चिंतनशीलता पर उपन्यास के आलोचना क्षेत्र में नया क्षितिज प्रदान किया। हिंदी उपन्यास आलोचना के मार्ग पर चलकर हिंदी उपन्यासों को नया मोड दिया। उपन्यास आलोचना के क्षेत्र में गोपाल राय का पदार्पण १९६५ में हुआ। इनका प्रथम शोध प्रबंध 'हिंदी कथा साहित्य और उसके विकास पर पाठकों की रूचि का प्रभाव' ग्रंथ निकेतन, पटना से प्रकाशित हुआ। इस शोध प्रबंध उन्होंने हिंदी कथा साहित्य पर विचार करते हुए उपन्यास के विषय, भाषा और शिल्प पर अधिक जोर दिया था। उनके इस शोध प्रबंध के संदर्भ में स्वयं नगेन्द्र ने कहा था कि "विषय की नवीनता और निरूपण की गंभीरता दोनों ही दृष्टियों से मैं प्रस्तुत शोध प्रबंध को पर्याप्त महत्वपूर्ण मानता हूं।"५अपने इस शोध प्रबंध में गोपाल राय ने अपनी विचार दृष्टि के कौशल्य पर हिंदी कथा साहित्य का जो काल विभाजन किया प्रयास किया। उनका यह प्रयास उस समय बहुत सराहनीय रहा। वह इस प्रकार है,

१. किस्सा कहानियों का युग (१८००–१८६९ ई.)
२. हिंदी उपन्यास का उद्भव और शैशव काल (१८७०–१८८९ ई.)
३. हिंदी उपन्यास का विकास (प्रथम चरण): प्रेमचन्द्र पूर्व युग (१८९०–१९१७ ई.)
४. हिंदी उपन्यास का विकास (द्वितीय चरण): प्रेमचन्द्र युग (१९१८–१९३६ ई.)
५. हिंदी उपन्यास का विकास (तृतीय चरण): प्रेमचन्दोत्तर युग (१९३६ से अब तक)

परंतु यह काल विभाजन उनकी पुस्तक 'हिंदी उपन्यास का इतिहास (२००२) तक आते–आते पूरी तरह बदल जाता है। इस पुस्तक में किया गया काल विभाजन का प्रयत्न विल्कुल नया है, इस संदर्भ में वे कहते हैं, "यदि हम उपन्यास को एक वृक्ष के रूप में देखते हैं तो प्रथम काल को 'क्षेत्र निर्माण काल', द्वितीय को 'पादप काल', तृतीय को 'पल्लवन काल', चतुर्थ को 'प्रौढत्व काल' और पंचम को 'विस्तार काल' कहा जा सकता है। इस किताब में काल विभाजन तो हमने बहुत कुछ इसी पद्धति पर किया है, पर उसके नामकरण में कुछ नयापन लाने की कोशिश की है।"६ अपनी इस पुस्तक में गोपाल राय ने कुछ नयेपन की तर्ज पर महत्वपूर्ण वर्षो (जैसे – १८०३, १८७०, १८९१, १९१८, १९३७, १९४७) को आधार बनाते हुए नामकरण का यशस्वी प्रयत्न किया है वह निम्न है–

१. दरवाजे पर दस्तक (१८०१–१८६९)
२. नवजागरण और हिंदी उपन्यास (१८७०–१८९०)
३. रोमांस पाठक और उपन्यास (१८९१–१९१७)
४. यथार्थ के नये स्वर (१९१८–१९४७)
   (क) केन्द्र में किसान (१९१८–१९३६)
   (ख) नयी दिशाओं की तलाश (१९३७–१९४७)
५. विमर्श के नये क्षितिज (१९४८–१९८०)
६. समकालीन परिदृश्य (१९८१–२०००)

गोपाल राय ने शोध प्रबंध से लेकर अपनी पुस्तक 'हिंदी उपन्यास का इतिहास' तक का समय उनके शैशव से प्रौढ़ होने को दर्शाता है। इस समय काल में हुए परिवर्तनों में लगातार उन्होंने अपने आप को संतुलित किया है। 'हिंदी उपन्यास का इतिहास' में किया गया काल विभाजन गोपाल राय के उत्तरोत्तर प्रौढ़ होती आलोचकीय दृष्टि परिचय देता है।

अपनी रचनात्मका को आगे बढ़ते हुए गोपाल राय ने 'हिंदी उपन्यास कोश' का निर्माण किया जो दो खंडो में लिखा गया है। प्रथम खंड का प्रकाशन १९६८ और द्वितीय खंड का प्रकाशन १९६९ में हुआ। अपने इस उपन्यास कोष के पहले खंड में गोपाल राय ने १८७० से १९१७ तक के उपन्यासों को एकीकृत किया तथा दूसरे खंड में १९१८ से १९३६ तक के उपन्यासों को। 'हिंदी उपन्यास कोश' लेखन का कार्य आज हिंदी साहित्य में

सराहा जा रहा है। उनके द्वारा किया गया यह कार्य घास पर बिखरे ओस कण को सवारने सा है।

हिंदी कथा साहित्य में किसी उपन्यास या कहानी की संरचना विषय वस्तु को लेकर महत्वपूर्ण स्थान रखती है। पाश्चात्य साहित्य में संरचना जैसे विषय को काफी गंभीरता से लिया जाता रहा है और उसके विकास पर बार–बार जोर दिया जाता है। हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में संरचना को अधिकतर चर्चा नहीं हुई बल्कि पाश्चात्य साहित्य के प्रभाव से इस विषय को बारीकी से देखा जाने लगा। गोपाल राय ने पाश्चात्य संरचना के प्रभाव को हिंदी उपन्यास पर लागू करने का सफल प्रयास किया है। यहा पर वे किसी प्रकार की नकल करते हुए नहीं दिखाते बल्कि पाश्चात्य की इस प्रविधि को वे तकनीक के साथ एक विशेष शैली में सामने रखते है। वे पाश्चात्य संरचना का प्रयोग करते हुए बड़ी खूबी से रचनाओं का मूल्यांकन करते है।

गोपाल राय सदा ही अपनी विशिष्ट आलोचनवादी दृष्टि के लिए जाने जाते रहे है। इन्होंने हिंदी साहित्य की कालजयी कृतियों को चुनकर अपनी आलोचन के विविध गुणों को दर्शाया। 'गोदान', 'मैला आंचल', 'रंगभूमि', 'शेखर : एक जीवनी', 'दिव्या', 'महाभोज' आदि उपन्यासों पर स्वतंत्र आलोचना करते हुए गोपाल राय ने उपन्यासों में स्थित शिल्प के को पूरा न्याय दिया है। वे उपन्यास विश्लेषण की प्रक्रिया में कथ्य वैविध्य, चरित्र, शिल्प और भाषा को महत्वपूर्ण मानते हैं। उपन्यास विश्लेषण प्रक्रिया में वे स्वयं स्वीकार करते है कि ''कुछ ऐसे मानक उभर सकें जो अच्छे और बुरे तथा सफल एवं असफल उपन्यास में अतंर करने में सहायक हों।''७ इसी विश्लेषण द्वारा वे दो महान उपन्यासकार 'शानी' और 'राही मासूम रजा' के उपन्यासों का मूल्यांकन करते है। हर रचनाकार की एक विशिष्ट शैली होती है जिसके बलपर वह रचना का विधान करते है। गोपाल राय ने इन दोनों उपन्यासकारों का मूल्यांकन करते हुए इनकी शैली को पहचाना औए दोनों एक दूसरे से किस प्रकार विशिष्ट है यह बताने का प्रयास किया। वे शानी के उपन्यास 'काला जल' के संदर्भ में लिखते हुए एक जगह यह कहते हैं कि ''काला जल निम्न मध्यवर्गीय मुस्लिम समाज का अत्यंत प्रमाणिक दस्तावेज है।''८ वहीं जब वे राही मासूम रजा के 'आधागांव' का मूल्यांकन करते हैं, तब वे लिखते है कि ''शानी ने 'कालाजल' में बस्तर क्षेत्र के मुस्लिम जीवन का चित्रण किया था, पर उसमें वह वैविध्य और व्यापकता नहीं है, जो राही के आधा गांव में है।''९ यहाँ पर दोनों कथाओं में गोपालय राय के विचार अलग–अलग नजर आते है। संभावनाओं से अगर तथ्य दिया जाए तो यही स्थिति उत्पन्न होती है। 'कालाजल' मुस्लिम समाज जीवन पर का उत्कृष्ठ उपन्यास है जबकि 'आधा गाँव'में चित्रित समाज पूर्णत: मुस्लिम नहीं है। 'काला जल' निम्नमध्यवर्गीय मुस्लिम समाज का प्रमाणिक दास्तावेज है, तो 'आधागाँव' शिया मुसलमानों जो मूलत: छोटे बड़े जमींदार हैं, उनके जीवन का महकाव्य है। दोनों उपन्यासों के सदर्भ में जब आलोचक अपने दृष्टि को सामने रखते है तो वे स्वयं आलोचना के मानदंडों में शिकार हो जाते है। गोपाल राय ने फिर भी दोनों का मूल्यनकन करते हुए अपने कर्म को भालीं भाँति पूर्ण किया है।

हिंदी कथा साहित्य में प्रथम उपन्यास को लेकर कुछ अंशों में आज भी मतभेद है। कुछ आलोचक 'भाग्यवाती' को तो कुछ आलोचक लाला श्री निवास दास के 'परीक्षा गुरु' को प्रथम उपन्यास के तर्ज पर खरा मनाते है। किन्तु गोपाल राय जब हिंदी के प्रथम उपन्यास के बारे में चर्चा करते है तब वे पंडित गौरीदत्त द्वारा रचित 'देवरानी जेठानी की कहानी' (१८७०) सामने लाते हैं। इन्होंने जब १९६६ इस उपन्यास का संपादन एवं प्रकाशन कराया तब उन्होंने इसके पहले उपन्यास होने को लेकर ठोस तर्क उपस्थित किए। वे इस संदर्भ में कहते है कि ''विषय, शिल्प, भाषा चाहे जिस दृष्टि से देखा जाए,........ 'देवरानी जेठानी की कहानी' विशिष्ट है अत: हिंदी उपन्यास का आरम्भ यदि किसी पुस्तक से माना जा सकता है, तो इसी से।''१० उनके द्वारा दिया गया तर्क आनेवाले

नये आलोचकों को नई सोच और विचार दृष्टि देता है।

गोपाल राय केवल आलोचना करते हेतु आलोचना के रणक्षेत्र में नहीं उतरे थे। उन्होंने अपने नये मानदंड, नई विचार दृष्टि के साथ उपन्यास के नये क्षेत्रों को चुना था। इसका परिचय उनके 'हिंदी उपन्यास का इतिहास' पुस्तक में मिलता है। केवल 'उपन्यास' शब्द को लेकर उनकी गंभीर शोध दृष्टि को महसूस किया जा सकता है। 'उपन्यास' शब्द का प्रचालन कब हुआ? इस संदर्भ में वे हिंदी पत्र–पत्रिकाओं के साथ बांग्ला साहित्य तक खोज करते है। उनका यह कार्य सागर में मोती खोजने जैसा है। उपन्यास शब्द के प्रयोग के संदर्भ में उनका शोध और कथन दोनों महत्वपूर्ण है। वे कहते है,''नॉवेल के लिए 'उपन्यास' पद का प्रयोग तो हिंदी को बांग्ला की देन है ही। बांग्ला में भी 'उपन्यास' पद का प्रथम प्रयोग भूदेव मुखोपाध्याय ने १८६२ ई. में अपनी 'ऐतिहासिक उपन्यास'नामक कथा पुस्तक के शीर्षक में किया था... हिंदी में 'नॉवेल' के अर्थ में 'उपन्यास' पद का प्रथम प्रयोग भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने १८७५ ई. में 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' के फरवरी और मार्च, १८७५ के अंको में धारावाहिक रूप में प्रकाशित अपूर्ण कथा 'मालती' के लिए किया था।''११

वास्तविकता गोपाल राय ने हिंदी आलोचना के क्षेत्र को नया मोड दिया है। वे हिंदी उपन्यास आलोचना के क्षेत्र में एक परिपूर्ण आलोचक कहे जाते है। इनकी आलोचकीय दृष्टि पर बात करते हुए मधुरेश जी के इस कथन से सहमत होना पड़ता है कि ''गोपाल राय प्रगतिवादी आलोचकों के संबंध ा में प्रायः ही व्यंग्य और कटाक्ष से बात करते हैं। लेकिन उनमें किसी सुनिर्दिष्ट और सुपरिभाषित वैचारिक स्टैण्ड का अभाव उनके मूल्यांकन को प्रभावित करता है। ऐसे अवसरों पर वे रांगेय राघव से बड़ा लेखक नरेन्द्र कोहली को मानते दिखाई देते है या फिर राही मासूम रजा और नार्गाजुन की अपेक्षा विवेकी राय की।''१२ गोपाल राय सही मायनों में आलोचना क्षेत्र में नये विचार, नये मानदंड, नई दूरदृष्टिता प्रशापित करने वाले महान आलोचक कहे जाते है।

गोपाल राय प्रमुख रूप से उपन्यास के आलोचक है, उन्होंने अपने शोध दृष्टी से उपन्यास की आलोचना के क्षेत्र में एक नया दिशा दी है। वे अकादमिक आलोचना के एक गंभीर व्यक्तित्व थे, जिन्होंने एक तटस्थ होकर हिंदी उपन्यासों पर काम किया है। गोपाल राय ने अपने इस शोध में हिंदी कथा साहित्य पर चर्चा करते हुए उपन्यासों के विषय, शिल्प और भाषा तीनों पर दृष्टी बनाये राखी है। वे खुद दावा करते है कि "जाहं तक मेरी जानकारी है, यह प्रयत्न हिंदी उपन्यासालोचना के क्षेत्र में ही नहीं हिंदी काव्यालोचना के क्षेत्र में भी प्रथम है।२१ वीं सदी के साहित्य पर नजर दिया जाए तो अनगिनत आलोचक विधामान है जो आये दिन किसी न किसी विषय पर आलोचना करते है। लेकिन अगर गौर किया जाये तो ऐसे कितने आलोचक है जिन्होंने 'आलोचना' के पथ को सही रूप में आगे बढाया हैद्य

सन्दर्भ

१) हिंदी आलोचना का विकास द् मधुरेश, सुमित प्रकाशन, इलाहाबाद पृ. २६१
२) हिंदी साहित्य का इतिहास द् आचार्य रामचंद्र शुक्ल, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद पृ. ३४२
३) हिंदी साहित्य का इतिहास द् आचार्य रामचंद्र शुक्ल, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद पृ. ३४५
४) समसामयिक सृजन संपादक, महेन्द्र प्रजप्रति, जुलाई–दिसम्बर, २०१३, संयुक्ताक पृ.३३
५) हिंदी कथा साहित्य और उसके विकास पर पाठकों की रूचि का प्रभाव – गोपाल राय, ग्रंथ निकेतन पटना (सं.) १९६५ (भूमिका से)
६) हिंदी उपन्यास का इतिहास – गोपाल राय, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली (२०००) पृ. १०
७) हिंदी आलोचना का विकास – मधुरेश, सुमित

अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी में प्रस्तुत शोध – पत्र का प्रमाण पत्र

बद्रुका वाणिज्य एवं कला महाविद्यालय

NAAC - पुनःप्रत्यायित, काचीगुड़ा, हैदराबाद

तमसो मा ज्योतिर्गमय

एवं

हिन्दी हैं हम विश्व मैत्री मंच, हैदराबाद

के संयुक्त तत्वावधान में

दो दिवसीय अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी संगोष्ठी - दिनांक 14-15 दिसम्बर 2018

विषय : हिन्दी भाषा, साहित्य एवं भारतीय संस्कृतिः वैश्विक परिदृश्य

प्रमाण-पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि सुश्री / श्री / श्रीमती / डॉ. / प्रो. श्री पवार जयसिंह

दिनांक 14-15, दिसम्बर '18 को हिन्दी भाषा, साहित्य एवं भारतीय संस्कृतिः वैश्विक परिदृश्य विषय पर आयोजित दो दिवसीय अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी संगोष्ठी में सत्राध्यक्ष / आलेख - प्रस्तोता / सत्र-संचालक / प्रतिभागी के रूप में भाग लिया।

डॉ. डी. विद्याधर
संगोष्ठी संयोजक

श्री राजेश अग्रवाल
संगोष्ठी निदेशक

डॉ. के. सोमेश्वर राव
प्राचार्य

अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी में प्रस्तुत शोध – पत्र का प्रमाण पत्र

उस्मानिया विश्वविद्यालय, हिंदी विभाग, हैदराबाद, तेलंगाना

यू.जी.सी. स्टेट बैंक ऑफ हैदराबाद, सेंट ऑन्स कॉलेज फॉर वुमन व

अंतर्राष्ट्रीय साहित्य कला मंच, मुरादाबाद उ.प्र.

शतवर्षीय समारोह

के संयुक्त तत्वावधान में आयोजित

दो-दिवसीय अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी

16,17 सितम्बर 2016

भारतीय भाषाएँ व प्रवासी साहित्य

प्रमाणित किया जाता है कि श्री/श्रीमती/सुश्री/डॉ./प्रो. पी. जयसिंह ने दिनांक 16,17 सितम्बर, 2016 को हिंदी विभाग, उस्मानिया विश्वविद्यालय, हैदराबाद द्वारा आयोजित दो- दिवसीय अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी में सक्रिय सहभागिता की। आपने संगोष्ठी में भारतीय साहित्य में तेलुगु भाषा का योगदान शोध पत्र का वाचन/अध्यक्षता/विशेष वक्तव्य/कविता वाचन किया।

डॉ. प्राण जग्गी
न्यूयार्क (अमेरिका)

डॉ. अर्चना झा
हिन्दी विभागाध्यक्ष
सेंट ऑन्स कॉलेज फॉर वुमन मेहदीपटनम

प्रो. शीला मिश्र
हिन्दी विभागाध्यक्ष,
उस्मानिया-विश्वविद्यालय, संयोजक

डॉ. महेश दिवाकर
संस्थापक अध्यक्ष
मंच